सहजानंद शास्त्रमाला

वृहत्-स्वयंभू स्तोत्र प्रवचन

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी ‘‘सहजानन्द’’ महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

आत्म-कीर्तन

हूं स्वतंत्र निश्चल निष्काम । ज्ञाता द्रष्टा आतम राम ।। टेक ।।

[१]

मैं वह हूं जो हैं भगवान, जो मैं हूं वह हैं भगवान ।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहँ रागवितान ।।

[२]

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ।।

[३]

सुख-दुख दाता कोइ न आन, मोह राग रुष दुखकी खान ।
निजको निज परको पर जान फिर दुखका नहिं लेश निदान ।।

[४]

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुंचूं निज धाम, आकुलताका फिर क्या काम ।।

[५]

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम ।
दूर हटा परकृत परिणाम, "सहजानन्द" रहूं अभिराम ।।

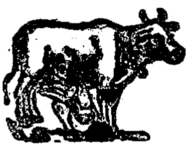

मुद्रक—सहजानन्द शास्त्रमाला, रणजीतपुरी, सदर मेरठ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

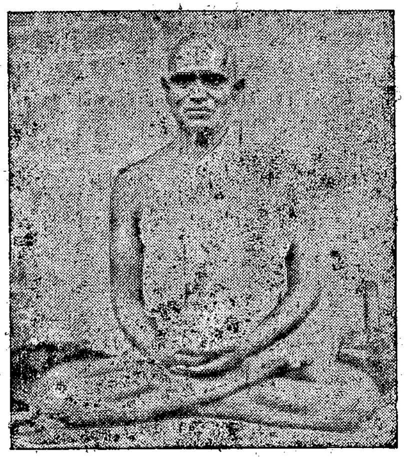

पू० श्री मनोहर जी वर्णी

सहजानन्द महाराज

http://www.jainkosh.org

वृहत्स्वयम्भूस्तोत्र प्रवचन

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ सिद्धान्तसाहित्यशास्त्री
पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी
"सहजानन्द" महाराज

स्वयम्भुवा भूतहितेन भूतले समञ्जसज्ञानविभूतिचक्षुषा ।
विराजितं येन विधुन्वता तमः क्षपाकरेणेवगुणोत्करैःकरैः ॥१॥

वृषभदेवकी स्वयंभुता—इसका नाम स्वयम्भू स्तोत्र इस कारण रखा है कि इस स्तवनके आदिमें स्वयंभुवा शब्द आया है। जैसे भक्तामर स्तोत्रका सही नाम है आदिनाथ स्तोत्र मगर भक्तामर नामसे इस कारण प्रसिद्ध है कि इसके आदिमें भक्तामर शब्द आया है। तो स्वयंभू स्तोत्रमें चौबीस तीर्थंकरोंकी स्तुति की है और समन्तभद्राचार्यने यह स्तवन उस समय बनाया था जब कि उनपर एक उपसर्ग और आया, बहुत उपसर्ग निवारण उन्होंने खुद किया गुरु आज्ञासे मुनिधर्म छोड़कर संन्यासके ढंगमे रहकर उसमें उन्होंने भस्म-व्याधि मिटाया। जब राजा को पता पड़ा तो उन्होंने कहा कि तुमको इस पिंडीको नमस्कार करना पड़ेगा। इतनी वेदना में रहकर भी समन्तभद्रस्वामी आस्थामें परिपक्व थे। उन्होंने कहा कि आप इतना कठिन आदेश मत दो अन्यथा हमारे

Version 1

नमस्कारको सहन करना कठिन हो जायगा। उन्होंने कहा नहीं करना ही पड़ेगा। उस रात्रिमें उन्होंने एक स्वयंभूस्तोत्र रचा था। इस स्तोत्रमें दार्शनिकताकी मुख्यता है। एकान्त-वादका निरसन अनेकान्तका समर्थन करते हुए भगवानकी स्तुति की है और जब ७ तीर्थंकरोंकी स्तुति तक तो गुणा-नुवाद किया वहाँ तक तो नमस्कारका कोई शब्द नहीं कहा। यद्यपि नमस्कारका शब्द न भी कहे और गुणानुवाद हो तो वह भी नमस्कार कहलाता है लेकिन शब्दसे नमस्कार करनेके साथ अंग भी झुका करते हैं, जैसे जब कोई हिंदीका स्तवन पढ़ता है तो पढ़ता जाता है और जिस वक्त आता है मैं नम-स्कार करूं हूं, वंदना करूं हूं, उस समय शीश झुक जाता है, तो शब्दके साथ अंग भी झुकता है, तो गुणानुवाद रूपमें ७ तीर्थंकरोंका स्तवन हैं और नमस्कार शब्द लाकर चंदाप्रभु की स्तुतिका प्रसंग है। बना तो लिया सब और एक ही बार बनानेके बाद बड़ी धारणा हो जाती है। अब जब दोप-हरके समय स्तवन कर रहे थे और चन्द्रप्रभुके स्तवनमें जहाँ वंदे शब्द आया और बन्देके साथ शीश झुकाया तो वहाँ चन्द्रप्रभुकी मूर्ति प्रकट हुई। उस चतुर्विंशति तीर्थंकर स्तुतिका यह पहला छन्द है। प्रभु आदिनाथ भगवान जो स्वयंभूके रूपमें विराजमान हैं—स्वयंभू कहते हैं उसे जो स्वयं भवति-इति स्वयंभू। जो पर निरपेक्ष होकर बिना दूसरेका सहारा

लिए स्वयं अपने आप होवे उसे कहते हैं स्वयंभू। तो प्रभु आप स्वयंभू हैं। जो स्तवन एक तीर्थंकरका है वही स्तवन सब तीर्थंकरोंका है, क्योंकि गुण सबके समान हैं। हाँ कोई चारित्रसम्बन्धी घटना लाकर स्तवन करे तो वह अलग बात है। प्रभु आप स्वयंभू हैं। प्रभु क्या है ? एक ज्ञानपुञ्ज, शुद्ध ज्ञान। वह कैसे हुआ ? स्वयं हुआ ? जो चरणानुयोगका प्रयोग चलता है वह प्रयोग स्वभाव बनानेके लिए नहीं चलता किन्तु स्वभाव पर विकार आया हो परिणमनमें, उस विकार को हटानेके नियतसे पुरुषार्थ चलता है। चीज तो स्वयंमें है ही। तो जो एक चारित्रका पौरुष है या और और जो जो कुछ हमारा अभ्यास है वह विकारको हटानेके लिए है। स्वभाव बनानेके लिए नही होते। वस्तुका स्वरूप बनाया नहीं जा सकता। वह तो सत्त्वके साथ जुड़ा है, नहीं तो उसका सत्त्व भी नहीं। स्वभाव बिना बनाये है तो बिना बनाये स्वभाव है। वही स्वभाव प्रकट हो जाय उसको कहते हैं परमात्मा। तो ऐसा परमात्मापन स्वयं हुआ है और अन्तः पौरुषमें क्या किया गया है कि स्वभावकी उपासना की सो स्वभावका विकास हुआ।

स्वयंभू होनेके उपायकी स्वाश्रितता—समस्त कार्यों से सरल काम है परमात्मा होना, संसारमें इतना रुलना, चलना, देह धारण करना, अनेक संघर्ष करना ये तो सारे

कठिन काम हैं और पराधीन हैं, किन्तु परमात्मत्वकी प्राप्ति करना स्वाधीन है, सहज है, निरपेक्ष है असहाय है। उसमें उपादानकी तैयारी हो, इतनी भर आवश्यकता है। सो यह तैयारी भी ज्ञान द्वारा ज्ञानमें ज्ञानसे ही की जाती है। इसे भी कोई करने नहीं आता। तब किस तरहसे परमात्मत्व प्रकट होता है कि अपना जो अनादि अनन्त अहेतुक स्वभाव है। उस स्वभावका आश्रय करके जो एक विशुद्ध ज्ञान परिणमनका प्रवेश होता है उस पर्यायरूपसे परिणम जानेका ही नाम परमात्मा होना है। उसका उपाय है स्वभावका आश्रय करना। आश्रय करनेका अर्थ है स्वभावको ज्ञानमें रखना, उपयोगमें लेना। मैं सबसे निराला विशुद्ध चैतन्यमात्र हूं, ऐसा प्रतीतिमें बना रहना। कैसा है वह स्वभाव ? अनादि, जिसका आदि नहीं। मेरा आदि नहीं, स्वरूपका भी आदि नहीं। मैं पहले बना होऊं, स्वभाव पीछे बना हो तो स्वभाव के बिना मैं क्या था ? मैं अनादि, स्वभाव अनादि, मैं अनन्त स्वभाव अनन्त, मैं अहेतुक, स्वभाव अहेतुक। मुझमें और स्वभावमें अन्तर नहीं और दो चीजें भी नहीं। वस्तु एक अखण्ड है। समझानेके लिए स्वभाव और स्वभाववानका भेद किया जाता है। ऐसा जो निज सहज अहेतुक स्वभाव है उस स्वभावका आश्रय करना मोक्षका मार्ग है। तो ऐसा स्वभावाश्रय करके प्रभु आप स्वयंभू हुए हैं।

http://www.jainkosh.org

स्वयंभू वृषभदेवकी भूतहितरूपता—जो स्वयं निरपेक्ष सहज स्वयंभू हुआ है वही तो भूतलपर प्राणियोंका हित करने वाला होता है। जो हित करनेको धुन रखता है वह दूसरेके हितका पूर्ण निमित्त नहीं बन पाता और जो प्राणियों के हित करनेकी धुन तो नहीं रखता लेकिन स्वयं निर्मल प्रकट हो जाता है तो उसका दर्शन, उसका वचन, उसकी मुद्रा ये सब कुछ प्राणियोंके हितके लिए बन जाते हैं। पद्म पुराणमें वज्रबाहुका वृत्तान्त है कि वह स्त्रीपर इतना मोहित था कि जब स्त्री अपने मायके चली तो वह भी साथ चल पड़ा उसके साथ उसका साला उदय सुन्दर भी था। ये तीनों एक साथ जा रहे थे, रास्तेमें किसी जगह एक मुनिराजके दर्शन हुए। वह मुनिराज अपने आत्माके आनन्दरसमें छक रहे थे। जो विशुद्ध आत्मीय आनन्दरसमें छकता हो उसकी मुद्रा अलौकिक अद्भुत होती है। जो ज्यादह तेज हँसते हैं उनकी वह हंसी आकुलताका सूचक है और जो आत्मीय आनन्दरस में छक रहा हो तो उसकी तो एक मंद मुस्कान होती है, जो अलौकिक है, जो किसी भी इन्द्रियके विषयका मौज लेते समय बन ही नहीं सकती। ऐसे आनन्दरसमें छक रहे मुनि राजकी मुद्राको निरखकर उस वज्रबाहुका सारा भ्रम नष्ट हो गया। मैं हित कहाँ ढूढ़ रहा हूँ ? हित तो यहाँ है, शान्ति तो यहाँ है। देखो आनन्द कैसा इनकी मुद्रासे प्रकट हो रहा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है ? सुख देखनेको मैं यत्रतत्र डोलता हूँ, उचित अनुचित कदम उठाता हूँ। तो शान्ति तो यहाँ खुदमें है जिसका कि यह इतना आनन्दरस पान कर रहे हैं। भ्रम दूर हुआ कि टकटकी लगाकर मुनिराजको देखने लगा। आखिर आगे साले ने कुछ मजाक किया—क्या मुनि बनोगे ? उसको वह उपाय मिल गया। सुविधा मिली पिंड छुड़ाने की। हाँ हाँ मुनि बनेंगे तो क्या तुम भी बन जावोगे ? उदय सुन्दरने अनहोनी बात सुनकर कहा हाँ हम भी बन जायेंगे। बस वज्रबाहु मुनि हो गया, उसका मोह गला जानकर उदयसुन्दरका मोह भी गल गया, वह भी साधु हो गया। इन दोनोंका मोह गलित देखकर उस स्त्रीका भी मोह गल गया। वे सब साधु हो गए। तो जिसने आत्मीय आनन्दका रस चखा है, जिसकी दृष्टि निजस्वभावपर पहुंची रहती है ऐसे पुरुषका सत्संग दर्शन भी पार कर देता है। प्रभुस्वयंभू हो गए इस कारण वे स्वयं ही इस भूतलपर प्राणियोंके हितरूप हुए हैं।

स्वयंभूप्रभुकी सम्यग्ज्ञानचक्षुष्कता एवं अज्ञानान्धविनाशकता—कैसा है वह बिराजमान ऋषभदेवका आत्मा, परमात्मस्वरूप कि जो निर्मल ज्ञानचक्षुसे सहित बिराजमान है। समंजस क्या है जिसमें विवाद नहीं है। जिसमें कोई दोष नहीं है ऐसा निर्मल सम्यग्ज्ञान ही नेत्र है जिसका, उससे बिराजमान हैं। तीन नेत्रके धारी ये महादेव हैं, देवोंमें महा-

देव चार घातिया कर्मोंका विनाश करने वाले, युगके आदिमें सर्वप्राणियोंके लिए एक सहारेभूत हुए। वे प्रभु तीसरा नेत्र केवलज्ञान पाया था इसलिए त्रिनेत्र कहलाये, सहस्त्रनामके पाठमें भगवानको त्रिनेत्र कहा है। तो ऐसे समंजस ज्ञानरूप चक्षुसे सहित जो बिराजमान हैं ऐसे प्रभुका यहाँ स्मरण किया जा रहा है। जिसने मोह अंधकारका ऐसा विनाश किया जैसे कि रात्रिके अंधकारको पूर्णचन्द्र विनाश कर देता है, जिसकी किरणें गुणोत्कर हैं, सर्व जीवोंको शान्ति देने वाली हैं। ऐसे गुणोंमें उत्कृष्ट जिसकी किरणें प्रकट हुई हैं, जिन्होंने मोहका मर्दन कर दिया है, ऐसे आदिनाथ प्रभु उनके गुणोंका स्मरण इस छंदमें किया जा रहा है।

प्रजापतिर्यः प्रथमं जिजीविषुः शशास कृष्यादिषु कर्मसु प्रजाः।
प्रबुद्धतत्त्वः पुनरद्भुतोदयो ममत्वतो निर्विविदे विदांवरः २॥

जिन भगवानने युगके आदिमें जब कि भोगभूमि नष्ट हो रही थी, कर्मभूमिका प्रारम्भ था उस समय सब लोग बिराजमान हो गए। उस समय ये ऋषभदेव ही सहारे थे। ये १४ वें कुलकरके पुत्र हैं। मनुवोंको और लोग भी मानते हैं। जैन सिद्धान्तमें १४ मनु हुए हैं। १४ वें मनु नाभिराजा थे और नाभिराजाके समय गड़बड़ी हुई तो प्रजा जनोंने नाभिराजासे निवेदन किया। वहाँ नाभिराजाने प्रजाजनोंको ऋषभदेवके पास भेजा तो ऋषभदेवने प्रजाजनोंको षट्कर्मोंकी व्यव-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

स्था बतायी । जो पहरेदारी करे, शस्त्रसे जीवोंकी रक्षा करे । दुष्टोंके दुराग्रह न बढ़ने दे, सब जीवोंको अभयदान दें ऐसे जीव असी जीविका करें । सबकी जरूरत थी । लेखनकी भी जरूरत पडी, क्योंकि भोगभूमि नष्ट हो गई । व्यापार होना चाहिए, लेनदेन लेखा जोखा रहना चाहिए । पढ़ना पढ़ाना बनना चाहिए । तो मसी आजीविका वाले निर्धारित किये जैसे मुनीम हैं, मास्टर हैं । खेती भी चाहिए । खेती तो एक मुख्य ही चीज है, सो कृषि वाले, वाणिज्य वाले, शिल्पकला वाले, इन सबकी आज भी तो वही व्यवस्था है । बढ़ई, सुनार, लुहार, कुम्हार, चित्रकार आदि ये सब शिल्पकला वाले हैं । सेवा वाले हैं । ऐसी षट्कर्मोंकी व्यवस्थाको इसी कारण ऋषभदेवको ही ब्रह्मा कहते हैं । जो कोई भी ब्रह्मा कहता है तो भले ही लक्ष्यसे चाहे चूक गए हों, पर आदि-नाथ प्रभुके लिए ब्रह्माकी उपाधि थी । ये कैलाशपति हैं । कैलाश उनका निवास था । देवाधिदेव महादेव, आत्मसुखको करनेसे शंकर, ये प्रभु युगके आदिमें जो कुछ बताया वह सब सृष्टिके माफिक था, जो जो उपाय बताया सो कहते हैं ना नई दुनिया बनाया, सृष्टि रचा, ब्रह्मा ने । कुछ न था और बनाया हो सो बात नहीं, पर भूले भटके थे, सरल थे, किंकर्तव्यविमूढ़ थे, तो उन्होंने वह सब मार्ग बताया, इस कारणसे वे सृष्टिकर्ता कहलाये । वस्तुस्वरूपकी दृष्टिसे कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थ

का कुछ करता नहीं है, इसलिए प्रत्येक पदार्थ स्वयं सिद्ध है । कोई किसीकी सृष्टि नहीं करता, लेकिन एक व्यवहार दृष्टिसे जब कि भोगभूमि नष्ट होनेसे लोग घबड़ा गए थे तो उनको मार्गमें लगाया, उन प्रजाओंको कृषि आदिक कार्योंमें लगाया इसलिए वे प्रजापति कहलाये ।

श्री ऋषभयेवकी प्रबुद्धतत्त्वता—ये ऋषभ देव प्रजा का जीवनोपकार कर कुछ समय बाद प्रभु बने, तो प्रभु बने तो प्रभुत्वतत्त्व बने । खुद तत्त्वको जाना और दूसरोंको मोक्षका मार्ग बताया । जैसे समझो किसीके बचपनका कोई मित्र अपने बचपनमें, जवानीमें, अनेक प्रकारसे मददगार बनता और पीछे विरक्त हो जाय तो वैराग्य मार्गमें लगाकर मददगार बनता ऐसे ही ऋषभदेव प्रभुका प्रजासे लौकिक अलौकिक सब प्रकार से सम्बंध रहा, तो यह ऋषभदेव प्रारम्भसे ही समस्त मानवों के उपासनीय थे, कोई उन्हें महादेवके रूपमें, कोई ब्रह्माके रूप में, कोई शंकर रूपमें, कोई विष्णुके रूपमें ऋषभदेवको मानते चले आये । कोई आदिम बाबा मानते थे । जो सबसे पहले हो आदिमें उसे आदिम कहते हैं । चौबीस तीर्थंकरोंमें सबसे पहिले यह हुए । तो ऐसे ऋषभदेव भगवान हैं । प्रजाका शासन करके फिर अद्भुत उदय वाले बने, ऐसी वीतराग अवस्थामें आये कि अब न किसीसे बोलते हैं, न सम्पर्क है, दिव्यध्वनि खिरती है तो वह एक साधारणतया खिरती

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है, किसीसे बातचीत करते हुए नहीं खिरती । भव्य जीवोंके भाग्यसे प्रभुके वचनयोगसे दिव्यध्वनि खिरती है । इतने निरपेक्ष विशुद्ध आत्मा शरीरमें हो गए । और इस समय तो शरीररहित हैं, सिद्ध अवस्था है, पर सशरीर भगवान अरहंत ऋषभदेव जिन्होंने करोड़ों वर्षों तक अरहंत रहकर धर्मोपदेश दिया था, ऐसे ऋषभदेव भगवानके गुणों का स्तवन यहाँ समन्तभद्राचार्य कर रहे हैं । स्तवनमें लाभ इस दृष्टिसे, इस नातेसे होता है कि प्रभुके गुणोंकी जो अवस्था है, उनका जो स्वरूप है उस स्वरूपके प्रति ऐसी आस्था हो कि वह स्वरूप कहीं बाहरसे नहीं आया, वह स्वयं ही अनादि सिद्ध है, उसको ढकने वाले विषय कषायके भाव हैं । विषय तृष्णा, इच्छा, ये भाव विभाव दूर हों तो उनका परिपूर्ण विशुद्ध स्वभाव स्वयं प्रकट हो जाता है । ऐसे इस स्तवनका प्रारम्भ स्वयंभू शब्दसे किया है और इस स्तुतिका या किसी छन्दका प्रथम छन्दका शुरूआत स शब्दसे आये तो वह छन्द शास्त्रके जानने वालोंमें वह विदित होता है और वह मंगली छंद कहलाता है, इसे कहते हैं अत्यन्त शुभ । इसी प्रकार कुछ शब्द हैं ऐसे जिनका आदिसे शब्द बने तो वह बड़ा मंगलरूप माना जाता है । उनमें से स शब्द बहुत ही शुभ शब्द माना गया है, उस स शब्दसे इस स्तवनका प्रारम्भ हुआ ।

विहाय यः सागर वारिवाससं वधूमिवेमां वसुधावधूं सतीम् ।
मुमुक्षुरिक्ष्वाकुकुलादिरात्मवान् प्रभुः प्रवव्राजसहिष्णुरच्युतः ।३।

श्री ऋषभदेवका आदर्श त्याग—प्रभु ऋषभदेव राज्य छोड़कर दीक्षाको चले गए, यह बात इस तीसरे छंदमें कही गई है । पृथ्वीको छोड़कर गए । कितनी पृथ्वी थी उनके राज्य में ? और उस समय उनके प्रतिपक्षमें कोई राजा न था । एक छत्र राज्यसा समझिये । चक्रवर्ती भी जिसके दास रहते हों । तीर्थंकरके समयमें कोई राज्य नहीं हुआ करता । एकछत्र राज्य होता है । तो इसका वर्णन किया है कि ऐसी बसुधा वधूको छोड़कर गए । बसुधा कहते हैं पृथ्वीको और वधू मायने स्त्री । सती पृथ्वीको छोड़कर गए । सती उसे कहते हैं जो दूसरा मालिक न रखता हो । जिसका एक ही मालिक हो उसे सती कहते हैं । तो प्रभु ऋषभदेव इस सती पृथ्वीको छोड़कर गए । अलंकार रूपमें यह जाहिर हुआ कि उस समय उस पृथ्वीका मालिक कोई दूसरा न था । कैसी वह पृथ्वी थी, कैसी वह बसुधा वधू थी कि समुद्रका जल हो जिस का वस्त्र था, यह पृथ्वी नंगी न थी । इस सती बसुधाने इतनी लम्बी साड़ी पहन रखी थी कि चारों तरफका जो जल है वही इसका वस्त्र था । तो समुद्रका जल ही जिसका वस्त्र है उस वस्त्रको धारण करने वाली इस बसुधा वधूको यों छोड़कर गए जैसे कि वधूको छोड़कर गए । उपलंकार इस ढंगसे दिया

Report any errors at vikasnd@gmail.com

कि दोनों ही बातें उद्देश्य विधेयमें आ जाती हैं। याने घरको भी छोड़ा, पत्नीको भी छोड़ा, पृथ्वीको भी छोड़ा और छोड़ करके यह इच्छ्वाकुवंशके आदि पुरुष मुमुक्षुकी तरह बड़े सहन शील अपने किए हुए संकल्पसे च्युत न होने वाले, बस ये प्रभु चले गए, दीक्षा धारण की, समंतभद्राचार्यके एक एक शब्दसे कई कई रहस्य ध्वनित होते हैं। प्रभु अच्युत थे अपने संकल्प से च्युत न होने वाले। यह शब्द यह जाहिर करता है कि उन के साथ हजारों राजाओं ने दीक्षा ली थी मगर अनेक राजा भ्रष्ट हो गए थे। उनका तो वर्णन छंदमें नहीं है। वर्णन करने का प्रयोजन क्या पड़ा? प्रभु आदि देवकी स्तुति हो रही है। उनमें अन्यके दोष वर्णन करनेसे स्तवनकी प्रशंसा नहीं होती, लेकिन जो घटना है वह किन्हीं न किन्हीं शब्दोंमें ध्वनित हो जाती है।

श्री ऋषभदेवकी अच्युतता व सहिष्णुता—प्रभु अच्युत थे, सहिष्णु थे, इन दोनों शब्दोंसे यह ध्वनित हो जाता है कि अनेक राजा च्युत हो गए, क्योंकि वे सहिष्णु न थे। सहनशीलता मनुष्यका अद्भुत गुण है, जो सहनशील नहीं है, किसीकी बात सुन सुनकर चित्तमें क्षोभ आ जाता है। कोई थोड़ा कष्ट उपद्रव उपसर्ग आया तो उस समय वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है। वह पुरुष अपनी क्या प्रगति कर सकता है। लौकिक पुरुष अलौकिक पुरुष उनमें, जो जो

http://www.jainkosh.org

भी महान हुए हैं, उनमें एक यह गुण था कि वे सहिष्णु थे। अपने किए गए इरादेसे च्युत नहीं हुए। तो ऐसे अच्युत सहिष्णु ऋषभदेव भगवान जो आत्मावान थे याने जिनका आत्मा, परमात्मा, जिनका ज्ञान सर्वस्व सदा दृष्टिमें रहता था। वह कौन सा बल है, जिस बलपर राज्य छोड़ा जाय, परिजन छोड़े जायें, दिगम्बर रहा जाय, जंगलमें बसा जाय, क्योंकि लोकदृष्टिमें ये सब बातें बड़ी दुर्भाग्य जैसी मानी जाती हैं। इसके कोई न रहा, अकेला रह गया बेचारेका कोई साथी नहीं। कुछ इसके पास ही नहीं, ऐसी दशाको अंगीकार करे और प्रसन्न रहे और ऐसी प्रगतिसे चले कि बड़े बड़े मनुष्यों के इन्द्र देवोंके इन्द्र भी चरणोंमें नमस्कार करें, वह कौनसा बल था, कौन सी कला थी, जिस कलापर ये सारे उपद्रव भी सह लिए गए? और उनका चित्त प्रसन्न रहा? उस कलाको ही उद्योतित करता है यह आत्मावान। वह स्व-दयालु थे, परदयालु थे। लोग कहते हैं कि इनके हृदय है कहाँ? यह है हृदयवान। तो हृदयवानसे बढ़कर शब्द है आत्मावान। सर्व जीवोंको अपनी तरह स्वरूपको देखे वह आत्मावान है। अपने आपके सहज चैतन्यस्वरूपमय आत्माको निरन्तर प्रतीतिमें रखे वह है आत्मावान। प्रभु मुमुक्षु थे। मोक्षकी इनके आकांक्षा थी। संसारके जन्ममरण संकट ये इनको रुचिकर न थे। ऐसे आत्मावान प्रभु जिन्होंने गृहस्था-

Version 1

वस्थामें प्रजाका साथ दिया, उनको संभाला, विचित्र युग परिवर्तनमें ये सबके आलंबन रहे और अब आत्मोद्धार चाहने वाले पुरुषोंके लिए आलम्बन बन गये केवल यह सहिष्णु अच्युत आत्मावान प्रभु प्रव्रज्यामें चले गये। एक ही धातुमें जो चलने वाली धातु हैं गमन अर्थ वाली, उनमें यह धातु रखनेका प्रयोजन यह है कि प्रव्रज्याके लिए चले गए। गमन अर्थ वाली करीब ७०–८० धातुवें हैं, जिनका अर्थ है सिर्फ जाना, मगर गत्यर्थक धातुवोंका जानना अर्थ है। जानामें भी भेद करके ७०–८० प्रकार हो जाते हैं। कोई प्रयोजन भेदसे जाना। जानेकी कलामें अन्तर रहता है, ऐसा यह प्रव्रज्या शब्द रखा। प्र धातुका प्रयोग किया। जिसका अर्थ होता है बहुत सुन्दर कार्यके लिए। प्रव्रज्याके लिए गमन किया। किन्हींमें चलना, जाना, भगना, मटकना आदिक अनेक गत्यार्थक धातु होती हैं। जैसे हिन्दीमें खानेके लिए कई प्रयोग होते खाना, जीवना, गुटकना, ठूसना आदिक, पर सबके भिन्न-भिन्न आशय हैं। कोई प्रयोजनका आशय रखता कोई सम्मान, आदर सत्कारका आशय रखता। तो यहाँ प्रभु प्रव्रज्या, ऐसे ही शब्द रखा है—चत्तारिसरणं पव्वज्जामि, मैं चारकी शरणको पाता हूँ, अर्थ तो यह है मगर पाना किस ढंगका। किन कलाओं वाला, किन विधियोंसे? एक ही धातुमें कला, विधि, तरकीब सब एक साथ गर्भित हो जाते

हैं। जैसे अरहंत सिद्ध प्रभु बने, जैसे साधुजन मार्गपर चल रहे हैं उस तरहका चित्र बनाकर उस तरहकी भावना रखता हुआ मैं शरणको प्राप्त होता हूं। शब्द एक है मगर उसमें भाव अनेक और बहुत भरे हुए हैं। तो यों प्रभु पृथ्वीको छोड़कर दीक्षाको गए। कहना तो इतना था, मगर अनेक विशेषणोंसे अनेक बातें जाहिर करके आत्मप्रभुको इस विशेषताको दर्शाया है।

स्वदोषमूलं स्वसमाधितेजसा निनाय यो निर्दयभस्मसात्क्रियाम्।
जगाद तत्त्वं जगतेऽर्थिनेऽञ्जसा वभूव च ब्रह्मपदामृतेश्वरः ॥४॥

समाधिबलसे दोषोंका प्रभु द्वारा भस्मसात्कार—भगवान ऋषभदेवने अपनी समाधिरूपी अग्निसे (तेजसे) दोषोंकी जड़को निर्दयताके साथ भस्मसात् क्रियाको पहुंचा दिया। बात यहाँ कही जा रही है कि दोषोंकी जड़ है मोह रागद्वेष। इसको मूलसे भस्म कर दिया, पर किन शब्दोंमें कहा जा रहा? अपनी समाधिके तेजके द्वारा अपने दोषमलको निर्दयतासहित भस्मसात क्रियाको पहुंचा दिया। वे सब भस्म हो गए। भस्म कर दियो, इन शब्दोंमें क्यों नहीं कहा कि एकदम कर्तृत्वका आशय न आ जाय। एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कुछ करता नहीं है, वे स्वयं भस्म हो गए। उन्होंने भस्म होनेकी क्रियाको पाया निर्दयता पूर्ण। जैसे कि जड़से नष्ट करने वाला पुरुष मानो निर्दय होकर भस्म करता है ऐसे समाधि तेजके द्वारा, निर्दयता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

के द्वारा भस्म किया। यहाँ एक बड़ी ऊँची दया बसी हुई है और उस उत्कृष्ट दयाको सिद्ध करनेके लिए निर्दयता शब्द दिया है, स्वदया परदया। कर्मोंका तो बिगड़ता क्या है? कार्माण वर्गणा न कर्मरूप रही, मात्र कर्मरूप रही तो उनका बिगड़ता क्या है? बल्कि एक भला ही हुआ कि वे भी विकार से बच गए। तो वे भी ठीक रह गए, खुद भी ठीक हो गए और ऐसा ठीक हो जानेके कारण ही वे जगतके जीवोंको सही उपदेश दे सके। कितनी ऊँची दया बसी हुई है, जिस उत्कृष्ट दयाको बतानेके लिए निर्दय शब्दका प्रयोग किया। ये सब किस तरह भस्मसात होते हैं? उसका उपाय है समाधि तेज। समाधि उसे कहते हैं जहाँ आधि, व्याधि, उपाधि ये सब शान्त होते जाते हैं। आधि तो मानसिक है, व्याधि शारीरिक है और उपाधि सभी प्रकारकी है, जिसमें एक समझलो वाचनिक। आधि कहते हैं मानसिक दुःखको और व्याधि कहते हैं विशेष व्याधिको, क्योंकि शरीरका इस जीवके साथ अन्य पदार्थोंकी अपेक्षा विशेष सम्बन्ध है। शरीरमें रोग हो तो कोई उत्कृष्ट भेदविज्ञानी शरीरकी याद न करे और एक आत्माका ही याद रहे ऐसा तो कोई विशिष्ट ज्ञानी ही होगा। इस शरीरमें एक क्षेत्रावगाह है और उपाधि कहते हैं उप आधि, उप मायने समीप और आधि मायने मानसिक दुःख, जो मानसिक दुःखोंके पास ले जाय उसका नाम है

http://www.jainkosh.org

उपदेश दे सके। कितनी ऊँची दया बसी हुई है, जिस उत्कृष्ट दयाको बतानेके लिए निर्दय शब्दका प्रयोग किया। ये सब किस तरह भस्मसात होते हैं? उसका उपाय है समाधि तेज। समाधि उसे कहते हैं जहाँ आधि, व्याधि, उपाधि ये सब शान्त हो जाते हैं। आधि तो मानसिक है, व्याधि शारीरिक है और उपाधि सभी प्रकारकी है, जिसमें एक समझ लो वाचनिक। आधि कहते हैं मानसिक दुःखको और व्याधि कहते हैं विशेष व्याधिको, क्योंकि शरीरका इस जीवके साथ अन्य पदार्थोंकी अपेक्षा विशेष सम्बंध है। शरीरमें रोग हो तो कोई उत्कृष्ट भेदविज्ञानी शरीरकी याद न करे और एक आत्मा आत्माका ही याद रहे, ऐसा तो कोई विशिष्ट ज्ञानी ही होगा। इस शरीरमें एक क्षेत्रावगाह है, और उपधि कहते हैं उप+आधि, उप मायने समीप और आधि मायने मानसिक दुःख, जो मानसिक दुःखोंके पास ले जाय उसका नाम है उपाधि। आज इतने पढ़े लिखे लोगोंको आजके बाद मानसिक दुःखमें पटका जायगा, इसका उत्सव मनाया जा रहा है। जैसे कहते हैं दीक्षान्त समारोह। तो आजके इस दीक्षान्त समारोहका अर्थ है कि आजसे यह मानसिक दुःखमें प्रगति करेगा उसका उत्सव है। तो ये समस्त उपाधियाँ ये सब कष्ट करने वाली हैं, वे जहाँ शान्त हो जायें ऐसा परिणाम। जिस परिणाममें केवल ज्ञानस्वरूप अंतस्तत्त्व ही ज्ञानमें रहता हो। उस वृत्ति

Version 1

का इतना उत्कृष्ट तेज होता है कि विकार ये सब भस्म हो जाते हैं। यह करके अनुभवनेकी चीज है। अपने ज्ञानको ऐसा विशुद्ध और तीक्ष्ण दृष्टिका बनायें कि जहाँ यह स्वयं ज्ञान ही ज्ञानमें रहे, अन्य विकल्प सब शान्त हो जायें, ऐसी अलौकिक स्थिति ही कर्मोंको नष्ट करनेमें समर्थ होती है।

श्री ऋषभदेवकी ब्रह्मपदेश्वरता—भैया ! धर्मके नामपर चाहते तो हैं सब कि मेरा अच्छा भविष्य बने, कर्म टल जायें, जन्ममरण दूर हो जायें, पर इसका उपाय अन्य कुछ नहीं है। अन्य जो उपाय बनाये जाते हैं वे मूल उपायके काबिल बनाने के लिए बनाये जाते हैं। वे स्वयं कर्मको भस्म करनेके उपाय नहीं हैं। और कर्मोंको भस्म करनेके उपायका प्रयोग कर सकें, उसकी तैयारीके उपाय हैं—शेष जितने भी धार्मिक कार्य हैं। धर्म तो एक ही है—ज्ञानदृष्टि, स्वभावदृष्टि, अन्य तो सब इस उपायके उपाय हैं। कर्मविनाशके उपाय नहीं हैं। जैसे दीक्षा ली, साधु बने, व्रत करे, प्रतिमा ले, उपवास है, तपश्चरण है, तो कर्मोंके नाशके उपाय बनानेके उपाय हैं। कर्मनाशका उपाय तो एक चैतन्यस्वभावका अनुभव करना है, स्वानुभव। निर्विकल्प दशा ही कर्मोंके नाशका उपाय है। सो प्रभुने अपनी समाधिरूपी तेजके द्वारा अपने दोष मूलको निर्दयतासे भस्मसात क्रियाको पहुंचा दे और फिर इस जगतके लिए जो कि अर्थी है याने आत्मोद्धार चाहने वाला है ऐसे भव्यसमूहके लिए

तत्त्वको बोला। तत्त्वं जगाद। गद् धातुका प्रयोग किया है। बोलना, कहना, भाषण करना आदिक अनेक शब्द होते हैं, मगर गत् धातुका अर्थ है स्पष्ट सही कहना। सबसे छोटा है, धातु एक ही है, पर गत् धातुके प्रयोगसे जो क्रिया बनाई गई—जगाद्, यह अत्यन्त भूतकालका प्रयोग है लृटलकारमें। जो बहुत पहलेका भूत, जो आधुनिक इतिहाससे भी बाहर हो, उसके लिए प्रयोग होता है इस लकारका। प्रभुने इस अर्थी जगतके लिए तत्त्वको स्पष्ट बताया है। प्रभु तो साधु हुए बाद मौन हो जाते हैं। तो मौन अवस्थामें अपनी मुद्रा, चेष्टा, चर्या के द्वारा तत्त्वको स्पष्ट बताया और केवलज्ञान होनेपर दिव्यध्वनि द्वारा तत्त्वको स्पष्ट बताया और फिर ब्रह्म पदामृतके ईश्वर हुए याने परमात्मा हुए। ब्रह्मपद क्या है ? वह अलौकिक चैतन्यस्वरूप, वही अमृत है। वह जहाँ व्यक्त हो गया है, अनन्तज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त शक्ति जहाँ प्रकट हो गई है ऐसे अमृतके ईश्वर प्रभु हुए। इस छंदमें दो बातें बताई गई हैं कि प्रभुने घातिया कर्मोंका नाश किया और इस आत्मप्रगति चाहने वाले जगतको तत्त्वोपदेश किया।

स विश्वचक्षुर्वृषभोऽर्चितः सतां समग्रविद्यात्मवपुर्निरञ्जनः।
पुनातु चेतो मम नाभिनन्दनो जिनो जितक्षुल्लकवादि शासनः ॥ ५ ॥

श्री ऋषभदेवकी विश्वचक्षुष्कता—वह विश्वचक्षुः, जि-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

सके आत्माके सारे प्रदेश ही चक्षु बन रहे हैं। यहाँ मनुष्य तो एक इस चमड़ीकी आँखसे देखते हैं, पर प्रभु नेत्रसे नहीं देखते। वह आत्माके समस्त प्रदेशोंसे देखते हैं इस कारण विश्वचक्षु कहलाते हैं। उनका समग्र आत्मा ही चक्षु बन गया है अर्थात् अनन्त दर्शन जिसके प्रकट हुआ है, जिससे सारा अर्थसमूह दिख गया है, सामान्य प्रतिभासित हुआ ऐसा विश्वचक्षु वृषभ भगवान हैं। वृषभका अर्थ है—वृष कहते हैं धर्म को। जैसे छहढालामें कहा है—जिनवचनमें शंका न धारि वृष। वृष मायने धर्म। वह वृष जिससे शोभाको प्राप्त होता है उसे कहते हैं वृषभ। तो हे वृषभ जो सत् पुरुषोंके द्वारा पूज्य है, अर्जित है। पूजित और अर्जितमें क्या अन्तर है? अर्च चर्च पूजायाँ, चर्चित भी कह सकते, अर्चित भी कह सकते याने लोकचर्चा करते हुए पूजे उसे कहते हैं चर्चित और खाली पूजे चाहे डरसे पूजे, चाहे श्रद्धाभक्तिसे पूजे वह कहलाता है पूजित प्रभु। ये सबके अर्चित हैं याने सब लोग उनके गुण गाते हुए पूजा करते हैं जो पूजा चर्चासहित होती हो उन को कहते हैं चर्चित। तो सज्जनोंके यह चर्चित है, और इस का समग्र विद्यात्मवपुर समस्त ज्ञानरूप ही शरीर है जिनका उनका शरीर और कुछ नहीं, किन्तु समस्त ज्ञान हजारों विद्याओंके ईश्वर हैं, यही उनका शरीर है। वे निरंजन हो गए, मलरहित हो गए। निरंजन होनेसे निर्मल होना ऊँची बात

http://www.jainkosh.org

है। मल तो कुछ मोटासा लगा हो, दूर हो गया, पर अंजन तो मलकी अपेक्षा बहुत नजदीककी चीज होती है। जैसे आँख का कीचड़ तो मल है। और आँखमें अंजन लगा है, तो मल तो है ऊपरी चीज और अंजन है भीतरी दोष, चिपका हुआ दोष, तो ऐसे अञ्जनसे रहित हुए प्रभु।

श्री ऋषभदेवकी आराधनासे पवित्रताका विकास—ये नाभिनन्दन प्रभु जिनेन्द्रदेव जिन्होंने समस्त क्षुल्लकवादियोंका शासन जीत लिया। क्षुल्लक कहते हैं तुच्छको, छोटेको, जैसे प्रतिमाधारियोंमें क्षुल्लक कहा जाता है। उसका अर्थ है तुच्छ। अब तुच्छ क्या? छोटा मुनि। क्षुल्लकका अर्थ है छोटा मुनि। अगर कोई क्षुल्लकके साथ श्रावक शब्द लगा दे तो उसका तो अर्थ हो जायगा तुच्छ (गया बीता) श्रावक। क्षुल्लक तो विशेषण है। उसके साथ लगता है छोटा मुनि, छोटा साधु। पर जब उसे श्रावकके साथ कहेंगे तो कहा जायगा उत्कृष्ट श्रावक। तो क्षुल्लकवादियोंका शासन जिन्होंने जीत लिया अर्थात् एकान्तवादियोंका जिनके दिव्य उपदेशसे परिहार हुआ ऐसे नाभिनन्दन प्रभु मेरे चित्तको प्रसन्न करें। ये नाभिनन्दन थे। जैसे अन्य लोग कहते हैं कि ब्रह्मा विष्णुकी टुड़ी (सुंडी) से निकले, विष्णु लेटे हैं और उनकी सुंडीसे कमल निकला और उस कमलसे ब्रह्मा पैदा हुए। चित्र भी लोग ऐसा बनाते हैं। तो ऐसी जो अनेक बातें बनती हैं उनका कोई आधार तो होता

Version 1

ही है, आधार यह था कि नाभिराजासे ये वृषभदेव निकले, और यह नाभि सुंडी न थी, किन्तु नाभि राजा थे, उनके ये निकले और किस तरह निकले, किस तरह प्रकट हुए, जैसे कमलपर कोई बैठा हो याने निर्लेप। उस चित्रणको जैसे लौकिकजन बोलते हैं, वह मरुदेवीके मरुभागमें उस तरह रहे जैसे कमलमें बैठे हुए। मानवोंसे विचित्र जन्म था उनका। जेरमें लिपटे हुए मनुष्योंकी तरह पड़े हों, इस तरह प्रकट नहीं होते और इसी कारण उनके जन्मको कभी कभी पोत जन्म भी कहते हैं। वे जेरसे उत्पन्न नहीं होते, किन्तु निर्लेप पैदा होते। तो विष्णुकी नाभिसे प्रकट हुए ब्रह्मा जो चतुर्मुखी होते हैं, वे सब बातें यहाँ घटित होती हैं। ऋषभदेव केवल ज्ञानी हुए तो चतुर्मुखी हुए, नाभिसे उत्पन्न हुए। वे ब्रह्मा यों कहलाते कि भोगभूमिके समाप्त होनेपर सारी सृष्टिकी इन्होंने रचना बताया, ऐसे ये नाभिनन्दन प्रभु मेरे चित्तको प्रसन्न करें।

यस्य प्रभावात्त्रिदिवच्युतस्य क्रीडास्वपि क्षीवमुखारविन्दः।
अजेयशक्तिर्भुविबन्धुवर्गश्चकार नामाजित इत्यबन्ध्यम् ॥६॥

प्रभु अजितनाथकी अजेय शक्तियां—अजितनाथ भगवान के स्तवनमें सर्वप्रथम कह रहे हैं कि यह स्वर्गसे आये थे। ये स्वर्गसे आये हुए, जिनके प्रभावसे क्रीड़ा (खेल) में भा साथी जनोंका मुखारविन्द अजेय शक्ति रहता था अर्थात् यह अजित

नाथ बाल्यावस्थामें जहाँ जहाँ साथ रहे उनके साथी भी अजेय शक्ति हुए और इसी कारण सर्व बन्धुवर्गने उनका सफल नाम रखा। अजित—जो किसीसे न जीता जाय सो अजित। नजित: इति अजित:। इस छंदमें कई बातोंका संकेत है। एक तो यह स्वर्गसे आये थे। तीर्थंकर नरकसे आकर भी होते हैं और ऊर्द्ध लोकसे आकर भी होते हैं। जो देवलोकसे आकर तीर्थंकर होते हैं वह बात तो बहुत प्रसिद्ध है। गर्भमें आनेसे ६ महीना पहले रत्नवर्षा आदिक अतिशय होने लगते हैं, और जो नरकगतिसे आकर तीर्थंकर होते हैं उनके भी गर्भमें आने से ६ महीने पहलेसे रत्नवर्षा होने लगती है। पर एक ऐसी कोई कल्पना करे कि वह जीव तो नरकमें रहे, कुटे पिटे, दुःख भोगे और यहाँ खुशियां मनाई जायें गर्भमें आनेसे ६ महीना पहलेसे तो यह बेतुकी बात कैसे रहेगी ? तो वहाँ बेतुकी कुछ नहीं है। जैसे गर्भमें आनेसे ६ महीना पहलेसे रत्नवर्षा होती है तो वहाँ उसी समयसे जबसे यह रत्नवर्षा शुरू होती है वहाँ देव कोट रचते हैं। तो वहाँ देवोंका पहरा रहता है कि कोई नारकी जीव सता न सके। मनुष्यगतिसे जाकर कोई तीर्थंकर नहीं होता और हो तो उसके पंच कल्याणक नहीं हो पाते। तिर्यञ्चगतिसे भी जाकर कोई तीर्थंकर नहीं होता। तीर्थंकर जो होगा कोई नरक और देवसे अतिरिक्त गतिसे आकर तो उस ही भवमें तीर्थंकर प्रकृति बांधेगा, फिर केवल

Report any errors at vikasnd@gmail.com

ज्ञानकल्याणक मनाया जायगा। निर्वाण कल्याणक भी मनाया जायगा और किसीने अगर गृहस्थावस्थामें ही तीर्थंकर प्रकृति बाँध ली तो उसके तीन कल्याणक मनाये जायेंगे। तप, ज्ञान, निर्वाण, पर गर्भ और जन्म ये दो कल्याणक उसीके ही होते हैं जिसने पूर्वभवमें तीर्थंकर प्रकृतिका बंध किया और तीर्थंकर प्रकृतिका बंध करके वह जीव नरकगति या देवगतिमें जाकर वहांसे आकर तीर्थंकर होता है। नरकमें जाने वाला तीर्थंकर प्रकृतिबंध वाला तीसरे नरकसे नीचे नहीं जाता। तो यह प्रभु ऊर्द्ध लोकसे आये हैं और यह जिस जिस जगह साथ रहते हैं, जिन जिनका इनका सत्संग रहा बचपनमें भी तो इनके सहवासी सब अजेय रहे और इसी कारण इनका नाम अजित नाथ रखा गया।

अद्यापि यस्याजितशासनस्य सतां प्रणेतुः प्रतिमङ्गलार्थम्।
प्रगृह्यते नाम परं पवित्रं स्वसिद्धिकामेन जनेन लोके ॥ ७ ॥

मङ्गलनायक श्री अजितनाथकी परम स्मर्यमाणता— आजकल भी अपनी सिद्धि चाहने वाले मनुष्योंके द्वारा अजित नाथ यह परम पवित्र नाम ग्रहण किया जाता है, लोग नाम लेते हैं। किसलिए? एक मंगलकार्यके लिए। जहाँ पाप गलें और आनन्द इतना हो, ऐसी स्थिति पानेके लिए जिनका आज भी नाम लिया जाता है, जिनका शासन अजित है, जो उन्होंने मार्ग बताया, आत्मतत्त्वका उपदेश किया, जिस जिस स्वरूपका

http://www.jainkosh.org

वर्णन किया वह सब अजित है, अजेय है। बाधारहित है और निर्बाध उपदेश बननेका कारण यह है कि उपदेश अनेकान्त वाणीमें है। पदार्थ वस्तुतः अवक्तव्य है, उसका स्वरूप यथार्थ वर्णनमें नहीं आ सकता, लेकिन वर्णन बिना काम भी नहीं चलता तो वर्णन होता है दो पदार्थोंका। द्रव्यदृष्टि और पर्यायदृष्टि, भेददृष्टि अभेद दृष्टि तो उसका दोनों दृष्टियोंसे कथन है इस कारण प्रभुका शासन अजित है। इसका कोई खण्डन नहीं कर सकता। जो प्राणियोंके लिए हितकारी है ऐसा अजित शासन जिनका है उन प्रभुका नाम आज भी मंगलके लिए लिया जाता है। ये प्रभु समस्त सज्जनोंके प्रणेता कहलाते हैं। प्रणेताके दो अर्थ हैं—प्रकृष्टनेता अथवा उसके ले जाने वाले रचने वाले, जिनके उपदेशको सुनकर लोग सज्जन बनते हैं यह तो हुई एक रचनाकी बात और जितने भी संत पुरुष हैं उन सबके ये मुख्य है, यह है प्रणेता की बात तो उनका आज भी पवित्रनाम मंगल कामनाके लिए लिया जाता है।

यः प्रादुरासीत्प्रभुशक्ति भूम्ना भव्याशयालीनकलंकशान्त्यै।
महामुनिर्मुक्तघनोपदेहो यथारविन्दाभ्युदयाय भास्वान ॥८॥

श्री अजितनाथकी प्रभुशक्तिका प्रताप— जो प्रभु प्रभुशक्ति की बहुलतासे भव्य पुरुषके अभिप्रायमें लीन कोई कलंक हो तो उसकी शान्तिके लिए हुए अथवा उनके प्रमोदके लिए हुए

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जैसे कि कमलके प्रमोदके लिए सूर्य होता है, जब कि सूर्यका कोई घन आवरण न रहे, बदल न रहे और स्पष्ट आवरण अथवा प्रकाश हो तो वहाँ जैसे कमल प्रफुल्लित हो जाता है ऐसे ही ये प्रभु अपनी घन शक्तियोंके कारण ये भव्य पुरुषों के कलंककी शान्तिके लिए समर्थ रहते हैं। ये महामुनि थे। इनका घन उपदेह न था। घन उपदेह उसे कहते हैं जिसका देह भी बोझल होता है, जिसको देहमें ममता होती है, और जिसको ममता नही है तो देहके प्रति ख्याल न होनेसे देहका कुछ भी घन नहीं कहलाता, अथवा उनके देहमें वजन नहीं होता। इस शब्दसे स्वानुभूतिके समयकी स्थितिका एक चित्रण है। जो देहपर दृष्टि रखता है, देहसे लगाव, प्रीति रखता है, अहंभाव रखता है वह पुरुष अपनेको एक बोझल अनुभव करता है। उसके घन उपदेह बन गया और जो केवल एक अंतस्तत्त्वकी दृष्टि रखते हैं उनकी दृष्टिमें देह तक भी नहीं होता। उनको घन उपदेह नहीं बनता। रहा आया देह, लेकिन उनके विकल्पमें उपयोगमें देहकी कुछ भी बात नहीं है। और यह बात बनती है महा मुनिजनोंके तो अजितनाथ स्वामी विरक्त होकर एक महामुनि रूपमें आये। वहाँ अध्ययन उपदेशसे मुक्त रहे, इसी कारण भव्य प्राणियोंके हृदयमें रहने वाले कलंकोंकी शान्तिके करने वाले हुए। आत्महितके लिए केवल एक ही उपाय है शान्तिके लिए कि सबसे निराले

ज्ञानमात्र अपने स्वरूपमें दृष्टि आये। यह मैं हूं, बाकी मैं, कुछ नहीं, यह स्वरूप ही मेरा है। बाकी और कुछ मेरा नहीं, ऐसा जिसके दृढ़तम विश्वास है उस सम्यग्दृष्टि पुरुषके ही यह मुक्ति घनोपदेहता बनती है, सो ये प्रभु भव्य जीवोंके आनन्द के बढ़ानेके लिए हुए।

येन प्रणीतं पृथुधर्मतीर्थं ज्येष्ठं जनाः प्राप्य जयन्ति दुःखम्।
गाङ्गं हृदं चन्दन पङ्कशीते गज प्रवेका इव धर्मतप्ताः ॥६॥

श्री अजितनाथ प्रभु द्वारा प्रणीत पृथुधर्मतीर्थकी प्राप्ति से कष्ट प्रणाश—संसारके मनुष्य जो दुःख पर विजय पाते हैं वे इस ही श्रेष्ठ धर्म तीर्थको प्राप्त करके दुःख पर विजय पाते हैं। किस 'धर्मतीर्थको ? जो कि अजितनाथ प्रभु ने बताया। अजितनाथ भगवानकी स्तुति चल रही है इसलिए उनकी ही बात कही जा रही है कि जिनके द्वारा प्रणीत, बताये गए, प्रकट किए गए धर्मको पाकर मनुष्य दुःख पर विजय प्राप्त करते हैं, देहमें आत्मबुद्धि हो, दुःखपर दृष्टि हो तो उससे कायरता बढ़ती है, दुःखोंपर विजय नहीं बनती, दुःखोंपर विजय वे ही पा सकते हैं जिनकी आत्मस्वरूपमें, आत्मरूपमें रुचि हुई है, आस्था हुई है, जो निजको निज परको पर जानते हैं वे ही दुःखोंपर विजय प्राप्त करते हैं, किन्तु ऐसे ज्ञानी पुरुषके लिए दुःख कुछ चीज ही नहीं रहता। दुःख कहलाता है इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग, वेदनाप्रभव और आर्तध्यान।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

ज्ञानी पुरुषके निदान होता नहीं, क्योंकि उसने सब असार जाना। पंचेन्द्रियके विषय सब सारहीन हो गए तो उनकी दृष्टि कैसे करेगा। इष्टवियोगका दुख ज्ञानीको यों नहीं होता कि वह जानता है कि मेरे लिए जगतमें कुछ भी इष्ट नहीं है, क्योंकि मेरा साथी मात्र मैं ही हूं, मेरा अन्य कोई साथी नहीं है उसे इष्टका वियोग ही क्यों होगा? किसीको इष्ट माने तो वियोगका दुःख हो। ज्ञानी सब समझता है पदार्थों की भिन्नता जानता है, उसे इष्टका विकल्प नहीं होता। जब इष्टका विकल्प नहीं तो अनिष्टका भी नहीं, अनिष्टके संयोगमें दुःख हुआ करता है। जब अनिष्ट ही कुछ नहीं माना तो दुःख काहेका? धन घटा, मकान गिरा जो इसका दुःख जैसे ज्ञानीको नहीं ऐसे ही लौकिक जनोंके लिए जो जो बातें अनिष्ट होती हैं उनका संयोग हो तो उनका भी दुःख माना करते है, तो जिनके द्वारा प्रणीत विशाल धर्म तीर्थको पाकर मनुष्य दुःख पर विजय प्राप्त करते हैं जैसे कि बड़े तीव्र आतापसे तपे हुए हाथियोंके बच्चे गंगा नदीमें या किसी तालाबमें जिसका बहुत शीतल जल हो उसमें प्रवेश करके आतापके दुःखको दूर कर लेते हैं ऐसे ही मनुष्य प्रभुके बताये हुए मार्गपर चलकर दुःखोंपर विजय प्राप्त करते हैं। दुःखों पर विजय प्राप्त करनेकी और कोई तरकीब नहीं। धर्ममें आये, ज्ञानमें आये, अपने को देखे, मोह ममतासे दूर हटे,

दुःखों पर विजय पा लेगा और बाहरी चीजोंमें ममत्व रखकर कोई दुःखों पर विजय नहीं पा सकता।

सब्रह्मनिष्ठः सममित्रशत्रुर्विद्याविनिर्वान्त कषायदोषः।
लब्धात्मलक्ष्मीरजितोऽजितात्मा जिनः श्रियं मे भगवान वि-
धत्ताम् ॥१०॥

ब्रह्मनिष्ठ श्री अजितनाथकी आराधनासे श्री लाभ—वे प्रभु ब्रह्मनिष्ठ हैं, आत्माके अनेक नाम होते हैं और उनके भिन्न-भिन्न अर्थ समझनेसे आत्माका हर प्रकारसे बोध हो जाता है। जीव, चेतन आत्मा, ब्रह्मा आदिक अनेक नामोंसे पुकारा जाता है यह, तो जीवका अर्थ तो यह है जो प्राणोंसे जिन्दा रहे सो जीव। व्यावहारिक, मन, वचन आदिक इन्द्रिय आदिक प्राणोंसे जीवित रहे सो जीव। परमार्थतः अपना चैतन्य प्राणोंसे जो जीवित रहे सो जीव। चैतन्यका अर्थ है जो चेते प्रतिभासे सो जीव। आत्माका अर्थ है जो निरन्तर जानता रहे सो जीव और ब्रह्मका अर्थ है जो अपने गुणोंको बढ़ाता हुआ ही रहे सो ब्रह्म। तो ऐसे एक इस ब्रह्मस्वरूपमें चैतन्यस्वरूपमें जो निष्ठ रहे, उपयुक्त रहे, जिसके लिए शत्रु मित्र समान रहें, जब अपनेको सबसे निराला समझ लिया और मेरा बाहरमें कुछ है ही नहीं, यह स्पष्ट बोध हो गया, अब उनके बाहरी जड़ोंमें शत्रु और मित्रकी कल्पना भी नहीं जगती। प्रभुके लिए, ज्ञानियोंके लिए शत्रु और मित्र एक

समान हो गए। प्रभुने अपनी ज्ञानकला द्वारा समस्त कषाय दोषोंका उपशमन कर दिया है। कषाय दोष है, कषाय विपत्ति है। कितनी भी कषाय जगे तो तुरन्त क्षोभ हो होता है। उस कषायका निवारण किया। उस कषायको दूर किया तो सम्यग्ज्ञानने ही किया। तो अजितनाथ प्रभुके स्तवनमें कह रहे हैं कि जिनके सम्यग्ज्ञानकी कलाके द्वारा कषाय दोष सब निर्वाणको प्राप्त होते हैं शान्त होते हैं, दूर हो जाते हैं, ऐसे ये प्रभु हम सबका कल्याण करें। जिनको आत्मलक्ष्मी प्राप्त हो गई अर्थात् आत्मस्वरूप जिनकी दृष्टिमें निरन्तर बना रहता है, जो अजित है, किसीके द्वारा जीता नहीं जा सकता ऐसे हो अजित आत्मा जिनेन्द्र देव मेरेको श्री देवें, लक्ष्मी देवें। कौनसी लक्ष्मी ? ज्ञानलक्ष्मी। लक्ष्मी नाम तो वास्तवमें ज्ञानका है, आत्माके लिए क्योंकि लक्ष्मी, लक्षण, लक्ष्म चिन्ह ये सब एकार्थक शब्द हैं। आत्माका जो स्वरूप है, आत्माका जो चिन्ह है उसे कहते हैं लक्ष्मी। तो ऐसी आत्मलक्ष्मी जिन्होंने प्राप्त कर लिया है ऐसे अजितनाथ प्रभु हम सबका कल्याण करें।

त्वं शम्भवः संभवतर्ष रोगैः संतप्यमानस्य जनस्य लोके।
आसीरिहाकस्मिक एव वैद्यो वैद्यो यथा नाथ रुजां प्रशान्त्यै ११

श्री संभवनाथकी संभवतर्षरोगोंसे संतप्यमान जनोंके लिये आकस्मिक वैद्यता—सम्भवनाथ प्रभुके स्तवनमें समन्तभद्राचार्य कहते हैं कि हे प्रभु, तुम सम्भव हो। संसारमें उत्पन्न हुए तृष्णारूपी रोगसे संतप्त अथवा तप रहे इन प्राणियोंके लिए हे प्रभो आप एक आकस्मिक ही वैद्य हो। जैसे कि रोगोंकी शान्तिके लिए कोई वैद्य होता है, सो हे प्रभु आप तृष्णारोगसे संतप्त हो रहे इस जनसमूहके लिए आप आकस्मिक वैद्य हो। आकस्मिक वैद्य उसे कहते हैं जो कुछ अपेक्षा न रखकर बिना चाहे भी, बिना प्रतीक्षा किए भी जो आ जाय उसे कहते हैं आकस्मिक। अब संसारके प्राणी मोक्ष मार्गकी प्रतीक्षा कहाँ कर रहे थे और उस ज्ञानमार्गकी बात को कहाँ जान रहे थे ? तो ये प्रभु आकस्मिक हो तो मिले हैं प्राणियों को अर्थात् प्राणियोंकी ओरसे कोई तमन्ना न थी, इच्छा न थी, उनकी कोई तैयारी न थी, प्रोग्राम न था कि चलो प्रभु मिलेंगे, प्रभुसे उपदेश सुनेंगे, ऐसा कुछ न था। तो ऐसे लोगोंके लिए जो प्रभु मिले, इनकी दिव्यध्वनि खिरी तो यह सब इसके लिए आकस्मिक है। आकस्मिकका तो और भी अधिक महत्त्व है। सो जैसे रोगोंकी शान्तिके लिए कोई वैद्य होता है। वैद्य कहो या कवि कहो—दोनोंका एक ही अर्थ है। धातुवें अन्य अन्य हैं। कवि कवृ वर्णे धातुसे बना, वैद्य विद धातुसे बना। बंगलामें तो अब भी वैद्यको कविराज कहते हैं। छंदशास्त्र जानने वाले को बंगलामें कवि नहीं कहते, किन्तु जो वैद्य है उसको कविराज कहते हैं। तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

न कर पायेंगे। तो जहाँपर कल्याणकी वाञ्छा नहीं है वहाँ सब चीजें कठिन लगती हैं और जहाँ आत्महितकी वाञ्छा है वहाँ जैनशासनकी सब बातें प्रिय और हितरूप लगेंगी। तो हे प्रभो आपका शासन प्रिय और हित दोनोंका संयोगरूप है। हे प्रभो आप इन्द्रियदमन रूप जो तीर्थ है उसके नायक हो। आपके उपदेशमें मुख्यता यह है कि इन्द्रियका दमन करें याने इंद्रियके विषयोंमें आशक्त मत हों। इसीलिए सम्यग्ज्ञान सिखाया जाता और इसीलिए तपश्चरण आदिक किए जाते। यह एक साधुवोंका मूल गुण माना गया है कि इन्द्रियमें आशक्त न होना। ऐसी जिसकी मुख्यता है ऐसे तीर्थके हे प्रभु आप नायक हो। सो तुम किसकी तरह हो? प्रभु यह नहीं बताया जा सकता। तुम तुम्हारी ही तरह हो जो भव्य जीवोंको प्रतिबोध देनेके लिए आप नायक हो। इस छंदमें यह बताया कि भगवान जिनेन्द्रका शासन युक्ति सिद्ध है, प्रिय है, हित है और उसमें इन्द्रिय विषयोंसे वैराग्यकी शिक्षा भरी हुई है। ऐसा ही शासन जीवोंका हित कर सकता है।

मतिगुणविभवानुरूपतस्त्वयि वरदागमदृष्टिरूपतः।
गुणकृशमपि किञ्चिजोदितं मम भवताद्दुरिताशनोदितम् ।।१०५।।

प्रभुके गुणलवचिन्तनसे भी पापप्रलयका प्रारंभ—हे प्रभु जितनी मुझमें बुद्धि है उस बुद्धि वैभवके अनुरूप आपमें थोड़ा

स्तवनको मैं प्रवृत्त हुआ हो सो जो आगम है वह तो बरद है याने इष्ट फलको देने वाला है उससे ही इस दृष्टिके रूपसे आपके कुछ गुणोंका वर्णन किया, सो मेरे द्वारा हुआ प्रयास मेरे पापोंका विनाश करे अर्थात् आपका स्तवन करके मैं अन्य कुछ नहीं चाहता, न मुझे लौकिक सम्पदाकी चाह है, किन्तु मेरे पापोंका विनाश हो। पाप क्या हैं? मुख्य पाप तो अज्ञान है। जिनको अपने आत्माके स्वरूपकी दृष्टि नहीं मिल पायी और बाह्य तपश्चरण करते हुए दिख रहे हैं, जिनका कोई यथार्थ निर्णय नहीं हो पाया वे तो एक मझधार नदीमें पड़े हुए हैं, और जिनको यथार्थ ज्ञान हो गया है वे कैसी ही स्थितिमें हों तो भी वे स्वरक्षित हैं। सो ऐसा आपका सिद्धान्त न्यायदृष्टिसे कुछ कहकर कि मैं यही चाहता हूं कि इस गुणस्तवनके प्रसाद से मेरे सर्व पापोंका विनाश हो। अज्ञान, विषयोंमें आशक्ति, रागद्वेष मोह ये ही सब पाप कहलाते। इन पापोंका लेश भी मेरे आत्मामें न रहे।

अब मल्लिनाथ जिनेन्द्रका स्तवन करते हैं—

यस्य महर्षे सकलपदार्थप्रत्यवबोधः समजनि साक्षात्।
सामरमर्त्यं जगदपि सर्वं प्राञ्जलि भूत्वा प्रणिपततिस्म।।१०६।।

प्रभुके ज्ञानकी महिमा—मल्लिनाथ भगवानके स्तवनमें समंतभद्राचार्य कहते हैं कि जिस महर्षिका ज्ञान समस्त पदार्थोंका यथार्थ प्रकाश करने वाला हुआ उस महर्षिके प्रति देव,

Version 1

निमित्तपर कर्तृत्वका आरोप किया जाता है। भक्तिमें ऐसा ही कहा जाता है। तो प्रभु आपने इस समस्त जगतको निरंजन शांतिको प्राप्त कराया, निरंजन मायने निर्दोष निरपेक्ष।

जगत्की आर्तता—कैसा है यह जगत ? जिसे शान्तिको प्राप्त कराया। जगतके मायने संसार। संसारके मायने प्राणी समूह। तो प्रत्येक प्राणीकी बात लेनी है। जैसे कोई कहे कि अमुकने इस पार्टीको भोजन कराया तो पार्टीका कैसे भोजन होता है ? जितने भी आदमी हैं उन सबका भोजन है। तो ऐसे ही जब कहा जाय कि इस जगतको शान्ति दिलायी तो जगतका अर्थ क्या ? प्राणियोंका समूह। कैसा है यह प्राणी समूह ? कैसा है यह जगत ? अनित्य है। जो कुछ दिख रहा वह सब अनित्य है। यह प्राणी वर्ग भव-भवमें घूमता है, दुःखी होता है, यह सब अनित्य है और अत्राण है, रक्षारहित है। इस संसारमें कोई किसीकी रक्षा करने वाला नहीं है। एक बहुत बड़ा सर्वमान्य पुरुष भी हो, पूज्य हो, साधु हो, बड़ा नेता हो, सबके काम आ रहा हो वह भी कभी चूक जाय याने लोगोंके उपकारमें ढिलाई करे या न कर सके या बुराई कर दे तो लोग फिर उसे भी नहीं मानते और उसकी भी रक्षा नहीं करते। अन्य प्राणीसमूहकी तो बात ही क्या है, जो आज एक बहुत बड़ा राजा है वह न रहे राजा तो उसकी भी फिर कौन पूछ करने वाला है ? ऐसा यह सारा जगत

त्राणरहित है। और कैसा है यह प्राणी वर्ग ? अहंकारके द्वारा मिथ्या अध्यवसाय जिसके लग गया है, अहं (मैं) करता हूँ, मैं अमुक काम करता हूँ, अमुकको किया था, इस प्रकार का मिथ्या अध्यवसाय जिसको लगा हुआ है, ऐसा यह प्राणीसमूह, इसे शान्ति पहुंचायी प्रभुने, और कैसे हैं ये ?.... जन्म, जरा और मरणसे पीड़ित हैं, ये तीन बहुत बड़े दोष हैं। जन्म और मरण ये तो प्रमुख दोष हैं ही, मगर बुढ़ापा भी मरणकी तरह का ही एक क्लेश है। इसलिए तीन दोषोंका प्रमुखतासे वर्णन किया जाता है। जन्म, जरा, मरण इन तीन दोषोंसे पीड़ित इस समस्त जगत को हे प्रभो ! आपने शान्ति प्रदान किया।

शतह्रदोन्मेषचलं हि सौख्यं तृष्णामयाप्यायनमात्रहेतुः।
तृष्णाभिवृद्धिश्च तपत्यजस्रं तापस्तदायासयतीत्यवादीः ॥१३॥

संसारका यह सारा सुख बिजलीके उन्मेशकी तरह चंचल है। जैसे बिजली का प्रकाश क्षणभरको है ऐसे ही यह सुख भी क्षणभरको है, और इसकी क्षणिकता किसीको समझना हो तो पहलेका जो किया हुआ सुख है, भोगा हुआ सुख है, गुजरा हुआ सुख है, उसकी याद करके समझा जा सकता है। वर्तमान सुखको क्षणिक समझ सके कोई, इसमें ज्ञानबल चाहिए और विशेष अभ्यास भावनाका बल चाहिए। जिसे समझना हो कि संसारका सुख बिजलीकी तरह चंचल है, विनाशीक है तो वह गुजरे हुए सुखको याद करे। कितने क्षण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

के लिए कब कुछ सुख मिला ? तो ऐसे सारे सुख वर्तमानमें जो मिले सो वे बिजलीके उन्मेशकी तरह चंचल हैं और उतना ही बना रहे तो भी बुरा न था, लेकिन यह तो तृष्णा और रोगको उत्पन्न करनेके कारण हैं, सांसारिक सुख, विषयसुख तृष्णाको तो बढ़ाते ही हैं। अगर कुछ विवेक रखना हो और साथमें विरोध रखना हो तो बजाय उससे संघर्ष करे उसको कोई तृष्णाका साधन लगा दे, जैसे कोई भोजन अच्छा मीठा कर दे या किसी भी प्रकारके विषयका चस्का लगा दे तो यह सबसे विकट बैरका निभाना है, क्योंकि ये संसारके जो सुख हैं वे तृष्णा और रोगको प्राप्त करानेके कारण हैं और उससे तृष्णाकी वृद्धि ही होती है, और यह तृष्णाकी वृद्धि निरन्तर इस जीवको संताप पैदा करती है। संसारका प्राणी दुःखी है तो बस तृष्णा के कारण दुःखी है। कोई कुछ भलेमें ऐसा कहे कि मुझे कुछ तृष्णा नहीं, मुझे कुछ ममता नहीं, तो जब इसमें कुछ भला गुजर रहा है और कुछ धार्मिक परिस्थितिका प्रसंग है तो ऐसा कहनेमें आता है। मगर परीक्षा कब होती है ? जब प्रतिकूल घटना होती है तब इस बातकी परीक्षा बनती है कि इसमें ममता है अथवा नहीं। तो तृष्णाकी जो यह वृद्धि है, यह सभी जीवोंको लगी है और यही निरन्तर संताप उत्पन्न करती है, और यह संताप इस संसारी प्राणीको दुःखी कर रही है। ऐसा हे प्रभु ! तुमने ही तो बताया।

http://www.jainkosh.org

याथात्म्यदर्शक स्तवन—समन्त भद्राचार्य द्वारा रचित इन छन्दोंमें, स्तवनोंमें गुणस्मरण है और साथ ही दार्शनिक विधिसे वस्तुस्वरूपका वर्णन है। सो ७वें छन्द तक तो वंदन का शब्द भी नहीं आया, पर भक्ति विशेष थी और वह भक्ति स्तवन गुणोंके स्तवनके रूपसे हुआ है। दर्शन करनेकी दो पद्धतियाँ होती हैं—मन्दिरमें गए- जैसे मूर्ति देखे, पहिले नमस्कार करे, पीछे गुण गाये, एक यह विधि है। दूसरी यह विधि है कि पहले खूब गुण गा ले, और अपना मन भक्तिमें खूब ओतप्रोत कर ले फिर नमस्कार करे, ऐसी दो विधियाँ चलती हैं और यह सबकी अपनी-अपनी एक पसंदकी बात है, पर बहुत कुछ बात पहले गुणस्मरण करे, गुणानुवाद करे तो बादमें एक मनसे और अनुरागपूर्वक शीश झुक जाता है। तथापि पहले भी हो सकता है ऐसा, पर इन दोनोंमें अपेक्षाकृत एक बिना बनावटपना वहाँ अधिक है कि पहले गुणानुवाद करे, पीछे प्रणाम करे, तो यह विधि यहाँ अपनाई गई है। समन्तभद्राचार्यने प्रभुस्तवनमें पहले गुणस्मरण किया है, पीछे वंदन किया है और उसके बाद गुणस्मरण वंदन सब मिश्र चले हैं। प्रभुके गुणानुवादमें कह रहे हैं कि हे प्रभु तुमने ही तो बताया ऐसा कि यह सारा सुख चंचल है, तृष्णा रोगको बढ़ाने वाला है और इस तृष्णाकी वृद्धिसे निरन्तर संताप होता है और यह संताप इस संसारी प्राणीको बरबाद कर रहा है,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ऐसा हे प्रभु तुमने ही बताया ।

बंधश्च मोक्षश्च तयोश्च हेतुर्बद्धश्च मुक्तश्च फलं च मुक्तेः ।
स्याद्वादिनो नाथ तवैव युक्तं नैकान्तदृष्टेस्त्वमतोऽसि शास्ता ।।१४।।

स्याद्वादनायक प्रभुके शासनमें बंध, मोक्ष आदिकी सुव्यवस्था—हे प्रभु ! जो बंध और मोक्षका मार्ग और बद्ध मुक्त की स्थिति और बंध मोक्षका कारण इन सब बातोंका वर्णन स्याद्वादके नायक आपके ही युक्त है, जो एकान्त दृष्टिके लोग हैं उनके इन सबका वर्णन युक्त याने संगत नहीं हो सकता, इस कारण हे प्रभु तुम ही वास्तवमें उपदेष्टा हो । उपदेश करने वाला वही तो सही कहलायगा कि जिसके वचनोंमें विरोध नहीं है । जिसके वचनोंमें किसी प्रकारका दोष नहीं है । वस्तु का स्वरूप सही बताया जा सकता हो वही तो उपदेष्टा हो सकता है, सो यह बात आपके ही संभव है क्योंकि आप स्याद्वादके समर्थक हैं, स्याद्वादी हैं, स्याद्वाद शासनके नेता हैं, इसलिए हे प्रभु आप ही वास्तवमें आकस्मिक हैं । यह वर्णन अन्यत्र क्यों नहीं हो सकता ? कैसे हो ? मान लो किसीने एकान्त किया कि यह आत्मा अपरिणामी है, अविकारी है, तो जब अपरिणामी है, अविकारी है, तो जब परिणमन नहीं तो फिर मोक्षकी जरूरत क्या है ? तब फिर बंध और मोक्ष के उपाय बतानेकी जरूरत क्या है ? और बद्ध और मुक्तकी दशा ही फिर क्या रही ? अच्छा यदि कोई क्षणिकवादी है

याने समय-समयके परिणमनको ही पूरा द्रव्य मान ले, ब्रह्मवादके प्रतिपक्षमें चले तो ऐसा चला क्षणिकवादी कि दो समय की भी क्या पर्याय नहीं उसकी दृष्टिमें है ? तो ऐसे क्षणिकवादके यहाँ तब एक समयके लिए आत्मा है, दूसरे समय वह है ही नहीं, तो बंधन किसका, मोक्ष किसका ? फिर उपदेश किसके लिए दिया जाय ? किस प्रयोजनके लिए कहा जाय ? इसी प्रकार एकान्तके और और भी दर्शन हैं, तो सभी एकान्त दर्शनमें बंध मोक्ष, बंधका कारण, मोक्षका कारण, बंधका स्वरूप, मुक्तका स्वरूप, बंधनका फल, मोक्षका फल, ये कुछ भी नहीं बन सकते, पर स्याद्वादी प्रभुके सिद्धान्तमें सभी युक्त हो जाते हैं, क्योंकि आत्मा नित्यानित्यात्मक है, वही आत्मा है, उसकी अवस्थायें बदलती रहती हैं । यदि वही रहे केवल और अवस्थायें बदलती न हों तो यह भी बात न बनेगी अवस्थायें ही अवस्थायें परिपूर्ण स्वतंत्र पदार्थ हों तो ये बातें नहीं बनतीं । तो कोई अगर ऐसी शंका करे कि फिर तो ये जैनी या स्याद्वादी तो अवसरवादी हुए । जिस समय अनित्य की बात कहनेसे कोई समस्या खड़ी होती तो उसका उत्तर देनेके लिए एक स्याद्वाद ढूंढ़ लिया । नित्यकी बात कहकर कोई समस्या खड़ी हो तो उसके लिए स्याद्वाद ढूंढ़ लिया, ऐसा कोई मनमें सोच सकता है, मगर यह बात सोचना गलत है क्योंकि वस्तु ही इस प्रकार है कि वह बनती है, बिगड़ती है और बनी रहती है । वस्तु बनी ही रहे, बने बिगड़े कुछ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

नहीं तो बनना नहीं रह सकता। वस्तु बिगड़े ही बिगड़े, बनना कुछ न बने तो वस्तु नहीं रह सकती। वस्तुका बनना ही बनना रहे और बिगड़े कभी नहीं तो बनना ही नहीं बन सकता। तो स्याद्वादी प्रभु आपके सिद्धान्तमें तो यह बात युक्त है, पर अन्य एकान्तदृष्टि वाले सिद्धांतमें यह बात सम्भव नहीं हो सकती, इस कारण आप ही वास्तविक उपदेष्टा हैं।

शक्रोऽप्यशक्तस्तव पुण्यकीर्त्तेः स्तुत्यां प्रवृत्तः किमुमादृशोऽज्ञः।
तथापि भक्त्या स्तुतपादपद्मो ममार्य देवाः शिवतातिमुच्चैः।।१५।

शक्र द्वारा भी अशक्य प्रभुस्तवनके भक्तिपूर्वक उद्यमकी सत्फलता—हे पवित्र कीर्ति वाले प्रभु आपकी स्तुति करनेमें इन्द्र भी असमर्थ है। इन्द्रका नाम वृहस्पति है। वाचस्पति भी है। इन्द्र बहुत विद्वान् जीव होता है। उसको बहुत ज्ञान होता है और इसीलिए वह स्वर्गोंमें शास्त्रसभाका अधिकारी माना गया है। जैसे यहां मनुष्य लोग शास्त्र पढ़ते हैं, सुनते हैं इसी प्रकार स्वर्गोंमें भी शास्त्र क्या होता है, मौखिक है, क्या बात है, यह बात तो अलग है, मगर वक्ता होता है, श्रोता होते हैं, धर्मकी बातका व्याख्यान होता है और वह बड़ा विशिष्ट ज्ञानी होता है, ऐसा इन्द्र भी हे प्रभु आपकी स्तुति करनेमें समर्थ नहीं होता है, तब फिर आपकी स्तुति करनेमें हम जैसे अज्ञानी पुरुष जो प्रवृत्त हुए वह कैसे वर्णन कर सकते हैं। तो भी आपके प्रति भक्ति होनेसे हम आपके

चरणकमलका स्तवन करते हैं। ऐसे हे पूज्य पुरुष, हे आर्य मेरेको पवित्र, उत्कृष्ट, शिवसंततिको, मोक्षमार्गको प्रदान करो। पूरा गुणानुवाद करनेमें समर्थ न होकर भी मुझको आवश्यकता है आपके गुणानुवादकी। हम नहीं कर सकते हैं गुणानुवाद, लेकिन आवश्यकता मुझे है कि गुणानुवाद करूँ, जितना भी कर सकूं। और वह आवश्यकता इसलिए है कि जिस मार्गसे चलकर आपने मोक्ष प्राप्त किया वह मार्ग मुझे भी प्राप्त हो, सो हे प्रभु, हम समर्थ तो नहीं हैं आपका स्तवन करनेमें तो भी भक्तिसे आपका स्तवन कर रहे हैं, और केवल यही प्रयोजन रख रहा हूं कि मेरेको उत्कृष्ट मोक्षका मार्ग प्राप्त हो।

गुणाभिनन्दादभिनन्दनो भवान् दयावधूं क्षान्तिसखीमशिश्रियत्।
समाधितन्त्रस्तदुपोपपत्तये द्वयेन नैर्ग्रन्थ्यगुणेन चायुजत् ।।१६।।

श्री अभिनन्दननाथकी समाधितन्त्रतासे परम निर्ग्रन्थता का अभ्युदय—अभिनन्दन भगवानकी स्तुतिमें आचार्य कहते हैं कि हे प्रभु अभिनंदन देव गुणोंके अभिनन्दनसे अर्थात् गुणों के विकाससे आपका नाम अभिनन्दन हुआ है, सो हे प्रभु आपने दयारूप वधूको आश्रय दिया, जिसकी सहेली क्षमा है। इन शब्दोंसे यह रहस्य आता है कि जिसमें क्षमा है वह ही वास्तवमें दया पालन कर सकता है। क्षमारहित पुरुष दयाका पालन नहीं कर सकता। इसी कारण यह विशेषण दिया है कि जिसकी सहेली क्षमा है, ऐसी दयारूपी वधूको आश्रय

दिया । और एक विशेषण जो दिया है कि गुणोंके अभिनन्दन से आपका अभिनन्दन है इसका भी सम्बंध इस वाक्यसे है कि जो गुणोंके विकासमें आया है, दूसरेके गुणोंको महत्त्व देता है वह ही पुरुष दयाको सहारा दे सकता है । ऐसे हे नाथ आपने दयाको सहारा दिया अर्थात् आपके साथ दया रहकर शोभित हुई और इसके समर्थनमें इसके ही साथ आप समाधितंत्र हुए अर्थात् समाधिभाव जिसके आधीन हुआ या जो समाधिभावके केन्द्रित हो, नियंत्रित हो, ऐसे प्रभु आपने उस समाधिकी उपपत्तिके लिए दयाकी उपपत्तिके लिए दोनों प्रकारके नैर्ग्रन्थ गुणोंसे अपना सम्बंध बनाया । वे दो प्रकारके नैर्ग्रन्थ गुण क्या हैं ? बाह्य द्रव्यलिंग और भावलिंग । वास्तवमें सबसे विविक्त रहना यह है उत्कृष्ट दिगम्बरता और बाह्यमें केवल शरीर मात्र रहे, अन्य किसीका लेप न हो वह है बाह्य निर्ग्रन्थता । तो दोनों प्रकारके निर्ग्रन्थ गुणोंको आपने अपनाया । बाहरी निर्ग्रन्थताके बिना भीतरी निर्ग्रन्थता नहीं बनती । जैसे ऊपरका छिलका उतरे बिना चावलकी ललायी नहीं उतारी जाती । चावलपर दो प्रकारके मल लगे हुए हैं । एक तो छिलका और दूसरा चावलपर ही लगा हुआ कुछ मल, जो टूटने पर आटेकी तरह बिखर जाता है । तो चावलपर लगा हुआ भीतरी मैल था और तरहका, यह तब तक नहीं हटाया जाता जब तक कि ऊपरका छिलका न उतरे, इसी प्रकार अपने

आत्माके अंतरंग मैलको, परिग्रहको तब तक नहीं निकाला जा सकता जब तक बाह्य द्रव्यलिंग न हो । बाह्य परिग्रहका त्याग कर देते हैं और भीतरी परिग्रह नहीं छूटता । भले ही यह बात रहे मगर यह नियम है कि भीतरी परिग्रह जिनका छूटा उनको बाह्यपरिग्रह छोड़ने पूर्वक ही छूटा । ऐसा किसी के नहीं हो सकता कि बाह्य परिग्रह तो रखे और अंतरंग परिग्रह न रहे । कुछ ममता थोड़ी जाय तो उसे कहने लगते लोग कि भाई बाहरी परिग्रह तो लगा है, पर भीतरमें कुछ ममता नहीं है, पर यह बात सत्य नहीं है । जो बाह्य परिग्रहको रखता हो, बाह्य परिग्रहमें लिपटा हो उसके अंतरंग परिग्रह निश्चित है । तो आपने स्वदया और परदयाके लिए दोनों प्रकारकी निर्ग्रन्थताको धारण किया ।

अचेतने तत्कृतबन्धजेऽपि ममेदमित्याभिनिवेशकग्रहात् ।
प्रभङ्गुरे स्थावरनिश्चयेन च क्षतं जगत्तत्त्वमजिग्रहद्भवान् ॥१७॥

पर व परभावोंमें ममतासे तथा प्रभंगुरमें स्थायिताके निश्चयसे जगत्की बरबादीका आख्यान—जिनका यह बाहरी विषय अचेतन है और उन अचेतनोंसे बंध बना और उसके बंधसे अचेतन परिग्रह लगा, इन विशेषणोंसे दार्शनिकताका एक भान हो रहा । दार्शनिकमें ऐसे शब्दोंका प्रयोग होता है जो कार्य कारण भावको बताता चला जाय । अचेतन परिग्रह का आश्रय करनेसे बंध हुआ और उस ही बंधका फल फिर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

यह हुआ कि जो परिग्रहका आश्रय किया करे तो ऐसे अचेतन परिग्रहमें यह मेरा है ऐसे अभिप्रायका आग्रह लगा लेनेसे, पिशाच लग जानेसे, ऐसे निमित्तको पकड़ जानेसे यह संसार बरबाद हो रहा है, बरबाद हो गया, क्योंकि अचेतन परिग्रह में यह मेरा है ऐसा खोटा विकल्प जब लग गया तो क्षणभंगुर विषयोंमें उनके ये सदा रहेंगे ऐसा निश्चय भी बन गया अथवा दोनों ही कारण हैं जिसके कि यह जगत बरबाद हो गया। एक तो ममता, दूसरा क्षणभंगुर वस्तुमें यह सदा रहेगा ऐसा निश्चय। तो इस तरह इन दोनों कारणोंसे यह जगत क्षत हो गया। इन तत्त्वोंको हे भगवान आपने दिखाया, आपने बताया, आपने ग्रहण कराया। कोई भी पुरुष यदि समागममें यह निर्णय रखता है कि यह तो मिट जाने वाला है तो उसको यह मेरा है इस प्रकारका भाव न रहेगा और न वह दुःखका काम न बनेगा। जिसमें ममता है, लोग भूल जाते हैं कि यह मिट जाने वाली चीज है। भले ही शब्दोंसे कहें तो बोलते हैं लोग कि जो मिला है वह सब मिट जाने वाला है, लेकिन जब तक ममता है तब तक यह तत्त्व ओझल रहता है। विश्वास यह ही बनाया कि औरोंके मिटते हैं, मेरे नहीं मिटते। जैसे दूसरेका कोई इष्ट गुजर जाय तो उसे खूब समझाते हैं कि जो होना था सो हो गया, कष्ट मत करो और खुद पर गुजरे तब यह ही शब्द कहते कि यह तो अनहोनी हो गई।

http://www.jainkosh.org

होना नहीं था और हो गया, इतना कठिन एक संकल्प रखते हैं। तो इन दो कारणोंसे—एक ममता, दूसरे क्षणभंगुर पदार्थोंमें ये स्थिर हैं ऐसा निश्चय बना, इस कारण यह सारा जगत बरबाद हो गया, ऐसा हे प्रभु आपने ही तो दिखाया।

क्षुदादिदुःखप्रतिकारतः स्थितिन
चेन्द्रियार्थप्रभवाल्पसौख्यतः।
ततो गुणो नास्ति च देहदेहिनोरि-
तीदमित्थं भगवानत्यजिज्ञपत् ॥१८॥

देहसम्पर्कसे जीवके अहितका आख्यान—क्षुधा तृषा आदिकमें दुःख होता है, उसके लिए प्रतिकार लोक करते हैं, इससे कहीं देह स्थिर नहीं रहता। अगर क्षुधा आदिक दुःखों के प्रतिकारसे देह सदा बना रहे तो फिर अब तक तो इस जगतमें रहनेको जगह भी न मिलती। इतने मनुष्य भर जाते कि खड़े भी न हो सकते। कितना ही कोई दुःखोंका प्रतिकार करे, देहका स्वभाव है नष्ट होना, शरीरका स्वभाव है नष्ट होना, तो क्षुधा आदिक दुःखोंका उपाय बनानेसे कहीं देह टिक नहीं पाता। और इन्द्रियके विषयोंसे उत्पन्न हुआ थोड़ा सा सुख भोगने से कोई गुण नहीं बढ़ते, आत्मामें शान्तिकी वृद्धि नहीं होती और ये दोनों ही बातें देहसे सम्बंध रखती हैं। क्षुधा आदिक दुःख, उनके प्रतिकार और इन्द्रिय विषयोंका उपभोग इन दोनों ही कारणोंसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

न कोई गुण बढ़ते, न कोई देहमें वृद्धि होती और न देह स्थिर रहता, इस कारण देह और इस प्राणीका कोई भी सम्बन्ध नही है, कुछ भी नाता रिस्ता नहीं है, ऐसा प्रभु आपने ही तो विज्ञप्त कराया, विशेष रूपसे जानकारी इस तत्त्वकी करायी। अब इन वाक्योंको सुनकर ऐसा हो सकता कि छोटी-छोटी बातोंमें भी भगवानको लपेटा जा रहा। आपने बताया मार्ग, आपने विज्ञप्त कराया, सो बात ठीक है, कितना ही छोटा हो, जितना भी जाना वह भगवानके शासनसे ही जाना, जानकारी के बाद लगता है छोटा, मगर शुरूआत तो जैनशासनसे या धर्मोपदेशसे ही होना है। तो ये सब बातें जो अशान्तिको दूर करें, शान्तिको उत्पन्न करें वे सब तत्त्व हे प्रभु आपने ही बताया।

जनोऽतिलोलोऽप्यनुबंधदोषतो भयादकार्येष्विह न प्रवर्त्तते।
इहाप्यमुत्राप्यनुबन्धदोषवित्कथं सुखे संसजतीति चाब्रवीत् ॥१६॥

सांसारिक सुखोंकी दोषकारिताका आख्यान—अभिनंदन भगवानकी स्तुतिमें कह रहे हैं कि इस लोकमें यह मनुष्य भी विडम्बनाके दोषसे अकार्यमें प्रवृत्ति नहीं करता। हालांकि यह लौकिक मनुष्य अत्यन्त चंचल हैं। इसका मन बहुत चंचल है। क्षणमें कुछ विचार अच्छा लाता है, क्षणमें अत्यन्त पतित विचार बना लेता है। अत्यंत चंचल होता हुआ संसारी प्राणी इस भयसे कि लोकमें अपयश न हो, अपकीर्ति न हो, विड-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

म्बना न हो, आपत्ति न आये, इस दोषसे भयके कारणसे ही समझिये तो वह पापमें प्रवृत्ति नहीं करता, जो करने योग्य कार्य नहीं हैं उन अकार्योंमें प्रवृत्ति नहीं करता। तो फिर भला जिसने इस लोकमें और परलोकमें दोनों जगहकी विडम्बनाकी बात समझ ली हो अनबंध दोषको जानता हुआ कि पञ्चेन्द्रियके सुखोंमें रति करनेसे इस लोकमें भी आपत्ति, परलोकमें भी आपत्ति, तो ऐसे बन्धनके दोषको समझने वाला मनुष्य कैसे इन इन्द्रिय विषयोंमें आशक्त होगा? ऐसा हे प्रभु आपने ही तो बताया। भगवानकी स्तुतिमें भगवानके उपदेश को कहकर भगवानने ही बताया ऐसा सम्बंध जोड़कर गुणानुवाद किया जा रहा है।

सचानुबन्धोऽस्य जनस्य ताप-
वृत्तषोऽभिवृद्धिः सुखतो न च स्थितिः।
इति प्रभो लोकहित यतो मतं ततो
भवानेव गतिः सतां मतः ॥२०॥

देहानुबंधसे दुःखकी निष्पत्ति, किन्तु प्रभुशरणसे उद्धार—और ये सब अनबंध, अनबंधके मायने बंधन, परतंत्रता, विडम्बना, आपत्ति ये सभी अनबंध कहलाते हैं। तो ये सब अनबंध इन प्राणियोंके लिए संतापको करने वाला है और इसी अनबंधसे याने पञ्चेन्द्रियके विषयोंमें संसर्ग होनेसे तृष्णाकी वृद्धि होती है, और जहाँ तृष्णाकी वृद्धि हुई कि सुखसे स्थिर

नहीं रह सकता। जीव स्वयं अपने आप आनंदमय है, अकेला है, अपने प्रदेशमें है, अपनेमें परिणमता है, किसी अन्यसे कुछ सम्बंध नहीं। इसको आपत्ति कहाँ है, लेकिन बाह्य वस्तुके प्रति जब तृष्णाका भाव जग जाता तब अज्ञानका अंधेरा छा जाता और बाह्य वस्तुके प्रति ऐसी प्रतीक्षा तृष्णा। ये सब जब पार कर जाते हैं तब इस जीवकी स्थिति सुखसे नहीं रह सकती। ऐसे संसारके लिए हितमय उपदेश हे प्रभु आपने ही तो बताया, इसलिए सज्जन पुरुषोंके लिए आप ही चारा है। जो पुरुष संसारके दुःखोंसे मुक्ति चाहते हैं उनके लिए आपका ही मात्र सहारा है, क्योंकि आप ज्ञानी हैं, वीतराग हैं। कोई मनुष्य मानो कदाचित् वीतराग हो और ज्ञान न हो, यद्यपि ऐसा होता नहीं, मगर लोकमें जितने विरक्त माने जाते हैं, किसीको ऐसा तो विरागी हो, पर ज्ञान न हो तो उसका उपदेश भी संयुक्त नहीं हो पाता और किसी मनुष्यके ज्ञान बहुत हो और विरक्त न हो, विषयोंमें रति हो तो उसका भी उपदेश सत्य नहीं हो सकता, पर हे प्रभो आप सर्वज्ञ हैं, वीतराग हैं। आपका जो भी उपदेश है वह संसारी प्राणियोंके लिए हितकारी है। सो आपके उपदेशमें सर्व साधारण जनोंको यही संदेश दिया गया है कि बाह्य पदार्थोंके साथका जो सम्बंध है, लगाव है वह तृष्णाको उत्पन्न करता है। संताप करता है और फिर उसकी सुखमय स्थिति नहीं रह सकती। जैसे

http://www.jainkosh.org

किसी भी प्रसंगमें नेता लोग थे, पहिली स्थितिमें उनका परोपकारका भाव, कष्टोंको सहनेका साहस, बड़ी-बड़ी आपत्तियाँ भोगों और घरसे भी उनको राग नहीं, घर भी छोड़ा, जेलमें बसे, तो पहले कितना सुन्दर भाव था और जैसे ही उनको शासन मिला, कुछ कहीं एक आरामसा मिला तो ऐसे आराम वाले पदको पा ले, प्रतिष्ठा वाली जगहमें पहुंचकर विचलित हो जाते हैं, मन फिर धन, यशकी तृष्णामें बढ़ जाता है। फिर सुखपूर्वक उनकी स्थिति नहीं रहती। लोकमें जो सबसे अच्छा माना गया हो वह पद हो, उस पदमें भी पहुंच जाय तो वह सुखसे नहीं रह सकता, क्योंकि उसे भय सताता कि भविष्यमें यह पद रहेगा कि न रहेगा। अगर यह स्थिति हमारी न रही तो हमारा क्या हाल होगा? हम तो बरबाद ही होंगे। तो लोकमें कोई कुछ बढ़ भी जाय तो भी सुखसे स्थित नहीं होता। सुखका बीज तो केवल सम्यग्ज्ञान है, आत्मज्ञान है। मतलब नहीं किसी परसे, ऐसा चित्तमें दृढ़ संकल्प हो तो आनन्दकी स्थिति रह सकती है। तो प्रभु यह आपने ही बताया, इसलिए हे अभिनन्दन जिनेन्द्र! आप ही सज्जनोंके लिए गति हो, चारा हो, सहारा हो।

अब सुमतिनाथ भगवानकी स्तुति करते हैं—

अन्वर्थसंज्ञः सुमतिर्मुनिस्त्वं स्वयं मतं येन सुयुक्तिनीतम्।
यतश्च शेषेषु मतेषु नास्ति सर्वक्रियाकारकतत्त्वसिद्धिः ।२१।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

श्री सुमतिनाथके शासनमें सिद्धिलाभ—हे प्रभो ! आपका जो सुमति नाम है वह सब अन्वर्थ है, क्योंकि आपने ही जो सुयुक्तिसे समझा गया, लगाया गया या युक्तिकी कसौटीपर खरा उतरने वाला मत स्वयं आपने बताया, इसलिए आप सुमति हैं । सुमति नाम है, यह नाम अन्वर्थ संज्ञा वाला है । तब ही तो देखो आपके मतमें किसी भी प्रकारका पूर्वापर विरोध नहीं होता, जब कि अनेकान्तसे बहिर्भूत शेष मतोंमें क्रिया कारक तत्त्व किसीके भी सिद्ध नहीं होता । वस्तुके स्वरूपका यथार्थ प्रतिपादन किया है आपने । वस्तु अनेकान्तात्मक है, उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक है, पहले इसी बातपर ही विचार कर लो कि कोई पुरुष उत्पाद उत्पाद ही मानता हो, ध्रौव्य न मानता हो तो कुछ भी सिद्धि वहाँ नहीं हो सकती । कोई केवल ध्रौव्य ही ध्रौव्य मानता हो, उत्पाद न मानता हो तो वहाँ भी कुछ सिद्धि नहीं हो सकती । कौन करे, क्या करे, किसके द्वारा करे, किसके लिए करे, कहाँ करे, किसीका भी उत्तर नहीं बन सकता । कोई पदार्थ है तो वह है कब कहलाये जब उसका कोई काम हो । अर्थ क्रिया हो तो वह है । जो है वह तभी है कहलाता है जब कि उसमें अर्थक्रिया होती है । काम होता हो, परिणमन होता हो, अब केवल उत्पाद ही उत्पाद माने, व्यय साथमें लगा ही है, उत्पाद हो, नष्ट हो, फिर नया उत्पाद हो, नष्ट हो गया, बना कुछ नहीं रहता,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

मूल तत्त्व कुछ नहीं है, वे स्वतंत्र-स्वतंत्र पदार्थ है, जितने क्षण में जब जब जो हो, ऐसा माना जाय तो कौन करे, क्या करे ? जब कोई पदार्थ दूसरे क्षण ठहरता ही नहीं तो करने वाला क्या कहलाया ? किसमें बंध किया, कौन मोक्ष करेगा ? और जबरदस्ती लगा है कोई तो अन्याय कहलायगा । पाप करे कोई, उसका फल भोगे कोई, क्योंकि दूसरे क्षणमें वह रहा ही नहीं । पुण्य दूसरा करे, फल दूसरा भोगे, तपश्चरण कोई करे, मोक्ष कोई दूसरा पाये, यह तो कोई युक्ति पर उतरने वाली बात नहीं है । और कोई यह माने कि बस ध्रुव है वस्तु, उसमें परिणमन भी नहीं होता, हलन-चलन हेर-फेर परिणमन, बदल कुछ भी नहीं होता तो फिर संसार किसका ? मोक्ष किसलिए, मार्गमें कौन चले ? परिणमन होता ही नहीं है । तो जो अनेकान्तसे बहिर्गत मत हैं उन मतोंमें क्रिया कारक तत्त्व किसीके भी सिद्ध नहीं होता और आपने जो स्याद्वाद सम्मत सिद्धान्त बताया वह परस्पर अविरोध है और प्रमाणसे प्रमाणित है इसलिए आपका नाम सुमति है, यह बिल्कुल अन्वर्थ संज्ञा है ।

अनेकमेकं च तदेव तत्त्वं भेदान्वयज्ञानमिदं हि सत्यम् ।
मृषोपचारोऽन्यतरस्य लोपे तच्छेषलोपोऽपि ततोनुपाख्यम् ।२२।

प्रभुशासनमें सिद्धिप्रद वस्तुस्वरूपाख्यान—आपके सिद्धांत में ही कहा गया है कि वस्तु अनेक भी है, एक भी है । जैसे

किसी भी एक आत्माके बारेमें, अपने बारेमें सोचें—आप एक हैं या अनेक। तो जब एक मूल वस्तु पर दृष्टि दें तब कहा जायगा कि एक है, मगर अनेकपना भी खूब देखा जा रहा है। आप सुबह कुछ थे, दोपहर कुछ हुए, शाम कुछ हुए, कभी कुछ थे, कभी कुछ हो रहे, तो यह अनेकपना भी दिख रहा है। अब कोई यह एकका ही एकान्त कर ले तो अवस्था नहीं बनती है। कोई अनेकका ही एकान्त कर ले तो किसकी अवस्था है? जब एक हो नहीं माना तो किसका परिणमन कहा जायगा? यों भी सिद्धि नहीं होती। तत्त्व तो अनेक रूप है और एकरूप है। कुछ लोग ऐसी आशंका कर सकते हैं कि स्याद्वाद तो संशयवाद सा है। कभी कह दिया अनेक है, कभी कह दिया एक है, और अनेक है तो एक कैसे, एक है तो अनेक कैसे? यह तो परस्पर विरुद्ध बात है, ऐसी आशंका रखने वालोंने यह नहीं सोचा कि एक ही दृष्टिसे एक कहा जाय, एक ही उसी दृष्टिसे अनेक कहा जाय, तब तो विरोधकी बात है। तब तो विरोध व्याघात आदिक सभी दोष आते हैं, लेकिन भिन्न-भिन्न दृष्टियोंसे भिन्न-भिन्न धर्मोंकी सिद्धि है। लोकमें भी तो देखा जाता है कि कोई पूछे कि इस सामने पड़ी बेन्चका वर्णन करो तो कोई कहेगा कि यह एक फुटकी है, तो क्या यह कोई विरोधकी बात है? विरोधकी बात तब होती कि एक ही दृष्टिके दोनों उत्तर होते हैं। एक कह रहा

http://www.jainkosh.org

लम्बाईसे कि चार फुट है, एक कह रहा चौड़ाईसे कि एक फुट है, और इनमें से केवल एक ही माना जाय। बस हम तो यह ही जानते हैं कि यह तो चार फुटकी है, तुम्हारी बात गलत है। तो बेंचका स्वरूप तो ठीक न बना। दोनोंको ही सच मानना पड़ेगा। ऐसे ही जब द्रव्यदृष्टिसे देखते हैं तो वस्तु एक है, पर्यायदृष्टिसे देखते हैं तो वस्तु अनेक है। कोई कहे कि पर्यायको मत देखो, क्यों न देखो? जब वस्तुका एक व्रत है कि वह प्रतिसमय परिणमता रहे, परिणमन बिना, अवस्था बिना, पर्याय बिना कोई सत्त्व रख सका क्या? अगर परिणमन नहीं है तो वस्तु नहीं है। सत् ही नहीं कुछ। तो जब परिणमन है तो परिणमनदृष्टिसे निर्णय तो करना ही पड़ेगा। कोई कहे कि अनेक ही अनेक मानो, एक मत मानो तो कैसे बनेगा? जब वस्तु अनादि अनन्त है, जो सत् है उसका समूल नाश नहीं, नवीन सत्की उत्पत्ति नहीं। जब अनादि अनन्त वस्तु है तो वह कैसे न कहा जायगा? और अगर अनादि अनन्त तो परिणमन भी नहीं, अगर परिणमन नहीं तो अनादि अनन्त वस्तु भी नहीं होती। तो यों आपके सिद्धान्त में यह ही एक तत्त्वकी बात, रहस्यकी बात है कि दोनों दृष्टियों से वस्तुस्वरूपका वर्णन किया गया है, ऐसा जो भी वर्णन करे करे बस वही स्याद्वाद जैन सिद्धान्त है। कोई आपने सिद्धान्त कुछ सोचकर अलगसे बनाया हो सो नहीं, किन्तु जो वस्तुका

Version 1

स्वरूप है, जो जैसा सत् है बस वैसा ही बताया है। यह ही तत्त्व है और यह ही सत्त्व है। सच्चाईकी भी बात यही है कि वस्तुमें भेद और अन्वय दोनोंका ज्ञान होता है। जिसको सिर्फ अन्वयका ही ज्ञान है मायने द्रव्यका ही ज्ञान है, अनादि अनन्त एक तत्त्वका ही ज्ञान कर रहा हो तो वह कहलाया अन्वय ज्ञानका पक्ष, और कोई केवल पर्यायका ही ज्ञान एकांत करता हो तो वह कहलाता है पर्यायका पक्ष, पर सत्य ज्ञान तो वही है जिस ज्ञानमें भेद और अन्वय दोनोंका परिचय होता है। कोई कहे कि एक बात तो मान लो सच। एक बात मान लो उपचारसे। तो उपचार तो मिथ्या होता है। उपचार तो वस्तु नहीं होता। यहाँ तो ये दोनों ही बातें इस प्रकारसे सम्मत हैं कि उनमें से एकका लोप हो जाय तो वस्तु का विनाश हो जाता है। पर्याय नहीं तो द्रव्य नहीं, द्रव्य नहीं तो पर्याय नहीं। फिर वस्तु स्वभावरहित बन जायगी। इस प्रकार स्याद्वाद सम्मत तत्त्व हे प्रभो, आपने ही बताया।

सतः कथञ्चित्तदसत्त्वशक्तिः खे नास्ति पुष्पं तरुषु प्रसिद्धम्।
सर्वस्वभावच्युतमप्रमाणं स्ववाग्विरुद्धं तव दृष्टितोऽन्यत् ॥२३॥

स्याद्वादबहिर्मुखोंके कथनकी स्ववाग्विरुद्धता — हे प्रभो, आपके सिद्धान्तमें स्पष्ट कहा गया है कि जो वस्तु सत् है उस सत् पदार्थके कथञ्चित् उसके असत्त्वकी भी शक्ति है, सत्त्वमें असत्त्वमें भी शक्ति है। सत्के मायने जो है और असत्के

मायने जो नहीं है। तो जो नहीं है उसकी भी शक्ति सबके है, इसका अर्थ क्या? तो पहली बात तो यह है कि जैसे लोग कहते हैं कि आकाशका फूल असत् है तो आकाशका फूल आकाशमें नहीं है, पर फूल सर्वथा असत् तो नहीं। वह वृक्षों में प्रसिद्ध है। तो असत्में भी सत् है, सत्में भी असत् है। सत् कौन? आकाश। उसमें फूल असत् है, इस वाक्यमें असत् क्या बताया? फूल। वह वृक्षोंमें प्रसिद्ध है। दूसरी बात सत् पदार्थोंमें असत्त्वकी शक्ति है। इसके मायने यह है कि जो पर्याय अभी नहीं है, असत् है उस पर्यायमें भी इसमें शक्ति है। अगर पदार्थ सर्व स्वभावोंसे च्युत कहा जाय तो भी अप्रमाण है और स्ववचन विरोध है और कहना चाहिए कि वह आपके सिद्धान्तसे बहिर्भूत है। वस्तुमें सर्व स्वभाव है, यह एक निर्णयके प्रसंगकी बात है। जब कोई पुरुष अनुभवमें आता है तो उस समय तो उसको नानापन न नजर आयगा, एक ही अनुभव रहेगा। तो इस तरह हे सुमतिनाथ प्रभो, आपके सिद्धान्तमें प्रमाण और नयसे खरा उतरा हुआ तत्त्व प्रसिद्ध हुआ है इसलिए आपका सुमतिदेव नाम अन्वर्थ संज्ञक है। अनु मायने अनुसार, अर्थ मायने अर्थ। अर्थके अनुसार नाम है। जैसा शब्दोंमें लिखा हो, वाच्य हो वैसी ही बात पायी जाय उसे अन्वर्थ कहते हैं। यद्यपि नाम निक्षेपमें अन्वर्थताकी कोई कैद नहीं है। नाम तो व्यवहारके लिए रखा जाता, पर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

नाम न रखा जाय वस्तुका तो व्यवहार चल ही नहीं सकता। मनुष्यका नाम न हो तो कौन किससे क्या व्यवहार करे? किसे बुलाये, किससे बात कहे, क्या सम्बंध बनाये? इन अचेतन पदार्थोंका नाम न रखा जाय तो कोई कैसे व्यवहार करे? किसीको अगर पानी पीना है तो बस कैसे कहे कि पानी लावो। नाम ही नहीं किसी वस्तुका तो नाम बिना कुछ नहीं चलता। जितना भी व्यवहार चलता है उस व्यवहारकी शुरू बात नामसे है। नाम बिना व्यवहार नहीं, और नाम रखा जाता है तो केवल एक पुकारनेके लिए। किसके बारेमें बात की जा रही है? एक इस बातको कहनेके लिए, जैसे किसीका नाम रख दिया शान्तिप्रसाद और उसे बना रहता हो क्रोध तो क्या उसका शान्तिप्रसाद नाम नहीं रखा जा सकता? रखा जा सकता है। नाममें कोई कैद नहीं है कि ऐसा गुण हो तो वह नाम है, लेकिन महापुरुषोंकी एक विशेषता है कि नाम अच्छा तो रखा ही जाता है और उसके अनुरूप वहां गुण भी पाये जाते हैं तो हे प्रभु ऐसे ही आपका नाम अर्थके अनुरूप है, क्योंकि जहां शुद्ध मति हो और लोगोंको शुद्ध मति प्राप्त हो ऐसे तत्त्व आपके यहां माना है और उस ही तत्त्वके अनुसार चलकर जीव मोक्षमार्ग पाते हैं और मोक्ष पाकर शाश्वत आनन्द पाते हैं।

न सर्वथा नित्यमुदेत्यपैति न च क्रियाकारकमत्र युक्तम्।
नैवासतो जन्म सतो न नाशो दीपस्तमः पुद्गलभावतोऽस्ति।२४।

http://www.jainkosh.org

एकान्तवादमें क्रियाकारककी अयुक्तताका आख्यान— इससे पहले छन्दमें बताया था कि जो सर्व स्वभावसे रहित है वह तो अप्रमाण है और अपने ही वचनसे विरुद्ध है। कुछ भी तो कोई कहेगा वही एक स्वभाव है, सर्व स्वभावसे सहितका कोई वर्णन नहीं कर सकता। एक सिद्धान्त है तत्त्वोपप्लव याने तत्त्व नहीं है, कुछ नहीं है, बस वही तत्त्व है। एक तो सिद्धान्त है तो उसने भी कुछ तो करार किया। तो अपने वचनसे विरोध पड़ता है, यदि कोई ऐसा सिद्धान्त गढ़े कि सर्व स्वभावसे रहित जगत है और ऐसा कोई कहे वह हे प्रभो आपके मतसे भिन्न है तो आपके मतसे भिन्न दृष्टि रखने वाले पुरुषोंको अपने वचनोंसे विरोध कैसे पड़ता है? और कैसे अप्रमाण है, उसका वर्णन इस छंदमें किया है। जो सर्वथा नित्य है वह न उत्पन्न हो सकता, न नष्ट। नित्य तो पदार्थ है किंतु सर्वथा नित्य नहीं याने अवस्था भी नहीं, पर्याय भी न हो ऐसा सर्वथा नित्य नहीं है। नित्यका अर्थ है कि पर्यायका कभी विनाश नहीं होना। पर्यायें होती ही रहें, पर्यायोंका अभाव न बने, इसको नित्य कहते हैं, और इसीको सूत्र जी में भी कहा है—तद्भावाव्ययं नित्यं। पदार्थके होते रहनेका व्यय न होना मायने होते रहना, जारी बना रहे, इसीको नित्य कहते हैं। कोई सर्वथा नित्य माने तो तो सर्वथा नित्य कुछ नहीं है। और जब उत्पाद व्यय न वहां उत्पाद व्यय तो बना है नहीं

Version 1

बने तो क्रिया कारक भी नहीं बन सकता। कौनसी क्रिया हुई, किसने की, निश्चयसे भी नहीं बन सकता। एक वस्तु अपनेमें क्रिया करे तो यह बात तब ही तो सम्भव है कि जब सर्वथा अनित्य न माने और जो सर्वथा नित्य माने याने अप॰रिणामी माने उसमें कोई अवस्था ही नहीं होती, ऐसा स्वीकार करे तो वहां क्रिया और कारक नहीं बनता और जहां क्रिया नहीं बनती वह वस्तु नहीं। वस्तु उसे कहते जिसमें अर्थक्रिया हो। जब अर्थक्रिया नहीं, कोई परिणमन नहीं तो वह वस्तु कैसे हो सकता? इसलिए सर्वथा नित्य जो माने उनका वचन विरुद्ध वचन है। बात वास्तविक यह है कि असत्की तो उत्पत्ति नहीं होती, और सत्का नाश नहीं होता। और जैसे यहाँ देखा जाता कि दीपक जला, अंधकार न रहा, दीपक बुझा तो अंधकार आ गया, तो यहां ऐसा कोई न समझे कि न था सो आ गया। अंधकार तो था ही नहीं, वह तो असत् था, अब आ गया। दीपक बुझनेपर तो अंधकार और प्रकाश ये वस्तु नहीं हैं, ये तो वस्तुकी पर्यायें हैं। पुद्गल भावरूपसे सदा रहते हैं, यही पुद्गल अभी प्रकाशरूप था, अब फिर अंध॰कार रूपमें आ गया, पर पुद्गल है वह उस रूपसे तो वह रहता ही है। तो इस तरह सर्वथा नित्यमें अथवा सर्वथा अनित्यमें क्रिया कारक नहीं बनता और जहां क्रिया कारक न बने वह वस्तुस्वरूप नहीं है, और जहां वस्तुस्वरूप ठीक

नहीं समझा वहां मोहका त्याग कर एक निर्मोह अवस्थामें आनेका उपाय नहीं बनता, क्योंकि जब वस्तुस्वरूप जानते है—मैं आत्मतत्त्व हूं, स्वतंत्र हूं, उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक हूं और ऐसे ही समस्त पदार्थ हैं और उत्पादव्यय ध्रौव्यात्मक है तो, पदार्थकी स्वतंत्रता और एक पदार्थमें दूसरे पदार्थका प्रवेश नहीं, यह परिचय जब होता है तब मोहकी धारा टूटती है। तो यह सब कल्याणका उपाय स्याद्वाद द्वारा पदार्थका निर्णय करनेमें होता है और वह स्याद्वाद प्रभु आप ने बताया।

विधिर्निषेधश्च कथंचिदिष्टौ विवक्षया मुख्यगुणव्यवस्था।
इति प्रणीतिः सुमतेस्तवेयं मतिप्रवेकः स्तुवतोऽस्तु नाथ्यः ।२५।

सुमत शासनके शास्ता श्री सुमतिनाथके स्तवनसे मति-प्रवेगका अभ्युदय—हे सुमतिनाथ भगवान आपका यह सिद्धान्त है कि विवक्षासे और मुख्य गुणकी व्यवस्था बनती है और उसी विवक्षासे विधि और निषेध कथंचित इष्ट होते हैं ये जीव हैं अजीव नहीं। तो स्वका लक्ष्य करके तो जीवका विधि बनी और परकी अपेक्षा रखकर उस जीवमें निषेध बना। पदार्थ नित्य है और नित्य नहीं है। तो नित्यपनेकी विधि बनी द्रव्यदृष्टिसे और नित्यका निषेध बना पर्याय दृष्टिसे तो विधि और निषेध कथञ्चित इष्ट होते हैं और कथञ्चित विधि और गौण व्यवस्था बनती है ऐसा हे प्रभु आपने ही तो बताया। सो हे प्रभो तुम्हारा स्तवन करते हुए मेरेको मतिका प्रवेग

Report any errors at vikasnd@gmail.com

प्राप्त हो याने सुमति जगे। सुमतिनाथ भगवानका स्तवन करते हुए हमारी मति समीचीन जगे। अब पद्मप्रभकी स्तुति करते हैं।

पद्मप्रभः पद्मपलाशलेश्यः पद्मालयालिङ्गितचारुमूर्तिः।
बभौभवान् भव्यपयोरुहाणां पद्माकराणामिव पद्मबन्धुः ।२६।

श्री पद्मप्रभदेवकी यथार्थ भव्यबन्धुता—हे पद्मप्रभुदेव आप पद्मपलासलेश्य हैं। कमलके पत्तेकी तरह वर्ण वाले हैं। चौबीस तीर्थंकरोंके देहका वर्ण बताया गया है वहाँ पद्म प्रभु देवका पद्मपलासकी तरह वर्ण बताया गया, और हे प्रभो आप ऐसी मनोज्ञमूर्ति हैं जो लक्ष्मीके द्वारा आलिंगित हैं। मायने स्पष्ट है, सर्वथा लक्ष्मीका दिग्दर्शन होता है आप की सुन्दर मूर्तिमें सो आपने भव्य कमलका विकास किया। जैसे कि पद्मबंध अर्थात् सूर्य कमलोंकी खानका विकास करता है अर्थात् कमलवनमें सूर्यके उदय होते ही प्रफुल्लता आ जाती है। दो प्रकारके ये फूल होते है—कमल और कमलिनी। कमलिनीका विकास होता है रात्रिमें और कमलका विकास होता है दिनमें। तो जैसे सूर्यके उदय होने पर कमल का विकास होता है ऐसे ही हे प्रभो आपका उदय होने पर भव्य जीवोंका विकास होता है, वह अज्ञानसे हटकर ज्ञानमें आता है और आत्माका विकास ज्ञानविकास ही रहता है। तो ऐसे ज्ञानकी प्राप्ति आपके उपदेशसे हुई, दिव्यध्वनिसे हुई

http://www.jainkosh.org

इस कारण नाथ आप भव्य कमलोंके विकास कर्ता सूर्य कहलाते हैं।

व भार पद्मां च सरस्वतीं च भवान्पुरस्तात्प्रतिमुक्तिलक्ष्मयाः।
सरस्वतीमेव समग्रशोभां सर्वज्ञलक्ष्मीं ज्वलितां विमुक्तः ।२७।

लक्ष्मी, सरस्वती व सर्वज्ञलक्ष्मीके आधार—हे प्रभु आपने मुक्तिलक्ष्मीसे पहले पहले याने जब तक निर्वाण नहीं हुआ था तब तक आपने लक्ष्मी और सरस्वती दोनोंका भरण पोषण किया। लक्ष्मीका पोषण तो यों हुआ कि समवशरणमें जो शोभा होती है ऐसी शोभा किसी भी जगह सम्भव नहीं है। जैसे इन्द्र रचता है, कुबेर रचता है और इन्द्र द्वारा कुबेर जिसके प्रबंधक हैं, ऐसे एक समवशरणकी शोभा अद्भुत शोभा होती है और लक्ष्मीका उत्कृष्ट विलास वहाँ पाया जाता है तो मोक्ष लक्ष्मी पानेसे पहले इस लक्ष्मीका भरण किया और सरस्वतीको, भगवानके केवलज्ञान होने पर और निर्वाण न होने तक अरहंत अवस्थाका यह वर्णन किया गया है कि वहाँ लक्ष्मी और सरस्वती दोनोंका पोषण किया। लोग कहते हैं कि लक्ष्मी और सरस्वतीका बैर है और प्रायः यह देखा जाता है कि जो विद्वान है वह प्रायः उच्च धनिक नहीं होता और जो उच्च धनिक है वह प्रायः विद्वान नहीं होता, इसी पर यह रूढ़ि है कि लक्ष्मी और सरस्वतीका विरोध है, और हे प्रभो, आपके पास सरस्वती और लक्ष्मी दोनोंका विरोध

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नहीं हो सकता। तो मुक्तिलक्ष्मी प्राप्त करनेसे पहले तो आपने पद्मा और सरस्वती दोनोंका भरण किया, और जब विमुक्त हुए, मोक्ष हुआ तब एक सरस्वतीसे हो जिसकी सम्पूर्ण शोभा है और सर्वज्ञलक्ष्मी रूप है उसका ही भरण किया अर्थात् मोक्ष होने पर फिर यहांका समवशरण विघट जाता है। नहीं रहता, और स्वयं ही देहरहित हो जाता है। तो मुक्तिसे पहले तो लक्ष्मी और सरस्वती दोनोंका अविरोध रहा और मुक्त होने पर एक सरस्वतीको ही आपने धारण किया जो कि प्रचलित है और सर्वज्ञ लक्ष्मी के रूपमें है।

शरीररश्मिप्रसरः प्रभोस्ते बालार्करश्मिच्छविरालिलेप।
नरामराकीर्णसभां प्रभावच्छैलस्य पद्माभमणेः स्वसानुम ॥२८॥

प्रभुदर्शनसे नरामराकीर्णसभाकी प्रभाविततता—हे प्रभो, आपके शरीरकी किरणोंका फैलाव ऐसा मालूम होता है जैसे कि बाल सूर्यके किरणोंकी छवि हो। बालसूर्य कहते हैं उगते हुए सूर्यको। सूर्यमें बालक, वृद्ध, जवान नहीं होता, पर उदय के समय दिखता है लोगोंको सूर्यका प्रारम्भ इसलिए उसे कहते हैं बालसूर्य, और जैसे प्रायः बालसूर्यकी छवि लालिमा रहती है ऐसे ही हे प्रभो! आपके शरीरकी किरणोंका फैलाव हुआ, और आपके इस शरीरकी किरणोंके फैलावमें देव और मनुष्योंसे भरी हुई सभाको लीप दिया, अर्थात् इस प्रभाका प्रभाव मनुष्य और देवोंकी सभा पर पड़ा। जैसे कि पद्मा

मणि वाले पर्वतकी जो उपत्तिकायें हैं याने पर्वतमें जो एक भारखण्डसे होते हैं। जैसे कि किसी विशाल पर्वतको देखकर बहुत दूरसे ऐसा लगता है कि यहाँ तक यह इतना गया, इतना चौड़ा और यहाँ सीढ़ी सी हो गई पहलेसे, और यह दूसरा हिस्सा हो गया। तो जहाँ पर्वतको शोभित कर देती है वहाँ पर्वत पर रहने वाली मणि उन मणियोंको जैसे पर्वतका तठभाग और उन तटोंके खण्ड जैसे शोभित हो जाते हैं ऐसे ही हे प्रभो! आपके शरीरकी किरणोंके फैलावमें प्रभासे लिप गए मनुष्य और देवोंकी सभा अर्थात् आपके शरीरका वर्ण एक बालसूर्यकी लालिमाकी तरह है और इतनी वह मनोज्ञ प्रभा है कि जिस प्रभाके बीच देव और मनुष्योंकी सभा बड़ी शोभित होती है।

नभस्तलं पल्लवयन्निव त्वं सहस्रपत्राम्बुजगर्भचारैः।
पदाम्बुजैः पतितमोहदर्पो भूमौ प्रजानां विजहर्ष भूत्यै ।२६।

नभ स्थलमें सर्वत्र प्रजाके हर्षके संभावक—हस्त पत्ते वाले जो कमल हैं सो जब आप विहार करते हैं तो ऐसा मालूम होता है कि आपने आकाश फूलको पल्लवित कर दिया याने पत्ते वाले बना दिया। कहीं आकाशके फूल हुआ करते हैं, लेकिन आपके विहारने आकाशको फूल वाला बना दिया ऐसा मानो आपने इस आकाशको ही हर्षित कर दिया और इस चरणकमलके द्वारा इस भूमि पर प्रजा जनोंको हर्षित कर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

दिया याने ये प्रजागण आपके दर्शन पाकर मोहके दर्पको दूर करते हैं, और वे स्वयं एक आत्मवैभवके लिए विकसित हो जाते हैं। तो आपने वहाँ आकाशको विकसित किया, यहाँ भव्य जीवोंको विकसित किया अर्थात् लक्ष्मी और सरस्वती दोनोंका फैलाव बराबर रहा। सरस्वतीके फैलावका प्रभाव तो पड़ा संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर और आपकी लक्ष्मीका प्रभाव जैसे समवशरणमें थे तो विहार करते समय भी बराबर रहा। ऐसे हे प्रभु आप अद्भुत लक्ष्मीसे समृद्ध हो।

गुणाम्बुधेर्विप्लुषमप्यजस्त्रं नाखण्डलः स्तोतुमलं तवर्षे।
प्रागेव मादृक्किमुतातिभक्तिर्मां बालमालापयतीदमित्थम् ॥३०॥

प्रभुगुणध्यानसे हुई अतिभक्ति प्रभुस्तवनमें कारण—पद्म प्रभु भगवानकी स्तुतिमें कह रहे हैं कि हे ऋषि, ऋषि कहते हैं महान, सम्पन्न आत्माओंको। हे प्रभो! ऐसे महान सम्पन्न इन्द्र भी जिसमें महान् गुणोंका पिटारा है वह भी तुम्हारी स्तुति करनेमें समर्थ नहीं है। तब फिर हम लोग तो पहलेसे ही असमर्थ हैं, लेकिन कोई आशंका करे या मानो भगवान ही स्वयं पूछ बैठें कि जब असमर्थ हो तो स्तुति करने आये, क्यों? तो स्तुतिका कारण यह है कि आपके प्रति जो तीव्र भक्ति है वह भक्ति मुझ बालकको इस प्रकार आलाप कराता है अर्थात् स्तवनके रूपमें सबसे बलवान है। इस छंद में इस बातका दिग्दर्शन कराया कि प्रभु भगवान तुम्हारे

http://www.jainkosh.org

अनन्त गुण सम्पन्न हैं ऐसे अनेक गुणोंसे सम्पन्न इन्द्र भी बहुत निरन्तर स्तवन करते रहे तो भी स्तवन करनेमें समर्थ नहीं। फिर स्तुति करते हैं तो क्यों? स्तुति कोई नहीं करता प्रभु की। प्रभुके गुणोंका कोई स्तवन भी नहीं कर सकता, लेकिन प्रभुके प्रति जो तीव्र भक्ति है वह स्तवन कराती है सो उस ही भक्तिमें इस प्रकारका यह स्तवन किया जा रहा है। अब सुपार्श्वनाथ भगवानकी स्तुति करते हैं।

स्वास्थ्यं यदात्यन्तिकमेष पुंसां
स्वार्थो न भोगः परिभङ्गुरात्मा।
तृषोऽनुषङ्गान्न च तापशान्ति-
रितीदमाख्यद्भगवान सुपार्श्वः ॥ ३१ ॥

श्री सुपार्श्वनाथ जी के शासनमें वास्तविक स्वास्थ्यमें ही कल्याणलाभका आख्यान—हे सुपार्श्वनाथ भगवान आपने ही तो यह सब बताया। सुपार्श्वनाथ भगवानने ही तो यह सब आख्यान किया कि इस आत्माका वास्तविक स्वार्थ क्या है? जगतके सभी जीव स्वार्थपूर्तिमें लिप्त रहा करते हैं। तो वास्तवमें इस आत्माका स्वार्थ है क्या? तो स्वार्थ है आत्यंतिक स्वास्थ्य हो जाना। सदाके लिए भरपूर अपने आत्मामें मग्न हो जाना, यही वास्तवमें आत्माका स्वार्थ है। ये भोग विषय स्वार्थ नहीं, क्योंकि ये सब भोग क्षणभंगुर हैं, जो क्षणिक है वह कैसे चाहने योग्य हो सकता और कैसे वह हित करने वाला

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हो सकता, और अपने आत्मामें अपने आपकी जो मग्नता है वह तो सदाके लिए रहता है इसलिए वास्तविक स्वार्थ तो आत्यंतिक स्वास्थ्य है। स्वास्थ्यकी सब महिमा बोला करते हैं पर वास्तविक स्वास्थ्य क्या है, वह स्वास्थ्य शब्द ही बताता है। स्वस्मिन् तिष्ठः इति स्वास्थ्यः। स्वस्थं भवः स्वास्थ्यं, अपने आत्मामें जो ठहरे उसे कहते हैं स्वस्थ और स्वस्थ के भावका नाम है स्वास्थ्य तो सही स्वास्थ्य हो, यही आत्मा का प्रयोजन है, कल्याण है, स्वास्थ्य है।

इन्द्रियविषयोंसे संतापशान्तिकी असंभवताका आख्यान— ये इन्द्रियके विषय स्वास्थ्य नहीं, क्योंकि ये क्षणभंगुर हैं और फिर इन भोगोंके प्रसंगमें तृष्णाका सम्बन्ध बनता है, इस कारण संतापकी शान्ति भी नहीं होती। इसलिए आत्माका स्वास्थ्य वास्तवमें स्वास्थ्य है, पर इन्द्रियविषय नहीं। लोग तीन चार प्रकारके होते हैं—एक तो ऐसे कि जो थोड़ेसे उपदेशके सुननेसे अपना पंथ अपना लेते हैं, कुछ लोग ऐसे होते हैं कि कुछ इन्द्रिय विषयोंका प्रसंग पाकर फिर बुद्धि ठीक बनती है तो हितपंथ अपनाते हैं। कुछ विशेष भोगकर हितपंथ अपनाते। कोई भोग भोगमें ही आशक्त रहकर मर जाते फिर भी हितपंथ नहीं अपनाते। जैसे एक कथानक है कि एक भंगिन मलका टोकना लिए जा रही थी तो एक सज्जन ने बड़ा स्वच्छ सफेद तोलिया भंगिनको दे दिया इसलिए कि

वह टोकना ढक ले ताकि लोगोंको परेशानी न हो। तो जब वह मार्गसे गुजर रही थी तो तीन चार लोगोंने यह सोचा कि इस टोकनीमें कोई बढ़िया चीज होगी तब ही तो अच्छे कपड़े से ढके है, तो पीछे लग गए। वहाँ भंगिन कहने लगी कि तुम लोग क्यों पीछे लगे हो ? इस टोकनीमें तो मल भरा है। उसकी बात सुनकर एक पुरुष लौट गया। तीन पुरुष अभी भी पीछे लगे रहे। भंगिनने फिर कहा—भाई तुम लोग क्यों पीछे लगे हो ? इस टोकनेमें तो मल भरा है। तो वे बोले—तुम बहकाती हो, हमें खोलकर दिखा दो, जब देख लेंगे तब लौटेंगे। भंगिनने टोकना खोलकर दिखा दिया तो उनमें से एक पुरुष लौट गया। दो पुरुष अभी भी पीछे लगे रहे। फिर भंगिनने कहा—भाई इस टोकनेमें मल है, क्यों पीछे लगे हो ? तो उन दोनोंने कहा—हम तो अच्छी तरहसे सूँघ साँघकर खूब परख कर लेंगे तब तुम्हारी बात ठीक समझेंगे। आखिर वैसा ही किया तब उन दोनोंमें एक पुरुष लौट गया। एक पुरुष अभी भी पीछे लगा रहा। उसकी समझमें न आया। तो कुछ लोग ऐसे होते हैं कि जो जिन्दगी भर विषय भोगोंमें लगे रहते हैं और बड़ी बुरी तरहसे मृत्यु पाते हैं, उनका उद्धार नहीं होता यह भोगोंका प्रसंग ऐसा ही है कि कोई अगर सोचे कि हम थोड़ा सुख भोग लें पीछे त्याग देंगे तो वह त्याग नहीं सकता, क्योंकि थोड़ा सुख भोगे तो उसे तृष्णा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

का सम्बन्ध बनेगा, फिर संतापकी शान्ति हो नहीं सकती। तो प्रभुका यह रहस्य कि जिसको हितकी चाह हो, वह यह विचार न बनाये कि हम इतना सुख पा लें, पीछे छोड़ेंगे। जो ऐसा ख्याल बनायगा वह छोड़ नहीं सकता और जो इन विषयोंमें लगे भी, लेकिन आपत्ति समझे, एक विडम्बना जाने और उसके त्यागकी भावना रखे वह तो इसे छोड़ सकता है, किंतु जो ऐसा ही विचार बनाये कि कुछ दिन भोगकर छोड़ेंगे, उसके छोड़नेका अवसर नहीं आ पाता। ऐसा रहस्य हे सुपार्श्वनाथ भगवान आपने ही तो आख्यान किया।

अजङ्गमं जङ्गमनेययन्त्रं यथा तथा जीवधृतं शरीरम्।
बीभत्सु पूति क्षयि तापकं च स्नेहो वृथात्रेति हितं त्वमाख्यः ।३२।

अनेक दोष परिपूर्ण देहमें स्नेहकी व्यर्थताका आख्यान—यह देह क्या है ? अजङ्गम हैं, जैसे कि ईंट पत्थर ये जङ्गम हैं, चल फिर नहीं सकते, हिल-डुल नहीं सकते, ऐसे ही यह देह भी ईंट पत्थरकी भाँति अजङ्गम है। यह हिलता-डुलता नहीं, लेकिन हिल-डुल तो रहा। लोग देखते तो हैं। तो कहते हैं कि यह जङ्गम यंत्र है जैसे मोटर कैसे हिले-डुले, पर ड्राइवरके द्वारा चलाई जाय तो चलती है। तो ऐसे ही इस देहमें जो ड्राइवर है, जीव है, आत्मा है उसके संसर्गसे यह प्रभाव है कि यह चलता है। यहाँसे वहां जाया जाता है। तो जैसे कोई अजङ्गम पदार्थ है तो जंगमके द्वारा लाया जाता है ऐसे ही यह शरीर है, यह

जीवके द्वारा धारण किया गया। यह भी जीवके सम्बंध तक ही हिलता-डुलता हैं। जीवका संसर्ग न रहे तो पड़ा रहता है, सड़ता है, लोग जला देते हैं। तो यहां कुछ ऐसा सोचना चाहिए कि आखिर जिस देहमें हम बस रहे हैं और जिस देहके संसर्गके आधार पर हम हर्ष विषाद शत्रुता, मित्रता, यश, लोभ आदिक किया करते हैं यह देह तो यहीं रहेगा, सड़ेगा, जलेगा, लोग इसे पसंद न करेंगे। ऐसे इस असार शरीरके पीछे अपना अकार्य करना, खोटे विचार बनाना यह युक्त नहीं है, यह तो अजङ्गम है और इतनेपर भी जैसे कि अन्य पदार्थ कुछ देखनेमें भले तो लगते हैं, पवित्र तो होते हैं, जैसे मोटर आदिक, इनमें क्या गंदगी है, लेकिन इस यंत्रमें तो बड़ी गंदगी भरी है। भयानक है, इसकी भयानकताका दृश्य तब एकदम सामने आता कि जब अति वृद्ध अवस्था होती है और शरीर का ढांचा एकदम बिगड़ जाता है। तो देखने वाले लोग या बच्चे भी कभी-कभी डर जायें, ऐसा यह भयानक शरीर है। और इतनी ही बात नहीं, किन्तु यह अपवित्र है, दुर्गन्धित है, जिस पर तेल लगाये तो तेल भी दुर्गन्धित हो जाय, कपूर चन्दन आदिकका लेप करे तो वह भी अपवित्र बन जाय, ऐसा यह अपवित्र गंदा शरीर है, और इतना ही नहीं, इतना होते हुए भी यह विनाशीकशील है। कोई सोचे कि अपवित्र रहने दो, भयानक रहने दो, पर जितनी देर इस देहकी सेवा है,

खुशामद है, खाता-पीता है तब तक कुछ सुख तो मिलता है, सो इतनी भी बात नहीं। यह तो विनाशीक है। कोई कहे कि विनाशीक रहने दो। जब तक देह है तब तक तो सुख रहेगा। तो कहते हैं कि नहीं, यह तो संताप करने वाला है।

सद्बुद्धिकी शरण्यता—इस जीवका शरण सद्बुद्धि है। सद्बुद्धि नहीं है तो यह जीव इस संसारमें रुलता है, भटकता है, दुःख भोगता है। इसको विपत्तिसे बचाने वाली बूटी सद्-बुद्धि ही है। सद्बुद्धिका मूल्य तीन लोकके वैभवके संग्रहसे भी अधिक है, वैभवमें क्या है ? एक कल्पना कर लिया कि यह मेरा है, खुश हो रहे हैं। वैभवसे खुशी तो नहीं आती, यह तो अपनी कल्पना बनायी और सुखी होता है। सो भी वैभवसे सुख कहां ? कितनी चिन्तायें, कितने विकल्प, कितने भय। केवल एक अज्ञानी गरीब इस वैभवकी चाह करते हैं। और वह मिला है इसे तो इस अहंकारसे थोड़ा खुशी मानता है, लेकिन सुख कहां, खुशी कहां ? और जिसके दुर्बुद्धि है वह तो गया बीता है। जीवका शरण है तो सद्बुद्धि है। यह तो संताप करने वाला है, इसमें स्नेह करना व्यर्थ है। ऐसे हे प्रभु हितकारी वचन आपने ही तो कहे।

अलंघ्यशक्तिर्भवितव्यतेयं हेतुद्वयाविष्कृतकार्य लिंगा।
अनीश्वरो जन्तुरहंक्रियार्त्तः संहत्य कार्येष्विति साध्ववादी॥३३॥

वस्तुस्वतंत्रताके कारण परमें कुछ किया जाना अशक्य

होनेसे संसारी प्राणीकी अनीश्वरता होने पर अहंक्रियार्तताका आख्यान—हे प्रभु आपने यह बिल्कुल उत्तम कहा, क्या कि यह जो होनहार है, यह अलिंगशक्ति है, इसका उल्लंघन किया जाना कठिन है। तो यह होनहार बनता कैसे है ? तो दोनों प्रकारके हेतुवोंसे कार्य बनता है, ऐसा जिसका चिन्ह है वह होनहार दुर्निवार है। कार्य होनेमें दो कारण हुआ करते हैं—(१) उपादान और (२) निमित्त। उपादान तो कहलाता है वह कारण, जिसमें परिणमन होता है और निमित्त वह कारण कि जिसके न होनेपर कार्यकी सम्भवता नहीं होती। सो कार्य तो इसी प्रकार होते। भले हो अवधिज्ञानियोंने जाना, महापुरुषोंने जाना कि अमुक दिन यह होगा। जैसा होगा वैसा झलका तो कहीं ऐसे ही नहीं झलक गया। उपादान और निमित्त इन दोनों हेतुवोंके प्रसंगसहित जिस-जिस ढंगसे जो कार्य होगा, होता है, वह जान गया तो यह भवितव्यता जो दोनों कारणोंसे सम्पादित है। अभेदसे तो उपादानमें कार्य है और जिसकी अनुपस्थितिमें सम्भव नहीं होता उस दृष्टिसे निमित्त द्वारा सम्पादित है। ऐसा यह भवितव्यता, होनहार, यह अलिंग है, लेकिन यह संसारका प्राणी मैं कर दूंगा, इस प्रकार ऐसे अहंकारके भावसे पीड़ित होकर यह दुःखी रहता है। यह ईश्वर तो है नहीं, समर्थ तो है नहीं कि जैसा यह चाहे वैसी ही बात सामने आये। यहां कोई ऐसा सोच सकता कि कोई

पुरुष मोक्षमार्गमें लगना चाहे तो लग तो जाता है, आत्म-कल्याण चाहे तो कर तो लेता है। सो वास्तविक सूक्ष्मता तो यह है कि जब तक चाह है तब तक कल्याण नहीं हो रहा, और जब वह चाह नहीं रहती तब उसका कल्याण है। और फिर इस चाहमें अहंकार तो नहीं बसा हुआ है। अहंकार कहते हैं उसे कि जो अहं तो नहीं है, पर विकल्पमें अहं कर देवे। न मैं कों मैं करे उसे कहते हैं अहंकार। तो ऐसे अहंकारसे पीड़ित हुआ प्राणी यह मुनीश्वर असमर्थ होता हुआ नष्ट हो रहा है। कार्योंमें लग-लगकर बरबाद हो रहा है, ऐसा हे नाथ आपने ही तो यथार्थ कहा। यह भगवानको स्तुति हो रही है भगवानके गुणोंका स्मरण करते हुए—

> विभेति मृत्योर्न ततोऽस्ति मोक्षो
> नित्यं शिवं वाञ्छति नास्य लाभः।
> तथापि बालो भयकाम वश्यो
> वृथा स्वयं तप्यत इत्यवादीः ॥३४॥

मृत्युभयग्रस्त तथा सुखकामनाग्रस्त प्राणीके संतापका आख्यान—यह संसारी प्राणी मृत्युसे तो डरता है, पर डरनेसे कहीं मृत्युसे मुक्ति नहीं हो जाती। मृत्युसे छुटकारा नहीं बनता, बल्कि जो कारणसे डरता है उसके विकल्प और बंधन होनेसे उसको तो मृत्यु मिलती रहेगी। जिसे कहते हैं जन्म मिलते रहेंगे। तो जन्मके साथ मृत्यु भी है। मृत्यु मिलती ही

रहेगी जो मृत्युसे डरेगा। तो यह प्राणी मृत्युसे डरता है तो इससे कहीं मृत्युसे छुटकारा नहीं होता और यह सदा कल्याण को चाहता है, सुख चाहता है। तो सुख चाहने मात्रसे सुखसे लाभ नहीं होता। बल्कि सुखकी यादमें सुख है ही नहीं। जब जब किसी वस्तुके विषयमें चाह है तो चाहके सम्बन्धमें तो सुख है ही नहीं। चाह पीड़ा है, चाहके समयमें न वस्तु है, न भोग है, न सुख है। तो सुखकी चाहसे कहीं सुखकी प्राप्ति नहीं होती। तो भी यह बालक यह अज्ञानी भव और कामके वशीभूत होता हुआ व्यर्थ ही स्वयं संताप सह रहा है। भय और चाह ये दो ही जीवोंके दुःखके हेतु हैं, इसका समर्थन इस छंदमें किया है। जितने भी कष्ट मान रहे हैं उन सबमें ये दो बातें पायी जा रही हैं—डर और आशा। मृत्युसे डर और सुखकी आशा। इसके साथ-साथ और भी बातें लगा सकते। धन-वैभव आदिक न मिट जायें इसका डर और इसकी वृद्धि हो, बढ़वारी हो इसकी आशा। यह इतना आशामें व्यग्र है, बाह्य पदार्थोंके करनेके लिए इतना धुनमें लगा हुआ है कि जिसे नीतिकारोंने यों कहा कि मैं करूँगा करूँगा करूँगा, यह तो खूब चिन्तन किया इस जीवने, पर मैं मरूँगा मरूँगा मरूँगा, यह बात यह बिल्कुल भूल गया। "करिष्यामि करिष्यामि करिष्यामि इति चिन्तितं। मरिष्यामि मरिष्यामि मरिष्यामि इति-विस्मृतं ॥" केवल एक ही धुन रखी—करूँगा,

Version 1

यह करता है, करने चलो। तो करने करनेका तो चिन्तन किया, पर इस जीवने अपने मरणका चिन्तन नहीं किया। लोग तो कहते हैं कि मरणकी बात कहना असगुन है, पर वास्तवमें मरणकी बात कहना सगुन है। यदि मरणकी बात सगुन न होती तो मुर्देको देखनेमें सगुन क्यों मानते ? लौकिक जन भी मरणकी बात जब चित्तमें आती है तो पापसे दिल हट जाता है। और अच्छे कार्योंके लिए, धर्ममार्गके लिए चित्त चलता है। धर्मसाधना वही कर सकता है जो यह निर्णय किए बैठा है कि मृत्यु तो मेरे सिर पर बैठी है। मृत्युने तो मेरे केशोंको जकड़ रखा है कभी भी हिला दे और इस जीव को देहसे जाना पड़ेगा। ऐसी बात जिसके चित्तमें है, धर्मसाधना उससे बन सकती है और जिसने अपनी मृत्युको भुला दिया और मैं रहूंगा, ऐसा ही निर्णय कर लिया उससे धर्म-साधन नहीं होता। तो जो लोग मृत्युसे डरते हैं या जो विषय सुखोंकी आशा रखते हैं वे बालकवत् अज्ञानी हैं। और इन्हीं दोषोंके कारण संताप सह रहे हैं, ऐसा हे प्रभु आपने ही तो बताया।

सर्वस्य तत्त्वस्य भवान्प्रमाता मातेव बालस्य हितानुशास्ता।
गुणावलोकस्य जनस्य नेता, मयापि भक्त्या परिणूयसेऽद्य ।३५।

प्रमाता व हितानुशास्ताका सभक्ति स्तवन—सुपार्श्वनाथ भगवानकी स्तुतिमें आचार्य कह रहे हैं कि हे प्रभो आप समस्त

तत्त्वोंके प्रमाता है। प्रमाता कहते हैं जानने वालेको, प्रमाण करने वालेको। सम्यक् प्रकारसे जानने वालेका नाम है प्रमाता। आप समस्त तत्त्वोंके प्रमाता हो और माताकी तरह बालकके हितका उपदेश करने वाले हो। जैसे माता बालकके लिए हित का ही उपदेश करती है। माताका और बच्चेका ऐसा ही अनोखा सम्बंध है कि अनेक कष्ट सहकर भी, अनेक दु:ख भोग-कर भी माता बच्चेका हित ही चाहती हैं। तो जैसे माता बच्चे के लिए हितका उपदेश करती है उसी प्रकार आप भी इस जगतके लिए हितका उपदेश करते हैं। एक है जगतकी माता और यह है प्रमाता। माताका अर्थ है प्रमात करने वाली, मानने वाली, ठीक-ठीक समझने वाली और उसमें प्र उपसर्ग लग गया तो बन गया प्रमाता। प्रमाताका अर्थ है प्रमाण करने वाला। सो हे प्रभु आप इन गुणावलोकी मनुष्योंके नेता हो। जितने भी जन गुण पसंद करने वाले हैं, गुणदृष्टि वाले हैं उन सब मनुष्योंके आप नेता हो अर्थात् आप गुणोंमें परिपूर्ण हो और जो गुणोंकी खोजमें रहने वाले हैं, गुणोंकी ही दृष्टि रखने वाले हैं उन मनुष्योंके आप नेता हो, सो आप मेरे द्वारा भी भक्तिसे आज स्तवन किए जा रहे हो। इसमें तीन बातों पर प्रकाश डाला है। एक तो भगवान समस्त तत्त्वोंके प्रमाण करने वाले हैं, जानने वाले हैं। इसमें तो सर्वज्ञता सिद्ध हुई और हितका उपदेश करने वाले हैं इससे हितोपदेशिता सिद्ध

Report any errors at vikasnd@gmail.com

हुई और गुणद्रष्टा पुरुषोंके लिए आप नेता हैं। नेता वही हो सकता जो गुणसम्पन्न हो, और गुण तब ही प्रकट होते जब कर्म आवरणका विनाश किया हो। तो हे प्रभु आप गुणाव-लोकी मनुष्योंके नेता हो सो मेरे द्वारा आप स्तवन किए जा रहे हो, अब चन्द्रप्रभु भगवानकी स्तुति करते हैं।

चन्द्रप्रभं चन्द्रमरीचिगौरं चन्द्रं द्वितीयं जगतीव कान्तम्।
वन्देऽभिवन्द्यं महतामृषीन्द्रं जिनं जितस्वान्तकषायबन्धम् ।३६।

शान्तिके कारणभूत श्री चन्द्रप्रभदेवका अभिवन्दन—मैं चन्द्रप्रभु भगवानको नमस्कार करता हूं। इतना स्तवन करनेके बाद नमस्कारका शब्द यहाँ दिया है। कैसे हैं चन्द्र-प्रभु? चन्द्रमाके किरणोंकी तरह गौर वर्ण वाले हैं। चन्द्रप्रभु भगवानको श्वेत वर्ण वाला कहा जाता है। इस मनुष्य शरीर के उतने रंग होते हैं कि एक दूसरे मनुष्यके रंगमें कोई न कोई अंशमें अन्तर पाया जाता है। शरीरके रंग जो तीर्थंकरोंके बताये हैं कि किसीका तपे हुए स्वर्णके समान हैं, किसीका सफेद है, किसीका हरा रंग है, किसीका नीला है, किसीका श्याम है, तो ऐसे रंग अब भी कुछ कुछ देखे जाते हैं। हृष्ट-पुष्ट भी है और श्वेत रंगमें हैं, ऐसे अनेक मनुष्य दिखते हैं। स्वर्णके रंग वाले हैं, और हरे और नीले रंग भी देखे जाते हैं। लेकिन ये सब सम्भव हैं। कुछ कुछ अकस्मात पाये तो जाते हैं। यहाँ चन्द्रप्रभु भगवानको बताया गया है कि ये

http://www.jainkosh.org

चन्द्रमाकी किरणोंकी तरह गौर वर्णके हैं, अत्यन्त शुक्ल वर्ण है। तो वे तो इस जगतमें द्वितीय ही चन्द्र हैं। चन्द्र भी श्वेत वर्णका होता है, अत्यन्त कमनीय प्रिय ऐसे अभिनन्द चन्दप्रभु भगवानको मैं नमस्कार करता हूं। जो बड़ों बड़ोंके द्वारा वंदनीय है। देव, देवेन्द्र, गणधर, मुनीन्द्र सर्व जिनके चरणोंमें वंदना करते हैं, ऐसे बड़े-बड़े पुरुषोंके अभिनन्दनीय चंदप्रभुको मैं वंदना करता हूं। कैसे हैं ये नाथ? ऋषियोंके इन्द्र ये ऋद्धि सम्पन्न, ऊँचे ऊँचे मनुष्य जनोंके ये नायक हैं, जिन्होंने मनको और कषाय बन्धनको जीत लिया है, मनको जीत लिया, कषायको जीत लिया, बंधनको जीत लिया ऐसे ये चन्द प्रभु आपको मैं वंदन करता हूं। कथाके आधार पर यह बात प्रसिद्ध है कि जिस समय समन्तभद्र स्वामीने चन्द्र प्रभु तीर्थंकरकी स्तुतिका प्रथम छंद पढ़ा और वंदन किया तो वहां चन्द्रप्रभु देवकी प्रतिमा प्रकट हो गई।

यस्याङ्गलक्ष्मीपरिवेषभिन्नं तमस्तमोरेरिव रश्मिभिन्नम्।
ननाश बाह्यं बहुमानसं च ध्यानप्रदीपातिशयेन भिन्नम् ।३७।

तमोविनाशक श्री चन्द्रप्रभदेवका स्तवन—जिसके शरीर की लक्ष्मीके परवेशसे अंधकार दूर हो गया अर्थात् भामण्डल प्रभुके शरीरकी आभाका जो चारों ओर मण्डल है उस कान्ति से अन्धकार दूर हो गया, जैसे कि सूर्यकी किरणोंसे अंधकार दूर हो जाता है, और फिर जिसके उपदेश वचनोंको सुनकर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो हृदयका अंधकार दूर हो ही जाता है, जिसने बाह्य और अंतरंग सर्व प्रकारके दोषोंको नष्ट किया है। ध्यानरूपी दीपक के अतिशयसे समस्त दोषान्धकार जिसने दूर किया ऐसे चन्द्र-प्रभुदेवको मैं वन्दन करता हूं। अज्ञान अंधकार दूर करनेमें समर्थ है ज्ञानदीप और ज्ञानदीप वह है जो ज्ञान अपने ज्ञानको प्रकाशित करता है, वह दीपक क्या दीपक है जो खुदको प्रकाशित न कर सके। जैसे दीपक स्वभावसे अपनेको प्रकाशित किए रहता है और परको प्रकाशित किए रहता है, ऐसे ही प्रभुका ज्ञान दीपकके समान खुद प्रकाशमान है और उससे दूसरे पदार्थ भी प्रकाशित होते हैं। ऐसा अंतरंग अंधकारको दूर किया और बहिरंग अंधकारको दूर किया, उन चन्दप्रभु भगवानको मैं वंदन करता हूं।

स्वपक्षसोस्थित्यमदावलिप्ता वाक्सिंहनादै विमदावभूवुः।
प्रवादिनो यस्य मदार्द्रगण्डा गजा यथा केशरिणो निनादैः।।३८।।

स्याद्वादसिंहनाद द्वारा एकान्तमदमत्तताका विनाश—जिन प्रभुके वचनरूपो सिंहनादोंके द्वारा घमंडमें सने हुए प्रवादीजन मदरहित हो गए उन प्रभुको मैं वंदना करता हूं। कैसे हैं ये प्रवादी जन ? अपने पक्षके ठीक निभा देनेके घमंडसे जो अवलिप्त है याने जिसमें ऐसी वचनकला है कि जिन वचनोंके द्वारा अपने पक्षको ठीक स्थापित कर देनेकी बात कह देते हैं और उसके घमंडमें सने हुए हैं, ऐसे प्रवादी जन जिनके वचन

रूपी सिंहनादसे मदरहित हो गए। जैसे मदमें मस्त हाथी सिंहनाद सुनकर मदरहित हो जाते हैं, ऐसे ही वचन सिंहनाद को सुनकर सुवादी भी मदरहित हो गए। हाथियोंमें जो बहुत बलशाली और यौवनसम्पन्न मदमाते हाथी होते हैं तो उनके मस्तकसे मद भी झरने लगता है। जैसे कि मनुष्योंके शरीरसे पसेव बहता, यह पसेव और बात है और दो ही जातिके करीब करीब मद होते हैं वह मद झरता है, उस मदसे गीला हो गया है मस्तकभाग जिनका ऐसे बड़े-बड़े हस्ती सिंहके नादोंके द्वारा मदरहित हो जाया करते हैं। इसी प्रकारसे जिन चंद-प्रभु भगवानकी दिव्यध्वनिको सुनकर बड़े-बड़े मदोन्मत्त हाथी भी मदरहित हो गए उन प्रभुको मैं वंदन करता हूं।

यः सर्वलोके परमेष्ठितायाः पदं बभूवादभुतकर्मतेजाः।
अनन्तधामाक्षरविश्व चक्षुःसमेतदुःखक्षयशासनश्च ।।३९।।

श्री चन्द्रनाथजी की सर्वलोकमें परमेष्ठिता—जो इस समस्त लोकमें परमेष्ठीपनेके स्थान हुए याने परमेष्ठी कहलाये। परमेष्ठियोंमें भी उत्तम कहलाये, ऐसे प्रभुको मैं वंदना करता हूं। परमेष्ठीके दो शब्द हैं—परम और इष्ठी, जो उत्कृष्ट पदमें ठहरें उनको परमेष्ठी कहते हैं। और कोई परमेष्ठी शब्द कहे तो उसका अर्थ है कि जो परम इष्ट हो सो परमेष्ठी। शब्द है परमेष्ठी। परमेष्ठी ५ होते हैं—अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये सब पदमें स्थित हैं, इनमें अरहंत और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

सिद्ध ये तो देव कहलाते हैं, भगवान हैं, परमात्मा हैं और आचार्य, उपाध्याय, साधु ये गुरु कहलाते हैं। तो देव तो निर्दोष होते हैं। कोई दोष नहीं रहता और गुरु दोषोंके क्षय करनेमें प्रयत्नशील होते हैं। तो देव और गुरु इनमें उत्कृष्ट तो देव है। गुरुमें दोष रहते हैं, मगर दोषोंको नाश करनेके उद्यमी रहते हैं। महा दोष नहीं रहते। कर्मका उदय है, अल्प दोष चलते हैं, उनको दूर करनेका प्रयत्न करते रहते हैं। तो ये भी परम पदमें स्थित हैं। जो आरम्भ और परिग्रहसे विरक्त हैं, जिनका ज्ञान निरन्तर ज्ञानस्वभावके ध्यानमें ही लगा रहता है वह आत्मा उत्कृष्ट ही तो है, और ऐसी स्थिति जिसने बनायी है वह उत्कृष्ट पदमें स्थित रहता है। विषयोंकी आशा रंच नहीं, विषयोंसे विरक्त हैं। किसी प्रकारका आरम्भ परिग्रह नहीं, केवल यही जिसका पौरुष है कि वे सम्यग्ज्ञानमें रहें, ध्यानमें रहें, तपश्चरणमें रहें, ऐसी जिनकी भावना और वृत्ति हो गई है वह आत्मा पवित्र है। और वह उत्कृष्ट पदमें स्थित है, और यह भगवान तो अरहंत हैं, सो यह तो उत्कृष्ट पदमें स्थित हैं ही, सो हे प्रभु आपने इस समस्त लोकमें उत्तम जो परमेष्ठीका पद है उस पदरूप आप हुए। जिनका ज्ञान क्रियाका तेज अद्भुत है, ज्ञानका स्वभाव निरन्तर जाननेका है। जहाँ जाननेमें बाधा देने वाले विषय कषायके भाव नहीं हैं, रागद्वेषकी प्रवृत्ति जहाँ नहीं रहती वहाँ ज्ञान परिपूर्ण प्रकट

होता है और ज्ञानके लिए यह कैद नहीं है कि सामने चीज हो तब जाननेमें आये। सत् हो वह जाननेमें आता है। यह तो ज्ञानकी कमजोरी है छद्मस्थ जीवोंमें कि जो क्षयोपशम योग्यताके अनुसार थोड़ा जान पाते हैं, पर जहाँ विषय कषाय का आवरण न रहे वहाँ ज्ञानका उत्कृष्ट वैभव प्रकट होता है कि जगतमें जो भी सत् है वह सब उनके ज्ञानमें आ जाता है, और इतना ही नहीं, जो पर्याय हुई, जो पर्याय होगी वह भी ज्ञानमें आती है। तो ऐसे आप अद्भुत ज्ञानक्रियाके तेज वाले हैं, प्रभु आप अनन्तधाम हैं, ऐसा स्थान पाया कि जिसका कभी अन्त न होगा। सब जीव अपने-अपने स्वरूपमें रहते हैं। यह तो एक उपचारका कथन है कि मैं इस गाँवमें रहता हूं, मैं इस देशमें रहता हूं, मैं इस शरीरमें रहता हूं। वास्तवमें तो आत्मा अपने प्रदेशोंमें रहता है और प्रभुने तो अपने आपका धाम इतना उज्ज्वल बना लिया कि जहाँ आकुलताका काम नहीं है, ऐसे अनन्तधाम, अन्तरहित धाम जिनका हो ऐसे चन्द्र प्रभुको मैं वन्दन करता हूं।

श्री चन्द्रप्रभ देवकी अक्षरविश्वचक्षुष्कता—अक्षरविश्वचक्षुः याने केवलज्ञान जिनका अविनाशी है, केवलज्ञान सभी अविनाशी होते हैं अर्थात् केवलज्ञान हुए बाद केवलज्ञान केवलज्ञानको ही धारा चलती रहती है। सारे लोकको देख सकने वाले ज्ञानका नाम है विश्वचक्षुः। तो ऐसा अक्षर है विश्वचक्षु

Version 1

जिसका, ऐसे ये चन्द्रप्रभुदेव हैं। जिनका शासन सर्व प्रकारके दुःखोंको नाश करा देने वाला है। जो प्रभुके बताये हुए शासन पर चलेगा उसके सारे क्लेश नियमसे नष्ट हो जायेंगे। प्रभुका शासन है सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र। सत्य विश्वास करे, सत्य जाने और सत्यमें रम जावे। मेरा सत्य क्या? मैं याने परकी अपेक्षासे रहित जो मेरा स्वरूप है वह मेरा सत्य है, जो अपने आप है, स्वरूपरूप है, अविनाशी है वह मेरा सत्य है। उस सत्यका विश्वास हो, मैं यह हूं। आत्मोद्धारका बहुत बड़ा महत्त्व है। एक शरीरका ही पोषण किया, ममता किया तो उससे क्या पूरा पड़ता है? या कुटुम्बजनकी, परिवार जनकी ममता की, पोषण किया तो उससे इस आत्मा का क्या पूरा पड़ता है? करता भी कोई नहीं। वैसे सबके अपने अपने भाग्य हैं। भाग्यानुसार वैसी ही सबकी प्रवृत्तियाँ हो जाती हैं। तो यह मैं सबसे निराला, किसीका कुछ न कर सकने वाला, केवल अपने आपमें ही ज्ञानकी कलाको करने वाला हूं, इस प्रकारका विश्वास होना सम्यग्दर्शन है, और इस ही रूपमें ऐसे ही स्वभावको देखते रहनेका, जानते रहने का काम सो सम्यग्ज्ञान है और ज्ञाता द्रष्टा ही बना रहना, रागद्वेषका कोई विकल्प न उपजने देना यह है सम्यक्चारित्र। तो रत्नत्रयरूप जो प्रभुका शासन है वह समस्त दुःखोंको क्षय करनेमें समर्थ है, ऐसे ये चन्द्रप्रभु देव बड़े-बड़े पुरुषोंके द्वारा

वंदनीय हैं।

स चन्द्रमा भव्यकुमुद्वतीनां विपन्नदोषाभ्रकलङ्कलेपः।
व्याकोशवाङ्न्यायमयूखमालः पूयात् पवित्रो भगवान्मनो मे ॥४०॥

निष्कलङ्क श्री चन्द्रनाथकी पावनता—ये चन्द्रप्रभु देव भव्यरूप कमलिनियोंके लिए चन्द्रकी तरह हैं। जैसे चन्द्रमाके उदय होने पर कमलिनियाँ प्रफुल्लित हो जाती हैं ऐसे ही प्रभु के दर्शन होने पर प्रभुका मनसे सत्संग बनने पर भव्य जीव विकसित हो जाते हैं अर्थात् उनका ज्ञान विकासको प्राप्त होता है। जीवमें कला एक ही है—ज्ञान कला। उस ज्ञानको कहाँ लगा दें कि आनन्द होवे। उस ज्ञानको कहाँ लगायें कि दुःख हो जाय। उस ज्ञानको कहाँ लगायें कि सुख हो जाय। एक ज्ञानकलाकी बड़ी महत्ता है। मैं सबसे निराला हूं, ज्ञानमात्र हूं। मेरा कहीं कुछ है नहीं। मेरा सब कुछ मेरा स्वरूप ही है, ऐसे अहंकार आदिक छोड़कर जो इस निज ज्ञानस्वरूपमें चित्त देता है वह शान्ति प्राप्त करता है। तो ये प्रभु ऐसे भव्य जीवोंके ज्ञानको विकसित करनेमें आप एक अद्वितीय चन्द्रमा की तरह हैं, जहाँ दोषरूपी मेघोंका कोई कलंक नहीं है। जब चन्द्रमाका निरभ्र उदय होता है याने मेघघटा नहीं है, स्पष्ट उदय रहता है तो नीले-नीले आकाशमें कैसा गौर वर्ण एक चन्द्रमाकी निराली आभा झलकती है। आकाश नीला नहीं होता। आकाशके कोई रूप रंग नहीं होता। वह तो अमूर्त

पदार्थ है, पर आखिर अन्तमें कुछ नीलासा दिखता तो है सो क्यों ? एक तो ऐसा आँखों द्वारा देखनेकी पद्धति होगी कि जब कुछ न दिखनेको हो तो वहाँ एक नीलवर्ण जैसी बात दिखने लगे। दूसरी बात यह है कि इस मेरू पर्वतके ऊपर एक इन्द्रक विमान है प्रथम कल्पका और वह नील वर्णका विमान है सो यद्यपि यह विमान इतना दूर है और बहुत बड़े विस्तारका है जितना कि आजकलके लोग पृथ्वी समझ पाते हों उससे भी अधिक विस्तार वाला है तो बहुत दूर है, वह तो दिख ही नहीं सकता, मगर उसकी आभा समझिये एक आकाशमें ऊपर कुछ नीला नीलासा दिखने लगता है। आकाश में जैसे एक चन्द्रमा अपनी निराली आभा करता है ऐसे हे प्रभु आप निरभ्र, कोई कलक नही, कोई लेप नहीं, इस तरह होते हुए प्राप भव्य कमलिनियोंके ज्ञानको विकसित कर देते हैं। चन्द्रमामें तो किरणोंके समूह हैं, प्रभुमें क्या किरणसमूह हैं ? तो एक जो वचनतरंग है, वचनकला है वही प्रभुक लीला है। तो ऐसा एक निर्दोष किरणोंसे युक्त भगवान चन्द प्रभु मरे मनको पवित्र करें। ये प्रभु भी स्वयं पवित्र हैं, राग-द्वेष इच्छा मोह ये भाव जहाँ रहते है उसे अपवित्र कहते हैं। जहाँ ये भाव नहीं रहते उसे पवित्र कहते हैं। प्रभु स्वयं पवित्र हैं, वे मेरे मनको भी पवित्र करें।

अब पुष्पदन्त प्रभुकी स्तुति की जा रही है।

http://www.jainkosh.org

एकान्तदृष्टिप्रतिषेधिं तत्त्वं प्रमाणसिद्धं तदतत्स्वभावम्।
त्वया प्रणीतं सुविधे स्वधाम्ना नैतत्समासीढपदं त्वदन्यैः ।४१।

श्री पुष्पदन्त भगवान द्वारा प्रणीत प्रमाणसिद्ध शिवमार्ग-साधक शासनका आख्यान—हे प्रभो, प्रमाणसिद्ध तत्त्व तो आपने ही बताया है। अर्थात् जो सम्यग्ज्ञानसे सिद्ध हो ऐसा तत्त्व। वह क्या है प्रमाणसिद्ध तत्त्व ? एकान्त दृष्टिका निषेध करने वाला है और वह तत् अतत् स्वभाव वाला है। किसी भी पदार्थको लो घट घड़ेको कहते हैं। यह घट घटस्वभाव वाला है और यह अघट स्वभाव वाला नहीं है। जो है वह वही है, वह अन्य नहीं होता। एक तो इस तरह तिर्यक् एकांत है और घट पर्याय बदली और खपरियाँ बन गई तो बतलाओ खपरियां क्या वही चीज है या और चीज है ? तो द्रव्यदृष्टिसे उत्तर आयगा कि वही चीज है जो पहले था याने मिट्टी है। पर्यायदृष्टिसे उत्तर आयगा कि वह चीज न रही। वह तो घट था, अब तो खपरियाँ हो गई। तो वस्तु जो भी है वह नित्यानित्यात्मक है। जीव भी नित्यानित्यात्मक पुद्गल भी धर्म अधर्म आकाश काल भी नित्यानित्यात्मक है। हम आकाशके परिणमनको नहीं जान पाते, किन्तु युक्ति बता देती है कि यदि आकाश कोई वस्तु है तो उसमें अवस्थायें क्षण-क्षणमें होती ही रहती हैं। तो प्रत्येक पदार्थ नित्यानित्यात्मक है। वही तत्त्व प्रमाण प्रसिद्ध है, ऐसे हे प्रभु हे सुविधिनाथ भगवान

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आपने अपने तेजसे, अपने ज्ञानबलसे इन सब बातोंका उद्घाटन किया है।

स्याद्वाद शासनसे बहिर्मुख प्राणियोंको स्वपदकी अनुपलब्धि—स्याद्वाद पदसे, इस अमृतसे जो बाह्य हैं, आपसे जो अतिरिक्त एकान्तवादी हैं वे न चख सके, न पचा सके एकान्तदृष्टा, तो वस्तुके जो कुछ भी एक धर्म समझमें आये बस उसीका ही एकान्त किया और प्रभु आपने स्याद्वाद द्वारा वस्तुके हर पहलूसे वस्तुके धर्मको बताया। यद्यपि सभी दार्शनिकोंने जो कुछ प्रयत्न किया है वह अपना निर्विकल्प ध्यान बनानेकी गर्जसे किया है। इनकी समझमें आया कि जीवको ध्रुव नित्य अपरिणामी मानो इसमें विकार ही नहीं होता और ऐसा ही उसे देखते रहें तो उससे विकल्प और मोह उत्पन्न न होगा। यह सोचकर नित्य एकान्तवादी दार्शनिकोंने वस्तुको सर्वथा नित्य माना। तो क्या यह बात जैनधर्ममें नहीं है? द्रव्यदृष्टिसे है। जो भी पदार्थ है वह स्वभावदृष्टिसे अपरिणामी है। वहीका वही है, ऐसा द्रव्यार्थिकनयसे जैनसिद्धांतने माना है और यही बात अन्य दार्शनिकोंने मानी। ब्रह्मवादियोंने माना तो अब अन्तर क्या आया? अन्तर यह रहा कि द्रव्यदृष्टिसे ही तो नित्य है, पर जीवमें या किसी भी वस्तुमें कोई वर्तमान दशा न होवे तो वह वस्तु ही क्या? जिसमें किसी प्रकार अर्थक्रिया न हो, परिणमन न हो, काम न हो

वह वस्तु क्या? वह तो एक कल्पनामात्र चीज रही। तो अज्ञान रखते हुए नित्यपना दिखे वह लाभदायक न बनेगा, और अज्ञान न रखकर यही बात स्याद्वादियोंने भी देखी। जब निर्विकल्प ध्यान करनेके लिए पौरुषका निश्चय कर लेते हैं और पुरुषार्थमें चलते हैं तो वह स्वभाव दृष्टिकी मुख्यता करके नित्य अनादि अनन्त अहेतुक ऐसा स्वभाव देखा करते हैं। तो जो सब पहलुवोंसे वस्तुका निर्णय कर लेता है वह एक धर्मका आश्रय करके सफल हो जाता है और जो हर पहलुवोंसे वस्तुका निर्णय नहीं करते वे किसी एक धर्मका एकान्त करके समाधानरूप नहीं बन पाते। तो हे प्रभु, प्रमाणसिद्ध जो तत्त्व है वह आपने बताया, पर उस तत्त्वको आपसे भिन्न जो अन्य दार्शनिक हैं उन लोगोंने इस पदका स्वाद नहीं पाया।

तदेव च स्यान्न तदेव च स्यात्तथा प्रतीतेस्तव तत्कथञ्चित्।
नात्यन्तमन्यत्वमनन्यता च विधेर्निषेधस्य च शून्यदोषात्॥४२॥

वस्तुकी तदतद्रूपता—वस्तुके बारेमें यह प्रश्न हुआ कि यह वस्तु वही है या और है, जो पहले था वही है या अन्य है? तो इसका उत्तर कथञ्चित्के रूपमें आयगा। कथञ्चित् वही है जो पहले था। कथञ्चित् वह न रहे जो पहले था। द्रव्यदृष्टिसे देखकर उत्तर दिया तो उत्तर आया—यह वही है। पर्यायदृष्टिसे उत्तर दिया तो यह वह न रहा, यह दूसरा है। तो इस सम्बंधमें दो बातें समझनी हैं कि न तो अत्यन्त

Report any errors at vikasnd@gmail.com

भिन्नता है और न अत्यंत भेद है। एक पर्यायसे दूसरी पर्याय होने पर भी अत्यन्त भेद नहीं है। जैसे घट मिटकर खपरियां बन गईं तो उन दोनों अवस्थाओंमें अत्यन्त भेद नहीं है। मिट्टीका ही तब परिणमन था, मिट्टीका ही अब है, मिट्टीरूप है और न अत्यन्त अभेद है कि वह एक ही हो गया। अवस्थाभेदसे उनमें भेद है। अगर एक वस्तुमें और उसकी सब पर्यायोंमें अत्यन्त भेद माना जाय तो विधि न बनेगी। अत्यंत भिन्न माना जाय, अत्यन्त अभेद माना जाय तो निषेध न बनेगा। इस तरह वस्तु तद्तदात्मक है। वही है और वह नहीं है। जैसे यहाँ किसी मनुष्यको देखिये—एक बालक था, वह जवान हो गया तो बतलावो यह वही है या यह दूसरा हो गया ? भाई मनुष्य वही है इसलिए यह वही है यह उत्तर आयगा, किन्तु अवस्था जुदी हो गई इसलिए यह भी न रहा, यह दूसरा हो गया। और व्यवहार भी भिन्न-भिन्न बनता है उससे। बचपनमें जैसे कूदता था वैसा जवानीमें कोई कूदकर तो बताये। अगर यही है तो कूद तो नहीं सकता, उसकी चाल दूसरी है। बच्चेको कई बातोंका परहेज नहीं होता, पर जवानको परहेज होता। तो उनमें कार्य भी जुदा-जुदा हो गया। इससे सिद्ध होता कि यह भी न रहा। ऐसा ही जीवके बारेमें लगायें। यद्यपि मनुष्यका उदाहरण कोई नहीं। उदाहरण रहा कि मनुष्य द्रव्य नहीं, फिर भी बहुत काल तक

http://www.jainkosh.org

रहने वाली पर्यायको द्रव्यके दृष्टान्तमें लिया है और उससे यहाँ घटाया जीव कैसी ही पर्यायोंमें जान रहे, वह वही है, दूसरा पदार्थ नहीं है, किन्तु कोई पहले पशु था, गाय भैंस आदि था, आज मनुष्यपर्यायमें आया तो बतलावो यह वही है या दूसरा है ? अब वह दूसरा हो गया पर्यायदृष्टिसे। अगर वही है तो यह भिन्नता क्यों आयी ? विचार जुदे। अब यह मनुष्य घासकी ओर देखता भी नहीं, तो जुदा हो गया। इस तरहसे पदार्थ वही है और वह नहीं है ऐसी प्रतीति होती है। और कथञ्चित् ऐसे दोनों विरुद्ध धर्मोंका एक पदार्थमें समावेश है, यह रहस्य प्रभु आपने ही बताया।

वस्तुकी तदतद्रूपता व नित्यानित्यात्मकताके परिचयसे लाभ—अब यहाँ यह परखें कि हम पदार्थको स्याद्वादकी विधिसे नित्यानित्यात्मक समझकर क्या फायदा उठाते हैं ? फायदा यह है कि वस्तु हम भी हैं, हम भी नित्यानित्यात्मक हैं। कोई कहे कि जैसा चाहे खायें, पियें, रहें, मौज करें, मर गए फिर क्या है ? तो नित्यका परिचय यह कहता है कि ऐसा मत सोचो। तुम रहोगे, आगे भी रहोगे। जो वस्तु है उसका समूल नाश कभी हो ही नहीं सकता। और कोई सोचे कि हमारा उद्धार कहाँ धरा ? ये तो बड़े-बड़े मुनियों की बातें हैं, हम तो पापी हैं, हम तो तिर ही नहीं सकते इस लिए अधिक बढ़कर बात क्या सोचना ? धर्मसे भी फायदा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

क्या है ? हम तो ऐसे ही रहेंगे। तो यह अनित्यपनेकी दृष्टि उसे सावधान करती है कि ऐसा मत सोचो। आज पतित हैं तो यह अवस्था मिटकर पावन अवस्था बन सकती है, आज शक्तिहीन हैं, ज्ञानबलहीन हैं तो यह दशा मिटकर एक ज्ञान-बलकी दशा आ सकती है। तो वस्तुको नित्यानित्यात्मक समझकर हम उससे आत्मोद्धारका लाभ उठायें।

नित्य तदेवेदमिति प्रतीतेन नित्यमन्यत्प्रतिपत्तिसिद्धेः।
तद्विरुद्धबहिरन्तरङ्गनिमित्तनैमित्तिकयोगतस्ते ॥४३॥

वस्तुमें नित्यत्व व अनित्यत्वका अविरोध—पदार्थ नित्य है यह बात प्रतीतिसे सिद्ध है। किसी भी जीवको देखकर जिससे परिचय है हम वैसा ही व्यवहार करते हैं जैसा उस एकसे करना चाहिए। आज हम किसी मित्रको साथीको देखकर ऐसा तो कभी नहीं सोचते कि यह कौन है, कहांसे आया ? क्या है ? वही है जैसा सोचते थे। तो इससे सिद्ध होता है कि नित्य है, अगर पदार्थ नित्य न होता तो यह व्यवहार चल न सकता था। तो प्रतीति बतलाती है कि पदार्थ नित्य है और वही पदार्थ अनित्य है, यह भी प्रतीति बतलाती है। तो पदार्थ अनित्य है, वह न रहा, यह बात अंतरंग बहिरंग निमित्तनैमित्तिक योग भावसे सिद्ध है। ऐसा हे प्रभु तुम्हारे ही सिद्धांतमें तो बताया गया है। वस्तुका सही परिचय करना आत्मीय आनन्द स्थायी शुद्ध आनन्दके लाभके लिए बहुत

आवश्यक है। आत्माका कल्याण है मोह रागद्वेष मिटनेमें। केवलज्ञान होना तो फल है वीतरागताका। केवलज्ञान अगर न भी हो, यद्यपि यह बात नहीं है, होता ही है, पर एक अपने आपकी संभावना सत्यमें लो कि केवलज्ञान मुझको उत्पन्न हो, वीतरागता बने तो टोटा क्या पड़ता है ? पर वीतराग होनेका फल ही ऐसा है कि एक ज्ञान होगा, सर्वज्ञ बनेगा, पर उस सर्वज्ञतासे आनन्द नहीं मिला, आनन्द मिला वीतरागतासे। रागद्वेष न रहा तो सारे संकट मिट गए। तो आत्म-कल्याण है मोह रागद्वेषको दूर करनेमें। अब वह उपाय सोचिये—कौनसा उपाय है जिससे मोह रागद्वेष दूर हो ? उपाय सभी दार्शनिकोंने बताया है। एक दार्शनिकने यह बताया कि पदार्थ दूसरे क्षण रहता ही नहीं। जीव भी दूसरे समय नहीं रहता। हुआ और खतम। संसारके सारे पदार्थ भी हुए और खतम। जब कोई दूसरे क्षण भी नहीं रहता, कोई पदार्थ स्थिर ही नहीं हैं तो मोह किसमें किया जाय, रागद्वेष किसमें किया जाय ? यह उपाय बताया एक दार्शनिकने। तो एक दार्शनिकने यह उपाय निकाला कि वस्तु तो ठस नहीं, अपरिणामी है। उसमें कोई परिणमन ही नहीं होता। बोल-चाल क्या, व्यवहार क्या ? यह तो सब सम्मती है। कल्पना है। यह सब कुछ नहीं है, ऐसा जानकर अब मोह करे कौन ? यह उपाय निकाला। लेकिन ये दो भिन्न उपाय

Report any errors at vikasnd@gmail.com

कैसे बन जायेंगे और वस्तुके ये दो भिन्न स्वरूप कैसे हो जायेंगे और वस्तुके ये दो भिन्न स्वरूप कैसे हो जायेंगे ? वहाँ सम्वाद निर्णय देता है अथवा ऐकान्तिक दार्शनिकोंका संघर्ष देता है अथवा ऐकान्तिक दार्शनिकोंका संघर्ष मिटता है कि भाई वस्तु द्रव्यदृष्टिसे तो नित्य है और पर्यायदृष्टिसे क्षणस्थायी है।

अनित्य भावनामें भी नित्यत्वके दर्शनकी अपेक्षा—देखो अनित्य भावना क्या है ? अनित्य भावना इसका नाम नहीं है कि वस्तुको ऐसा अनित्य देखें कि दूसरे क्षण कोई वस्तु ही नहीं रहता। एक क्षणको हुई दूसरे क्षणमें अभाव। अनित्य भावनाका यह अभिप्राय नहीं है, अनित्य भावनाका अभिप्राय है कि वस्तु द्रव्यदृष्टिमें तो नित्य है, पर द्रव्यदृष्टिसे जो स्वभाव है उस स्वभावसे कोई व्यवहार नहीं करता है। व्यवहार हुआ करता है पर्यायोंसे। और ये पर्यायें अनित्य हैं इसलिए व्यवहार मत करें इनसे, रागद्वेष मत करें। तो अनित्य भावनामें भी जैसे अनित्यको ढूंढ़ा ऐसे ही नित्यको भी ढूंढ़ना चाहिए, अन्यथा केवल अनित्य अनित्य ही ढूंढ़े और नित्यकी बात न सोचे तो अनित्य भावना भाकर तो वह घबड़ा जायगा। जब कोई कहेगा—"राजा राणा छत्रपति, हाथिनके असवार। मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार॥" अरे सभी मरेंगे, मैं भी मरूँगा, तो ऐसा सोचकर उसने कौनसा धैर्य

http://www.jainkosh.org

प्राप्त किया ? अगर ऐसा एकान्त मान लिया और उसके साथ मैं नित्य हूं, इस बातकी ओर दृष्टि नहीं गई तो ऐसी भावना रखने वाले तो घबड़ाकर दुःखी ही रहेंगे। हम सब मरेंगे, मैं भी मरूँगा। अपने मरनेकी बात सोचकर कौन दुःखी नहीं होता ? कौन नहीं घबड़ाता ? तो अनित्य भावनाने कौनसा एक अतिशय पैदा किया ? अतिशय तब पैदा होगा कि जब उसके साथ यह समझें कि मैं नित्य हूं। मैं जो आत्मा पदार्थ हूँ वह कभी मिटता नहीं और ये जो पर्यायें हुई हैं ये मिट जाने वाली हैं, ऐसा जानकर तो धैर्य रहता है और जो अयोग्य बात है उनसे हटता है। तो वस्तुको नित्यानित्यात्मक मानने पर शान्तिका मार्ग निकलता है। और माननेकी बात क्या, वस्तु है ही इसी प्रकार। जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा मानने पर ही उससे मार्ग निकलता है, अन्यथा याने विपरीत माने तो वह कोई शान्तिका मार्ग नहीं निकाल सकता। तो हे सुविधनाथ प्रभु, वस्तु वह ही है, वस्तु वह नहीं है ऐसा प्रत्येक पदार्थमें तत्त्व पाया जाता है, यह रहस्य आपने ही तो बताया।

अनेकमेकं पदस्य वाच्यं वृक्षा इति प्रत्ययवत्प्रकृत्या।
आकाङ्क्षिणः स्यादिति वैनिपातो गुणानपेक्षे नियमेऽपवादः ।४४।

वस्तुकी एकानेकात्मकताका दर्शन—कहते हैं कि एक पदका वाच्य अनेक भी है, एक भी है। कोईसा भी पद हो उसका वाच्य एक भी होता, अनेक भी होता। जैसे कि कोई

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

एक शब्द ले लीजिए । 'वृक्ष' शब्द लिया । शब्द एक है; अब उसमें प्रत्यय बहुवचनका लगे तो वह बहुत वृक्ष अर्थ बनेगा। एकवचनका प्रत्यय लगे तो एक वृक्ष अर्थ बनेगा । शब्द एक है, पद एक है । जैसे एक शब्द इंगलिशका लिया—बुक । तो इसका वाच्य एक है, इसमें बहुवचनका प्रत्यय लगा एस, तो हो गया—बुक्स, उसका अर्थ है बहुतसी पुस्तकें । तो जैसे प्रत्ययवान होनेसे प्रकृतिके अनेक वाच्य हो जाते हैं ऐसे ही पर्यायवान होनेसे पदार्थ अनेक कहलाते हैं, और मूलमें पदार्थ एक ही है । जैसे कि कोई शब्द और प्रकृति मूलमें एक ही है । अब यह मतावियोंकी बात है कि कौन किस तरहसे वस्तु को समझना चाहता है उसी प्रकारसे उसका अर्थ होता है । तो वस्तु एक है और अनेक है । जैसे वस्तु नित्य है और अनित्य है, यह है, अतत् है, इसी तरह लगावें कि वस्तु अनेक है और एक है । मूल प्रकृति, मूल वस्तुसे देखें तो एक है और उसमें अवस्थाओंका संसर्ग देखते हैं तो वह वस्तु अनेक है । हे प्रभो, ऐसा रहस्य आपने ही तो कहा । एक अनेक अनेक तरहसे देखे जाते हैं । जैसे प्रभुकी स्तुतिमें कहते हैं कि सिद्ध भगवान एक माहि एक राजे, एक माहि अनेकनो । एक अनेकनकी नहिं संख्या । भला ये तीन बातें कैसे बन गईं ? एक में एक ही रह रहा है, एक बात । एकमें अनेक रह रहे हैं दूसरी बात और तीसरी बात यह है कि न एक है, न अनेक

है । एक अनेककी वहां कोई संख्या नहीं है । क्या मतलब हुआ सिद्ध प्रभुकी स्तुतिमें ? जो ये तीन बातें कही जाती हैं उसका अर्थ यह है कि प्रत्येक सिद्ध जीव वह ही है और उसका स्वरूप वही है, उसके स्वरूपमें किसी दूसरे आत्माका स्वरूप नहीं जाता, क्योंकि प्रत्येक आत्मा सत् है । अपने आपका जीव रखता है, और एक माहि अनेकनो, कैसे कि जिस जगहमें एक सिद्ध भगवान विराजे हैं उस जगहमें अनेक सिद्ध भगवान हैं । एकमें एक समाये चले जाते हैं । जहां एक आत्मा है वहां अनेक पवित्र आत्मा हैं । और पवित्र आत्मा तो स्थिरतया हैं एकमें अनेक, मगर जहां सिद्ध हैं वहां अनेक निगोदिया जीव भी रह रहे हैं, पर उससे यहां कुछ तुलना नहीं करनी है । यह हो गया दूसरी बातका अर्थ । फिर कहते हैं कि एक अनेकनकी नहिं संख्या, एक अनेककी संख्या ही नहीं है याने जब सिद्धके स्वरूपमात्रको देखते हैं चैतन्यज्योतिमात्र । तो ऐसे स्वरूपका अनुभव करने वाले, स्वरूपका दर्शन करने वाले भव्य जीवोंके चित्तमें न एक संख्या है, न अनेक संख्या है । केवल एक स्वरूपका अनुभव है । वह स्वरूप जो वहां है सो यहां है । ऐसा एक ही पदार्थमें भी एक अनेकपना खोजना होता है । द्रव्यदृष्टिसे एक और उसमें पर्याय लगीं, प्रत्यय लगा, उस संसर्गसे देखें तो वह वस्तु अनेक होती है । इस प्रकार हे प्रभु वस्तुका वास्तविक रहस्य आपने ही तो बताया ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

गुण प्रधानार्थमिदं हि वाक्यं जिनस्य ते तद्द्विषतामपथ्यम् ।
ततोऽभिवन्द्यं जगदीश्वराणां ममापि साधोस्तव पादपद्मम् ।४५।

स्याद्वादविद्वेषियोंको प्रभुवचनकी अपथ्यरूपता—गौण भावसे और प्रधान भावसे किया हुआ यह सब रहस्य यह जिनेन्द्रदेवका वचन उनके लिए अपथ्य है, वे पथा नहीं सकते जो आपके सिद्धान्तसे द्वेष रखने वाले हैं याने एकान्तका आग्रह करने वाले हैं। पर्यायदृष्टिके वर्णनमें द्रव्य गौण हो जाता है, द्रव्यदृष्टिके वर्णनमें पर्याय गौण हो जाती है। जहाँ द्रव्य पर्याय ये दो तत्त्व ही न माने जाते हों वहाँ गौण मुख्य करनेकी कल्पना ही क्या हो सकती है ? तो एक अमृत पद पर पहुंचा देने वाला यह सम्यग्ज्ञान आपसे ही प्रकट हुआ। इसलिए हे लोकके ईश्वर आपके चरण कमल वंदनीक हैं और मेरे लिए भी आपके चरणकमल वंदनीक हैं। ऐसे प्रभुके तत्त्वोपदेशसे अपने आपके आत्मोद्धारका लाभ उठाना, इसके लिए स्तवन हो तो यह स्तुतिकी सार्थकता है।

न शीतलाश्चन्दनचन्द्ररश्मयो
न गांगमम्भो न च हारयष्टयः ।
यथा मुनेस्तेऽनघवाक्यरश्मयः
शमाम्बुगर्भाः शिशिरा विपश्चितां ॥४६॥

श्री शीतलनाथ भगवानकी अनघवाक्यरश्मियोंमें शीतलता—शीतलनाथ जिनेन्द्रकी स्तुतिमें कहते हैं कि हे प्रभु,

http://www.jainkosh.org

जिस प्रकार आपके निर्दोष वचनोंकी किरणें शान्ति पहुंचाती हैं, शीतल हैं, उस प्रकार न तो चंदन शीतल है, न चंद्रमाकी किरणें शीतल हैं, न गंगाका जल शीतल है और न मोतीहार भस्मियाँ शीतल हैं। जैसे कि हे प्रभु आपकी निर्दोष वाणीकी किरणें, जिनमें कि शांतिका जल बसा हुआ है, जो कि विद्वानों के लिए शान्ति पहुंचाते हैं वे वचन शीतल हैं। शीतल नाम है जो शीतको लावे। वैसे लोग कहने लगते हैं कि शीत और शीतल एक ही चीज है। ठंडको ही शीत कहते और ठंडको ही शीतल कहते, पर शीत और शीतलमें अन्तर है। शीत मायने ठंड और शीतलके मायने जो ठंडको लावे। तो आपके वचन किरणें ये शीतल हैं, शीतको लाती हैं, शान्ति उत्पन्न करती है। इस प्रकारका शीतल चंदन नहीं है। लोकमें प्रसिद्ध है कि चंदन शीतल होता है, लोग माथेमें लगाते हैं, दवाओंमें लेते हैं, पर कोई मनुष्य यदि व्यग्र है, किसी चिन्ताकी घबड़ाहटमें है। भीतरमें बहुत बेचैनी है. मानसिक संक्लेश है तो क्या चंदन उसका कुछ इलाज कर सकेगा ? उससे कोई शीतलता नहीं आती, पर ज्ञान और वैराग्ययुक्त वचन सुने तो कैसे ही दुःखमें डूबा हो, कैसा ही वह विवादग्रस्त हो, उसको शांति मिल सकती है। तो सम्यग्ज्ञान और वैराग्यमयी वाणी ही वास्तवमें शीतल होती है। और कुछ शीतल पदार्थ ये कुछ शीतल नहीं हैं। हैं शीतल, ठंडे हैं मगर मनुष्योंके लिए,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

संसारी प्राणियोंके लिए जो कि मानसिक व्यथासे पीड़ित हैं उनको शीतल नहीं कर सकते। इसी प्रकार चंद्रकी किरणें शीतल मानी गई हैं। गर्मीके दिनोंमें शुक्लपक्षकी रात हो तो लोग वहाँ कुछ शीतलताका अनुभव करते हैं, लेकिन जो अज्ञानी मोही जन हैं, जो संयोग वियोगसे पीड़ित हैं, जो तृष्णा आशासे निरन्तर घबड़ाहट रख रहे हैं उनको चन्द्ररश्मियाँ क्या शीतल कर सकती हैं? उनको शान्ति पहुंचानेमें समर्थ तो प्रभुका उपदेश है। इसी प्रकार गंगाजल। चूँकि बर्फ वाले पर्वतोंसे निकलकर नदी चलती है तो इसका जल ठंडा माना जाता है, पर यह भी शीतल नहीं है। संसारी दुःखी प्राणियों के लिए शीतल तो प्रभुवाणी ही है। यहाँ शब्द दिया है शांति रूपी जल जिसके भीतर पड़ा है ऐसा यह शिशिर है। आजकल इसे कहते हैं कोल्डस्टोर, मायने वहाँ भी पानी ठंडा करते हैं, पानी रहता है और पानी ही वहाँ फिकता रहता है, इसलिए ठंडा रहता है। तो यहाँ प्रभुकी वाणीमें पानीकी जगह है कषायोंका वमन करने वाली शिक्षा। उससे ये वचन अत्यंत शीतल होते हैं। ऐसे हे शीतलनाथ भगवान आपकी शीतल वाणी हम सबके संतापको दूर करे।

सुखाभिलाषानलदाहमूर्च्छितं
मनो निजं ज्ञानमयामृताम्बुभिः।

विदिध्यपरत्वं विषदाहमोहितं यथा
भिषनुमन्त्र गुणैं स्वविग्रहं ॥४७॥

सुखाभिलाषमूर्च्छित मनको सम्हाल करानेमें प्रभुकी अनुपम भिषग्रूपता—सुखकी इच्छा, वही है एक ज्वाला, आग। ऐसे ही एक अग्नि है, उस अग्निकी दाहसे मूर्छित हुआ यह मन ज्ञानमयी अमृतजलसे शान्त किया जाता है, होशमें लाया जाता है। जैसे कि विष खाकर विषकी दाहसे मोहित हुआ मन औषधियोंसे वा मंत्रके गुणोंसे उस मोहित शरीरको होशमें लाया जाता है, ये संसारके प्राणी सुखकी अभिलाषासे मूर्छित पड़े हुए हैं। एक ही धुन है कि इन्द्रियजन्य सुख मिले, मानसिक सुख मिले, तो उस सुखकी आशारूपी अग्निसे उनका मन मूर्छित हो गया है। जैसे बेहोश पुरुषको अपनी कुछ सुध बुध नहीं रहती ऐसे ही सुखकी आशामें लगे हुए प्राणियोंको आत्माकी सुध नहीं रहती। उससे मूर्छित हुआ यह मन एक ज्ञानजलसे ही होशमें आ सकता है। यहाँ भी कोई मूर्छित होता है तो उस पर कुछ जलके छींटे डाले जाते हैं इसलिए कि वह होशमें आ जाय। तो यहाँ भी सुखकी आशासे, अग्निकी दाहसे जो मूर्छित है उसके कौनसे छींटे डालने चाहिएँ? वे ज्ञानमयी अमृतके जलके छींटे। उन अमृत बिन्दुओंसे यह मूर्छित मन होशमें आ जाता है। एक जीवका ज्ञान ही कारण है। एक ज्ञानका साथ न रहे तो यह जीव संक्लेश करके अनंत

Report any errors at vikasnd@gmail.com

संसारका ही बंध करता है। इसको मार्ग दिखाता है तो ज्ञान। मगर अधीर हो गया है, इसमें कुछ घबड़ाहट आ गई है, चिंता हो गई है। शोक रंज हो गया है तो जहां सबसे निराले ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वकी सुध ली कि मैं सो यह हूं अमूर्त, जिसका किसीसे सम्बंध हो नहीं। मैं तो यह हूं ज्ञानमात्र, जो किसीमें कुछ करता ही नहीं, जिसको कोई बांध सकता ही नहीं, ऐसा सबमें निराला ज्ञानमात्र मैं अंतस्तत्त्व हूं। ऐसा जब ज्ञान जगता है तो सारे संकट उपद्रव, घबड़ाहट सब एक साथ शान्त हो जाते हैं। अब सुखकी आशाकी दाहसे मूर्छित जनोंको होशमें ला सकने वाली प्रभुकी ज्ञानमयी अमृत वाणी ही है, सो हे प्रभु आपने इस मूर्छित मनको होशमें लाया। इस मूर्छित जगतको एक सन्मार्गमें आप लाये, ऐसे शीतलनाथ भगवान सबको सन्मार्ग प्रदान करें।

स्वजीविते कामसुखे च तृष्णया
दिवा श्रमार्ता निशि शेरते प्रजाः।
त्वमार्थ नक्तं दिवमप्रमत्तवान
जागरेवात्मविशुद्धवर्त्मनि ॥४८॥

प्रभुके निरन्तर आत्मरमणका संस्तवन—ये संसारके जीव क्या कर रहे हैं? समयके दो विभाग हैं—दिन और रात। तो दिनमें क्या काम करते हैं? सभी मनुष्य अपनी जिन्दगी और वैषयिक सुखोंमें तृष्णा कर करके सारे दिन थक जाते हैं। दिनमें तो थकानका काम करते हैं और रातमें सोने का काम करते हैं। तब फिर इनका कोई क्या ठीक? लेकिन हे प्रभु आप तो रात-दिन प्रमादरहित हैं और अपने ही आत्मा में, इस शुद्ध मार्गमें निरन्तर जागरूक रहते हैं। सबसे कठिन श्रम जिसमें यह जीव थक जाता है वह है सुख और जीवनकी तृष्णा बनाये रहना। मेरा जीवन बना रहे, मैं मर न जाऊं। उसकी कल्पना आती है तो यह सारा शरीर ढीला पड़ जाता है दुःखके मारे। और यह सब दुःख और श्रम क्यों लगा है कि इस जीवने परपदार्थोंमें कुछ अपना ममत्व किया है इस-लिए मरणका डर है। अगर परपदार्थोंमें ममत्व नहीं है तो मरणका भय हो ही नहीं सकता, क्योंकि जिसको परपदार्थोंमें ममत्व नहीं उसकी दृष्टि अपने आत्मस्वरूपमें ही रहती है कि यह मैं हूं। तो यह तो कभी मरता ही नहीं। जैसे कोई पुरुष पुरानी झोंपड़ीको छोड़कर नये मकानमें पहुंचता है तो वह क्या रंज करता हुआ पहुंचता है? उसको कोई कष्ट नहीं होता। वह तो खुशियां मनाता हुआ पहुंचता है। तो ऐसे ही यह देहसे निराला चैतन्य आत्मा एक इस वृद्ध जीर्ण-शीर्ण शरीरको छोड़कर यह जायगा तो इसमें दुःखकी कौनसी बात है? यह मैं हूं, पूराका पूरा यहांसे जायगा। जो मेरा है वह छूटता नहीं, जो मेरा नहीं वह छूटेगा क्या? अब भी छूटा है। तो जिसको अपने आत्मस्वरूपमें दृष्टि है उसको ही माना

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कि यह मैं हूं, उसको मरणका भय नहीं है। तो आत्मश्रद्धा जिनके नहीं उनको मरणका भय सताता रहता है। तो अपने जीवनमें तृष्णा करके एक श्रम ही बनता है, उससे ही पीड़ित हो जाता है इसी प्रकार काम सुखमें, इन्द्रियजन्य सुखोंमें तृष्णा बढ़ाता है, उसके साधनकी तृष्णा, उसके भोगकी तृष्णा, उस तृष्णाके द्वारा इतना श्रमसे पीड़ित हो जाता है कि सारे दिन की थकान जब हो जाती है तो रात्रिमें ये प्रजा जन सोया करते हैं। दिनमें श्रमसे थकना, रातमें सोना, सोनेमें भी भलाई नहीं और तृष्णाकी थकानमें भी भलाई नहीं। तो भलाईका समय इसने कौनसा लिया ? तो ये सब प्रजा जन इसी तरह रात दिन बरबाद करते हैं, पर हे शीतलनाथ प्रभु आप रात दिन प्रमादसे रहित हैं और शुद्ध मार्ग वाले आत्मतत्त्वमें आप निरन्तर जागरूक रहते हैं।

अपत्यवित्तोत्तरलोकतृष्णया तपस्विनः केचनकर्म कुर्वते।
भवान्पुनर्जन्मजराजिहासया त्रयीं प्रवृत्तिं शमधीरवारुणत् ।४९।

प्रभुकी निर्दोषताका संस्तवन—कोई कोई तपस्वी लोग पुत्र धन या परभवकी तृष्णासे क्रिया करते हैं, चेष्टा करते हैं। जो भी उन्होंने चरित्र समझा, तपश्चरण समझा उसे करते हैं, लेकिन प्रभु आपने क्या किया ? जन्म जराको दूर करनेकी इच्छासे याने जन्म मरणसे रहित होनेके प्रोग्रामसे आपने मन, वचन, काय इन तीनोंकी प्रवृत्तिको शान्त बुद्धि होकर रोका,

जो जन पुत्र धन आदिककी तृष्णासे क्रिया करते हैं वे न इस भवमें ही कुछ पाते हैं, यहाँ भी कष्ट ही कर रहे और न आगे भी कुछ पायेंगे। जब तक अज्ञान है तब तक जीवको शान्ति का मार्ग नहीं मिलता। शान्त किसे होना है, उसका ही पता नहीं है। देहको माना कि यह मैं हूँ, इसे सुखी करना है। तो जहाँ मूलमें ही गल्ती है वहाँ सही उपाय कैसे बन सकता है ? पर प्रभु आपने जन्म जरा मरण रहित आत्माके स्वरूपको जाना, उसमें ही यह मैं हूं, ऐसा अनुभव किया, तो इन बाहरी व्यथाओं, उपद्रवोंको दूर करनेकी इच्छासे क्या किया ? तीन गुप्तियाँ धारण की। मन, वचन, कायके परिस्पन्दसे यह सब संसार चलता है और इन तीनों योगोंका निरोध ज्ञानबलसे ही होता है, तो दुःखका जो मार्ग है उस मार्गको शान्तबुद्धि होकर अपने मन वचन कायकी प्रवृत्तिको रोका। ऐसा गुणानुवाद करते समय स्तवन करने वाला पुरुष शिक्षा लेता रहता है कि मेरेको भी शान्ति चाहिए तो यह ही उपाय करना होगा जैसा कि प्रभुने किया।

त्वमुत्तमज्योतिरजः क्व निर्वृतः क्व ते परे बुद्धिलवोद्धवक्षताः।
ततः स्वनिःश्रेयसभावनापरैर्बुधप्रवेर्वेजिनशीतलेड्यसे ॥५०॥

स्वनिश्रेयसभावकों द्वारा प्रभुकी पूजितता—हे प्रभो, तुम उत्तम ज्ञान वाले हो, जन्मरहित हो। कहाँ तो आपका ऐसा उत्तम पवित्र ज्ञानमय स्वरूप और कहाँ भूले भटके अन्य तप-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

स्वी जन आपके मार्गसे विमुख पुरुष थोड़ीसी बुद्धि पायें तो उसके ही घमंडसे बरबाद हो रहे हैं। एक जिज्ञासा होती है कि मेरे पूजने योग्य कौन है, उसका समाधान इस छंदमें है। जो पवित्र हो, जो कल्याणको प्राप्त हुआ हो ऐसा परम पवित्र आत्मा ही पूज्य है और उसके ही गुणोंके अनुवादमें अपनेको शान्तिका मार्ग मिलता है। तो कहाँ तो एक निर्वाण पाने वाले, पवित्र ज्योति वाले, जन्मरहित शीतलनाथ भगवान जिनेन्द्रदेव और कहाँ थोड़ीसी बुद्धि पाकर गर्वसे अपनेको बरबाद करने वाले कुदेव, कुगुरु। उनका जो अन्तर पहिचानते हैं ऐसे पुरुष जो अपने कल्याणकी भावनामें लगे हैं, उन पुरुषोंके द्वारा हे शीतलनाथ देव आप ही पूजे जाने योग्य हो। जो कल्याण चाहने वाले हैं वे ढूंढ़ते हैं कि मेरे लिए कौन अनुकरणीय है ? तो उनके लिए प्रभु आप ही अनुकरणीय हैं, क्योंकि आप पवित्र हैं, जन्मरहित हैं, निर्वाण पाने योग्य हैं। और यही चाहिए कल्याण चाहने वाले पुरुषोंके द्वारा हे शीतलनाथ प्रभु आप ही पूजे जाते हैं।

श्रेयान् जिनः श्रेयसि वर्त्मनीमाः श्रेयः प्रजाः शासदजेयवाक्यः।
भवांश्चकासे भुवनत्रयेऽस्मिन्ने को यथा वीतघनो विवस्वान् ॥५१॥

श्रेयांस प्रभुकी श्रेयःशासकता—श्रेयांसनाथ भगवानकी स्तुतिमें समन्तभद्राचार्य कहते हैं कि हे प्रभु श्रेयांस जिनेन्द्र आपने ही तो इस प्रजाको श्रेयस्कर मार्गमें शासित किया है।

http://www.jainkosh.org

श्रेयस्कर मार्ग क्या है आत्माको जिसमें शान्ति मिले ? आत्माको निराकुलता मिले बस वही श्रेय है, और उसका जो उपाय है सो श्रेयोमार्ग है। लोकमें कितने प्रकारकी जीव जातियाँ हैं ? कहाँ कहाँ यह जीव भ्रमण नहीं कर आया ? निगोदमें, तिर्यंचोंमें, एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चारइन्द्रिय, पशु-पक्षी और और अनेक प्रकारके कुमानसोंमें, कुदेवोंमें भ्रमण कर आये, जन्म लिया, नाना राग-रंग किया। कितना काल व्यतीत हो गया ? अनन्त काल। कालका अन्त ही नहीं। इतना अनन्तकाल इस दुःखमें और भ्रम जालमें घूम-घूमकर आज यह मनुष्य जीवनमें आया है तो इसकी इस समय दो त्रुटियाँ हो रही हैं, एक तो यह कि जो श्रेयका मार्ग है, शांतिका मार्ग है उससे तो उपेक्षा है, उसे तो फाल्तू काम समझते हैं। जो मनमें आया सो किया। धर्मका काम, जिनवाणी सुननेका काम, जिनवाणीके अवधारणका काम, मन हुआ सुन लिया, समय फाल्तू हुआ बैठ गए, और पंचेन्द्रियके विषयोंके साधन अथवा मन बहलावाके अनेक प्रसंग इनको महत्त्व दिया तो इन उपायोसे यह जीवन व्यर्थ ही तो जाता है। जो जीवन गुजरा वह जीवन पुनः वापिस नहीं आता। कितने ही उपाय कर लें, जो उम्र गई वह क्या वापिस आयगी ? कोई सोचे कि हमने बड़ी गल्तियाँ कीं, बचपनसे ही अच्छा करता, अच्छे विचार रहते, धर्मपालनमें रहते तो मेरा कितना भला था ?

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अब मेरी वही उम्र बन जाय तो मैं गल्ती न करूँगा, तो वह उम्र वापिस आ सकती है क्या ? नहीं आ सकती। तो जो सही उम्र है उसे इस तरह बितायें कि धर्मके कार्यको मुख्य मानें। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप धर्मको तो मुख्य मानें और बाकी बातें ये करनी पड़ती हैं, गृहस्थीमें रहते हैं, विवशता है इसलिए करते हैं, इस तरह जानकर उसे करे तो इस जीवको भलाईका रास्ता मिलेगा अन्यथा इस भवके बाद पता नहीं कौनसा भव मिले ? फिर क्या किया जायगा। आज मनुष्य हैं, अच्छा मन है, अच्छी बातें करते हैं। दूसरों की सुनते हैं, अपनी बोलते हैं और मनुष्यके बाद मानो कीड़ा मकोड़ा बन गए तब फिर इसका क्या वश चलेगा ? आज तो मद है, गर्व है और इसके बाद जब कुयोनियोंमें उत्पन्न हो गए तब यह कहां मद टिक सकेगा ? इससे यह जीवन बड़ी जिम्मेदारीका जीवन है। इसमें कोई अपनी जिम्मेदारी न निभाये तो यह उसकी बहुत बड़ी भूल है।

अपने हितके लिये अपना उत्तरदायित्व—जिम्मेदारी है— धर्मके कामको मुख्यता देना और इन्द्रियविषयोंकी विवशता समझें। तो ये दो काम बड़े ध्यानमें हैं कि अन्य बातोंको तो विवश होकर किया जाता है ऐसा मानना और धर्मके कामों को इसे खुशी खुशी बड़ी प्रसन्नतासे, अपने हितके प्रयोजनसे करना चाहिए ऐसा अपना निर्णय रखना। तो प्रभु श्रेयांस

जिनेन्द्रने प्रजाको इस शान्तिका उपदेश दिया सो ठीक ही है। वह अजेय वाक्य है। जिसका वचन अजेय है, जिसका कोई खण्डन नहीं कर सकता, क्योंकि उन्होंने स्वयं अनुभव किया और जो शान्तिका पथ है उस पथ पर वे चले, अनुभव किया मैं आत्मा हूं, अपने आप अपनी सत्ता रखता हूं, मेरेमें मैं ही रहता हूं। मुझमें किसी दूसरेका प्रवेश नहीं, किसी दूसरेका मुझ पर अधिकार नहीं। कभी किसी परिस्थितिवश कोई किसीके आधीन बन रहा है तो वह इसे अपने आधीन नहीं कर रहा, किन्तु आधीन बनने वाला जीव खुद ही अपना कुछ मतलब समझता है, प्रयोजन समझता है, सो अपने गुणोंसे दूसरेके आधीन बन रहा है अपनी ही कल्पनासे और कोई जीव किसी दूसरेको आधीन बनाता हो ऐसी बात कभी भी सम्भव नहीं। वह तो आधीन बनने वालेका विकल्प है। मुझे ऐसा ही इसका काम करना, इसकी बात मानना, इसके हुक्म में रहना, इसमें ही मेरा भला है। खुद सोचते हैं इसलिए वे दूसरेके आधीन बनते हैं, परन्तु वस्तुस्वरूप यह कहता है कि किसी जीवका किसी दूसरे पदार्थपर कोई अधिकार नहीं है, क्योंकि प्रत्येक पदार्थ स्वतन्त्र है, अपने आपकी सत्ता लिए हुए है, अपना ही काम करेंगे। कोई किसी दूसरेका काम नहीं कर सकता। परिणम ही नहीं सकता। तो सबसे बड़ी भूल जीवमें है तो यही है कि वह यह मानता है कि मैं किसी दूसरे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

को कुछ कर देता हूं। अपने स्वरूपको देखो—मैं ज्ञानमात्र हूं, अपनेमें अपना काम करता रहता हूं, इसके आगे मेरी कुछ करतूत नहीं होती, इसलिए अपनी दृष्टिसे अपना निर्णय बनायें फिर शान्ति पा सकेंगे। तो प्रभुने स्वयं इन सब बातोंका अनुभव किया जिसके फलमें कर्मोंका विनाश हुआ और केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। तो हम या संसारी जीव यहांकी कुछ बातोंको तो सोचते हैं कि इसमें लाभ है, इसमें मेरा बड़प्पन है, इसमें मेरा भला है। यहांकी बातोंमें तो सोचते हैं, मगर यह नहीं सोचते कि यह शरीर ही न रहेगा तब मेरे लिए ये क्या काम देंगे ? शरीर तक ही मान लिया, विश्वास रखा कि यह मेरे काम आ रहा, वैभव है, परिजन है, अन्य कुछ है, और जब शरीरसे अलग हो गए तब ये मेरे क्या काम आयेंगे ? तो जो मैं हूं, जिसमें मेरा सही भला हो वह बात विचारना चाहिए।

ज्ञानीकी निःस्पृहता—मुमुक्षुको आजके जमानेकी रीति कुछ विडम्बना सी लगेगी। जो उद्धारका निर्णय किए हुए हो उसके लिए आजका जमाना कुछ विडम्बना सा बतायेगा, क्योंकि उसे न प्रशंसाकी फिक्र न निन्दा की। उसको न किसीसे अनुराग, न किसीसे द्वेष, वह तो अपनी धुनमें रहेगा। उसको आजका जमाना कहां भला कह सकता है ? तो उसमें इतना भी साहस होना चाहिए कि जमाना मुझे भला न कहे, उसकी भी परवाह नहीं, मेरी दुनिया अलौकिक है, क्योंकि

http://www.jainkosh.org

वह तो अलौकिक कामके लिए अपना जीवन मानता है। तो उस अलौकिकताकी जो धुन रखे वह पुरुष कल्याण करेगा। सीधी स्पष्ट बात यह है कि वह दुनियाकी पार्टीसे, इन संसारी प्राणियोंके मजलिससे वह अपना नाम कटा हुआ समझे तब वह अन्तरमें अपनी सही दिशा पा सकता है। यह बात कह रहे हैं आत्मोद्धारके प्रसंगकी। तो कुछ ऐसा भी चाहिए और गृहस्थ हैं तो कुछ यहांका भी चाहिए। सो एक बात और ध्यानमें देनेकी है कि जो अपने आपके उद्धारके कामके लिए उतारू हो उसको आवश्यकतानुसार लौकिक बातें तो रहती ही हैं, पर लौकिक बातोंमें कोई धुन बनाये तो उसको आत्मा की बात नहीं रहती है। आत्माकी प्रगतिमें, मार्गमें चलना हो तो लौकिक सुविधायें भी रहती हैं, पर लौकिक सुविधाओं का ही दास बनकर रहे तो उसे अलौकिक बात नहीं मिल सकती। इस कारण मुख्य बात है आत्मोद्धारकी। हे प्रभु श्रेयांस जिनेन्द्र आपने उसका ही उपदेश किया। सो आप इस तीन लोकमें एक ऐसे प्रकाशमान हो जैसे कि मेघरहित सूर्य प्रकाशवान् होता है। जब सूर्यके नीचे बादल न हो तब उसका जो तेज है, प्रकाश है वह एक अद्भुत है, प्रकृष्ट है, ऐसे ही जब आपके आवरण न रहे, आपका जो अभ्युदय है, केवलज्ञान का जो प्रकटपना है वह अद्भुत है।

प्रभुता पानेके लिये प्रभुस्वरूपकी उपासनाकी आवश्य-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कता—अब अपने अन्दर थोड़ा ध्यान देकर देखें कि मैं जब भगवानके स्वरूप जैसा ही हूं, केवलज्ञान मेरेमें प्रकट हो सकता है, इतनी अद्भुत विधि मुझे प्राप्त हो सकती है तो इस संसार की चंचल और विनाशीक विभूतिके लिए क्या चित्त लगाये रहना ? मैं अपनी अद्भुत ज्ञानानन्द मूर्तिके लिए ही चाहूं, ऐसा चित्तमे उत्साह जगना चाहिए, जब मैं वीतराग हो जाऊँगा कर्मरहित हो जाऊँगा तो बस प्रभुकी तरह ही अनन्त ज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तशक्ति और अनन्त आनन्द प्रकट हो जायगा बस यह निधि मिल जायगी। तो एक ऐसी बात है कि जैसे दो चीजें पड़ी हों सामने—खलका टुकड़ा और चिन्तामणि रत्न। तो उससे कहा जाय कि तुम जो चाहो सो मिल जायगा। सामने तुम्हारे दोनों ही चीजें पड़ी हुई हैं, और वह मुग्ध यह ही कह बैठे कि लावो खलका टुकड़ा, तो ऐसी बात सुनकर तो कह बैठेंगे कि उसने ठीक नहीं किया, पर अपने आपकी भी बात देखो। भीतर तो है चिंतामणि रत्न और जरा ही दूर ये सब पड़े हैं खलके टुकड़े, परिजन हों, वैभव हों, कुछ भी हों ये सब हैं खलके टुकड़े और इसके मांगनेसे दोनों ही मिल सकते हैं। इसका जैसा संकल्प बने, जैसी चाह बने, रुचि बने इसके अनुसार खलका टुकड़ा भी मिल सकता और भीतर का चिन्तामणि भी मिल सकता, मगर यह अपने अभ्यास और वासनाके आधीन होकर कह बैठेगा कि मुझे तो यह ही चाहिए।

चिंतामणिका तो नाम ही नहीं लेता। चैतन्यचिन्तामणि याने अपने आत्माका सहज स्वरूप, उसकी कुछ दृष्टि ही न करे तो यह ऐसी दशा क्या अच्छी दशा है ? हमको अपने भीतर विराजमान परमात्मस्वरूपकी उपासना और उसकी महत्ता करना चाहिए। मुख्य काम तो यह है। जिसने यह काम किया उसका जीवन सफल है और इस कामको छोड़कर बाहरी बातोंमें लगा तो समझो कि जैसे अनन्त जीवन उसके बेकार बीत गए ऐसे ही यह भी जीवन बेकार गया। जब जब भी यह जीव जिस-जिस भवमें जीवित रहा उस भवको ही सब कुछ समझता रहा। यह ही भव ठीक है और उस भवका ही बड़प्पन मानता रहा, मगर सब शृङ्खलायें इसकी टूटती गईं। कहीं यह विराम न पा सका और उसी धुनमें आज भी है तो जैसे अनन्त भव गए वैसे ही यह भी भव जायगा। इसने इस भवसे कोई लाभ न उठाया। उस लाभकी बात प्रभु आपने ही कही। और आप उसके कहनेके सच्चे अधिकारी हैं, क्योंकि कर्मावरण रहित हैं और एक निमेष सूर्यकी तरह अद्भुत प्रकाशमान हैं। हम कुछ सोचें।

चैतन्यचमत्कारमय प्रभुकी उपासनासे लाभ लेनेका अनुरोध—भैया ! जब भगवानकी भक्ति करते हैं, पूजनको जाते हैं, स्तवन करते हैं तो कुछ तो ध्यान लाना चाहिए कि मुझमें और भगवानमें इतना अन्तर कि यह तो वहीं सिद्धालयमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

विराजे हैं। किसीसे कुछ बोलते नहीं और दनादन लोग देव देवेन्द्र वगैरा पूजते चले जा रहे। यह अन्तर कैसे आ गया कि भगवान तो पुजते हैं और हम पूजनेका परिश्रम करते हैं। जीव जीव सब एक हैं, स्वरूप एक है। बात एक ही है, पर इतना महान अन्तर कैसे ? यह अन्तर आया है प्रभुके स्वरूप को न समझनेका और उसमें अभेद भाव न लानेका। यह सारा अंतर है। भक्ति तो हम किया करते हैं, हमारा स्वभाव है भक्ति करनेका। भक्ति बिना कोई नहीं रह रहा, हर एक कोई भक्ति करता है। जिसकी जिसमें धुन हो, जिसकी जिसमें लगन हो, भक्ति उसकी कहलाती है। तो ऐसे भक्त तो सभी मनुष्य हैं, पर अन्तर है। कोई स्त्रीका भक्त है, कोई पुत्रका भक्त है, कोई धनका भक्त है, कोई सोना चाँदीका भक्त है, कोई यश कीर्तिका भक्त है तो कोई आत्मस्वरूपका भक्त है। जो आत्मस्वरूपका भक्त है वह तो अपनेमें कुछ पा लेगा और जो इन बाहरी बातोंका भक्त है उसको न ये बातें मिलेंगी और न यहाँ कुछ मिलेगा। तो आत्मस्वरूपका हम परिचय बनायें और उसके लिए कठिन कठिन भी सब काम करें। तन जाय, धन जाय, मन जाय, वचन जायें, प्राण भी जायें और किसी भी उपायसे एक अपने आपके अमर चैतन्यस्वरूप का प्रकाश पा ले तो उसने सब कुछ पाया। और एक यह ही न पा सके तो बाहरकी सारी बातें पाकर भी उसने कुछ

http://www.jainkosh.org

नहीं पाया। वह मार्ग प्रभु श्रेयांस जिनेन्द्र देवने बताया और बतानेके वे अधिकारी यों हैं कि वे स्वयं उस मार्गके फलको प्राप्त कर चुके हैं, ऐसे प्रभु मुझे सद्बुद्धि दें अथवा उनकी उपासनाके फलमें मेरेमें सद्बुद्धि जगे और मैं अपने आत्मस्वरूप का महत्व आंकने लगूं तो यह मेरे लिए एक बहुत बड़ी प्राप्ति है।

विधिर्विषक्तप्रतिषेधरूपः प्रमाणमत्रान्यतरत्प्रधानम्।
गुणोऽपरो मुख्यनियामहेतुर्नयः सदृष्टान्तसमर्थनस्ते ॥५२॥

प्रभुके उपदेशकी प्रमाणसम्मतताका दिग्दर्शन कराते हुए प्रभुका स्तवन—श्रेयांस प्रभुकी स्तुतिमें उनके सिद्धान्तका साक्षात् दिग्दर्शन कराते हुए स्तवन किया जा रहा है। विधि प्रतिषेध रूपसे युक्त होती है अर्थात् किसी भी पदार्थमें किसी भी धर्मको अस्तित्व बनाना उसके नास्तित्वसे युक्त होता है, दृष्टिभेद जरूर रहता है। जैसे जीवको बताया कि यह नित्य है इसमें विधि बनायी धर्मकी। तो वे अनित्यको साथ लिए हुए हैं। जीव नित्य है ऐसी विधि जब कही गई तो जीवमें नित्य नहीं है यह भी उसके साथ जुड़ा हुआ है। भेद दृष्टिका है। द्रव्यदृष्टिसे नित्य है, पर्यायदृष्टिसे नित्य नहीं है। क्यों विधि और प्रतिषेध होता है एक पदार्थमें ? इसका कारण है कि पदार्थ द्रव्यपर्यायात्मक होता है। पर्यायशून्य द्रव्य मानने वाले ब्रह्माद्वैत आदिककी तरह उपलब्धिसे शून्य हो जाता है और द्रव्य-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शून्य पर्यायको मानने वाले क्षणिकवादियोंकी तरह कहीं वह स्थिर नहीं रह सकता है । प्रत्येक पदार्थ द्रव्यपर्यायात्मक है । तो जो भी बात कही जायगी वह द्रव्य पर्यायमें से एककी होगी, दो की नहीं हो सकती । तो जब एककी होगी तो दूसरा भी तो साथ लगा है, उसकी दृष्टिमें उसका निषेध होगा । तो जितनी भी विधि है वह प्रतिषेध रूपसे युक्त है और यही प्रमाण याने विधि निषेधात्मक जो ज्ञान है वह प्रमाण है । बोधग्राही ज्ञान प्रमाण होता है । सो पदार्थ तो है विधिनिषेधरूप, पर उनमें से एक तो प्रधान है और दूसरा गौण है, और एक प्रधान बने, एक गौण बने इसका नियम करानेका कारण है नय । जिस नयकी मुख्यता है वह तो होता है प्रधान, दूसरा होता है गौण, सो हे प्रभु यह सब कुछ दृष्टान्तसहित समर्थन आपके सिद्धान्तमें है ।

विवक्षितो मुख्य इतीष्यतेऽन्यो गुणोऽविवक्षो न निरात्मकस्ते ।
तथारिमित्रानुभयादिशक्तिर्द्वयावधिः कार्यकरं हि वस्तु ॥५३॥

अनंतशक्त्यात्मक वस्तुकी कार्यकारिताके उपदेशक शासनके अधिनायककी प्रभुताका स्तवन—हे प्रभु तुम्हारे सिद्धान्तमें बताया गया है कि जो तत्त्व विवक्षित है, जिसके कहनेकी इच्छा की जा रही है वह तो होता है मुख्य और अन्य तत्त्व हो जाता है गौण । जिसके विपक्ष नहीं है वह गौण है, जिसके विपक्ष है वह मुख्य है । जैसे कमरेमें दो भींत होते हैं, चार भी

होते हैं, पर कमसे कम दो भींत तो हुआ ही करते हैं । खुले भी हों बिल्कुल तो भी दो भींत हैं । जिस भींतको देखा जा रहा है वह तो मुख्य है और जिसको नहीं देख रहे हैं वह गौण है । तो गौण होनेसे उसका अर्थ यह नहीं है कि दूसरी भींत है ही नहीं । जिस भींतको देखा जा रहा है वह ही है, दूसरी नहीं ऐसा तो नहीं है । हां दृष्टिमें जो सामने है, जिसकी चर्चा कर रहे हैं, जिसमें कुछ परख कर रहे हैं वह भींत मुख्य है, दूसरी भींत गौण है । इस प्रकार पदार्थमें जो भी विधि निषेध रूप धर्म है उसमें जो विवक्षित हो सो तो मुख्य है और जो विवक्षित नहीं वह गौण होता है, पर स्वभावशून्य नहीं है, निरात्मक नहीं है कुछ । जो गौण है वह नहीं है ऐसा नहीं, अन्यथा जो मुख्य बनाया जा रहा वह भी न रहेगा । तो प्रत्येक पदार्थ द्रव्यपर्यायात्मक है इसलिए यह सब अनेकान्त सिद्ध होता है और जो द्रव्य पर्यायात्मक है वही वस्तु है और वही कार्य कर सकने वाली है । केवल सामान्य जैसा कि पर्यायशून्य ब्रह्म माना या अन्य अद्वैत माना तो उसकी अर्थक्रिया तो नहीं होती । उसका नाम नहीं चलता और जो द्रव्यशून्य पर्याय है वहाँ भी कुछ क्रिया नहीं हो सकती । क्षणभरमें पदार्थ उत्पन्न हो, दूसरे क्षण न रहा वह काम क्या करेगा ? परिणति क्या बतायेगा ? तो एक ही पदार्थमें बराबर ये दोनों शक्तियाँ हैं—द्रव्यत्वशक्ति और पर्यायत्व शक्ति । जैसे कि व्यवहारमें कोई

Report any errors at vikasnd@gmail.com

भी एक पुरुष है उसमें अनेक शक्तियाँ हैं, शत्रुपनेकी शक्ति है, मित्रपनेकी शक्ति है, तटस्थताकी शक्ति है, किसीके लिए शत्रु है, किसीके लिए मित्र है, किसीके लिए तटस्थ है, पुरुष एक ही है। तो जैसे उस एक पुरुषमें शत्रु मित्र और तटस्थ—ये तीन प्रकारकी बातें पायी जाती हैं। तो इससे समझिये कि सभी पदार्थोंमें अनेक प्रकारकी शक्तियाँ पायी जाती हैं। तो ऐसी दो बातें पदार्थमें हैं—द्रव्य और पर्याय। तब ही वह वस्तु कार्यको करने वाली होती है। ऐसा सिद्धान्त हे प्रभु आपने प्रकट किया।

दृष्टान्तसिद्धावुभयोर्विवादे साध्यं प्रसिद्ध्येन्न तु तादृगरित।
यत्सर्वथैकान्तनियामदृष्टं त्वदीयदृष्टिर्विभवत्यशेषे ॥ ५४ ॥

एकान्तदृष्टिसे उत्पन्न कठिन समस्याओंका समाधान करने वाले अनेकान्त शासनके विभावक प्रभुका स्तवन—हे प्रभु, आपकी दृष्टि, आपका दर्शन, आपका सिद्धान्त समस्त समाधानोंको उत्पन्न कर देता है। वस्तुमें मूल दो तत्त्व रहे—द्रव्य और पर्याय। उनके सम्बंधमें जब कदाचित् विवाद उत्पन्न हो तो युक्तियोंसे तो उसको बताया ही जाता, मगर दृष्टान्तोंसे उसकी सिद्धि करनेपर लोगोंकी दृष्टिमें साध्य एकदम प्रसिद्ध हो जाता है। पर जो सर्वथा एकान्तवादके नियमसे ही गठे हुए सिद्धान्त हैं उनमें दृष्टान्तसे कुछ सिद्धि नहीं बन सकती। जैसे कोई कहे कि वस्तु सर्वथा नित्य हैं तो उससे कहो कि हमको

http://www.jainkosh.org

जरा बता दो—कौन है ऐसा जो सर्वथा नित्य है ? तो बताने चले तो किसे बतायेंगे ? जो सर्वथा नित्य हो, और कुछ बतायेंगे तो वह सब एक दिमागमारी बात रहेगी। तो जो सर्वथा एकान्तके नियमसे गढ़े हुए सिद्धान्त हैं उनमें न तो दृष्टान्त मिलते हैं, न युक्ति मिलती, न अर्थक्रिया होती, पर हे प्रभो, तुम्हारा दर्शन इन समस्त समाधानोंको कर देता है।

एकान्तदृष्टिप्रतिषेधसिद्धिर्न्यायेषुभिर्मोहरिपुं निरस्य।
असिस्म कैवल्यविभूतिसम्राट ततस्त्वमर्हन्नसिमे स्तवार्हः ॥५५॥

मोहरिपुका निरसन करके कैवल्यविभूतिसम्राट होनेका तंत्र प्रसिद्ध करने वाले प्रभुका स्तवन—जो एकान्त दर्शन हैं उनका प्रतिषेध सिद्ध होनेसे न्यायरूपी वाक्योंके द्वारा हे प्रभु, आपने मोहशत्रुका निरसन किया। एकान्त दर्शनका प्रतिषेध क्यों युक्त है ? जो मूलमें यह बात समझ लेगा कि जो भी सत् है वह सदा रहता है और अपनी अवस्थायें प्रतिसमय बदलता रहता है। बस मूल सिद्धान्त यह मान ले कोई तो उसके लिए फिर सर्व तत्त्वोंकी सिद्धि आसान हो जाती है। जो भी पदार्थ है वह द्रव्यरूप है, पर्यायरूप है, सदा रहने वाला है। यह तो है द्रव्यदृष्टि और क्षण क्षणमें नया-नया बनता है यह है पर्याय दृष्टि। अब बतलावो मैं किसका अभाव करूँगा ? अगर द्रव्य का अभाव किया तो केवल पर्याय पर्याय कोई भी वस्तु नहीं है। पर्याय होगी ही किसकी ? जब कोई द्रव्य ही नहीं तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पर्यायका रूप बनेगा ही कहांसे ? और कोई द्रव्य द्रव्य ही कहे, पर्याय न कहे तो पर्याय बिना द्रव्य क्या चीज है, बता तो दे कोई ? जैसे डरानेके लिए एक हौवा शब्द कहा जाता है— हौवा आ जायगा तो हौवा कोई चीज तो नहीं, क्योंकि न वहाँ द्रव्य है, न पर्याय है। आकाशका फूल कोई चीज है क्या ? न द्रव्य है, न पर्याय है आकाशका फूल। तो इस प्रकार पर्याय-शून्य द्रव्य केवल एक कल्पनामात्र है और द्रव्यशून्य पर्याय केवल एक कल्पनामात्र है जो मानने वालेके चित्तमें भी न बैठ सके। तो जब वस्तु द्रव्य पर्यायात्मक है, द्रव्य पर्यायसे शून्य नही है तो एकका निषेध कैसे किया जा सकता है ? जैसे समुद्रके दो तट हैं। एक तटका कोई अभाव बताये तो समुद्र फिर कहाँ व्यवस्थित रहेगा ? वस्तुके ये दो पहलू सदा रहते और बदलते रहते। यह ऐसा अकाट्य है कि इनमें से अगर एक नहीं है तो वस्तु भी नहीं, दूसरा भी नहीं। तो एकान्त-दृष्टिका प्रतिषेध युक्त ही है और फिर इस युक्तिसे जो ज्ञान प्राप्त किया, जो आत्मबोध किया उससे मोह शत्रुका फिर निराकरण किया। आत्माके ज्ञान बिना मोह रागद्वेष दूर नहीं किए जा सकते। संसारके जीवोंको उन ही जीवोंके मोह राग-द्वेषने ही परेशान किया। दूसरी वस्तु कोई परेशान करनेके लिए नहीं आती, क्योंकि कुछ सम्बंध ही नहीं किसी दूसरेसे। दूसरा मुझमें कुछ कर ही नहीं सकता। मैं ही कल्पनायें करके,

संसारी जीव ही कल्पनायें करके अपने आपको दु:खी कर लिया करते हैं। कल्पनासे मिलता कुछ है नहीं। मिल ही नहीं सकता। किसी दूसरी वस्तुसे मुझको कुछ मिल ही नहीं सकता। आनन्द किसी दूसरेके निकट आनेसे नहीं होता, किन्तु अपनेको सत्य ज्ञानमात्र अनुभव करनेसे याने ज्ञानमें मात्र ज्ञानस्वरूप ही समाया रहे, ऐसी एक सामान्य स्थिति बननेसे स्वयं ही अद्भुत सत्य सहज आनन्द प्रकट होता है। तो यह आनन्द, यह शान्ति मिलती है आत्माके सत्य ज्ञानसे। और आत्माके सत्य ज्ञान तक वही पहुंच सकता है जो द्रव्य पर्यायकी दृष्टि रखकर अपने आपका निर्णय बनाये। तो हे प्रभु आपके सिद्धान्तमें एकान्त दृष्टिका प्रतिषेध हुआ है उससे यह अवसर मिला कि ज्ञानरूपी सम्यग्ज्ञानके बाणोंके द्वारा, न्यायके बाणोंके द्वारा मोहरूपी शत्रुका निराकरण किया जाता है। ऐसा मोहका निराकरण करके हे प्रभु आप कैवल्यविभूतिके सम्राट हो, अर्थात् केवलज्ञानके द्वारा आपने समस्त लोकालोकको त्रिकालसे जाना। तो आप चूंकि कैवल्यविभूतिके सम्राट हैं अथवा कहो कि आत्मा यदि एक रह जाय, प्योर रह जाय, मात्र वही वही स्वरूप रह जाय तो यह एक इतनी बड़ी ऊँची विभूति है कि ऐसी स्थितिमें ही अनंत आनन्द प्रकट होता है। तो ऐसी इस कैवल्यविभूतिके प्रभु आप सम्राट हो, इस कारण हे अरहंत देव आप मेरे स्तवन करनेके योग्य हो। इस प्रकार

Report any errors at vikasnd@gmail.com

श्रेयांसनाथ जिनेन्द्रकी स्तुति पूरी हुई।

शिवासु पूज्योऽभ्युदय क्रियासु
त्व वासुपूज्यस्त्रिदशेन्द्रः पूज्यः।
मयापि पूज्योऽल्पधिया मुनीन्द्र।
दीपार्चिषा किं तपनो न पूज्यः ॥५६॥

प्रभुकी वासुपूज्यता—वासुपूज्य भगवानकी स्तुतिमें कह रहे हैं कि हे प्रभु, तुम समस्त उच्च अभ्युदय वाली क्रियावोंमें पूज्य रहे। जैसे गर्भकल्याणक, जन्म कल्याणक, तप कल्याणक, ज्ञान कल्याणक, निर्वाण कल्याणक ये तो मुख्य हैं, पर इसके अंतर्गत और-और भी जितनी अभ्युदयकी क्रियायें थीं उन समस्त कल्याणकारी क्रियावोंमें आप पूज्य हो। गर्भकल्याणक हो तो क्यों देव देवियाँ आ-आकर उनको सेवा करते हैं? क्यों इन्द्रको चिन्ता होती है, हर्ष होता है? उनके प्रबंधकी व्यवस्थाका उत्सव मनाते हैं। उसका कारण यह है कि जो आत्मा वीतराग सर्वज्ञ होने वाला है वह आत्मा यहाँ अवतार लेगा इसको कहते हैं अवतार। याने स्वर्ग और ऊपरके स्थानों में जो देव होते हैं, जिन्होंने तीर्थंकर प्रकृति बाँध ली थी वे वहाँसे चलकर तीर्थंकर बनते हैं। तो अवतार कहते हैं उतरने को, ऊपरसे नीचे आये इसका नाम है अवतार। वहाँ नरक गतिसे भी आकर तीर्थंकर होते हैं और उनके पांचों कल्याणक भी होते हैं, पर ऐसे बहुत कम जीव हैं। अधिकतर तो स्वर्ग

और कल्पांतरके वासी देव तीर्थंकर बनते हैं। तो महिमा किसकी रही? वीतराग सर्वज्ञ आत्मा होगा उसकी महिमा है। तो ऐसे पुरुषोत्तमके अवतारके समय क्यों इन्द्रादिक सभी आकर्षित होते हैं? सभीकी यह भावना है कि कैसे मैं संसारके संकटोंसे छूट जाऊँ? संसारका संकट है मोह राग और द्वेष। बाह्य पदार्थोंसे कोई संकट नहीं आता। मान लो धन नहीं रहा तो क्या संकट अथवा कोई परिजन न रहा तो क्या संकट? कोई प्रतिकूल चल रहा तो चलने दो, उसका परिणमन है, क्या संकट? विकल्प जो बन रहा है व्यर्थका, बिना कामका। मेरेको यह यों कहता है, मेरा हुक्म नहीं मानता है आदिक जो भी भाव बना रखा है वे रागके भाव इस जीवको परेशान करते हैं। महोत्सव है यह कि वैराग्यका उदय आये, वैराग्य जगे चित्तमें, इससे बढ़कर और समारोह कुछ नहीं हो सकता, क्योंकि सर्व विषयोंसे राग हट जाना यह सबसे ऊँचे उत्कर्षकी बात है। राग तो कलंक है, कीचड़ है। बाह्य वस्तुमें चित्त जमाया है, मेरा घर है, मेरा परिवार है, मेरी स्त्री है, मेरा पुरुष है, मेरा पुत्र है। है कुछ नहीं घर आदि भिन्न पदार्थ हैं, लेन-देन नहीं, सम्बंध नहीं, और व्यर्थ ही राग बनाकर दुःखी होते हैं। तो सर्व दुःखोंका कारण जो मोह रागद्वेष है उससे छुटकारा मिले, इससे बढ़कर और कोई समारोह हो सकता है क्या? जिसे कहते हैं नया दिन। जीवका नया दिन यह है

http://sahjanandvarnishastra.org/

कि ज्ञान जगे, वैराग्य जगे। तो जिस महा आत्माके ज्ञान और वैराग्य जगा हुआ है ऐसा जीव अवतार लेगा और वह प्रभु बनकर जगतके जीवोंका उद्धार करेगा यह सब ज्ञान है इन्द्र इस ही कारण आकर्षित है। सबसे बड़ा नाता है वीतरागता का। बड़े-बड़े इन्द्र चक्रवर्ती यदि किसी तत्त्वपर आकर्षित है तो वह है वीतरागता। धनपर कोई भी शुद्ध भाव करके आकर्षित नहीं होता। धनी मानी नेताओं पर कोई भी पुरुष शुद्ध भावसे आकर्षित नहीं होता, बस स्वार्थवश ही आकर्षित होते सो उसकी कीमत कितनी? वह संबंध टिक नहीं सकता, पर वीतरागताका नाता एक ऐसा पुष्ट नाता है कि जिसमें पवित्रता बढ़ती है, सन्तोष बढ़ता है, शान्ति पनपती है, उद्धार का मार्ग मिलता है और कभी पूर्णतया वीतराग बनकर सदा के लिए कृतकृत्य हो जायगा यह बात बनती है।

केवल होनेकी धुन वालेकी सदा प्रभुकी अन्तर्भक्ति—चित्तमें प्रोग्राम रखना चाहिए केवल प्यारे होनेका। खालिस मैं आत्मा आत्मा ही रहूं, इसके साथ अन्य कुछ लेप न रहे, इसका प्रोग्राम चित्तमें चलना चाहिए। सफल चाहे कभी हों। जैसे बहुतसे लोग या कुछ पार्टी ५ वर्ष बाद चुनावमें खड़े होते और बीसों वर्षसे फेल होते जाते, मगर हिम्मत नहीं हारते। आशा लगाये हैं कि कभी तो सफल हो ही जायेंगे। तो ये तो लौकिक बातें हैं, पर मुक्तिके प्रोग्रामकी बात तो इतनी पुष्ट

होना चाहिए कि वह चाहे जीवन भर सफल न हो और कई जीवन भी लग जायें, अगर इस जीवको चारा और है ही क्या? सिवाय मुक्तिका मार्ग बनानेके इस जीवको और कोई चारा ही नहीं, न और कोई शरण है। तो जो उस मुक्तिके मार्गका रुचिया है वह मुक्तिमार्गके प्रेमियोंसे, मुक्तिमार्गमें लगे हुए लोगोंसे विशुद्ध वात्सल्य रखता है। उसका प्रेम दूसरोंके लिए नहीं, किन्तु पंच परमेष्ठियोंके लिए है, उसकी उपासना अन्य किसीके लिए नहीं बनती। शुद्ध और शुद्ध होनेके प्रयत्न में लगे हुए जीवोंपर ही उनकी उपासना जगती है। इतना कोई भीतरमें एक फकीराना पा सके, एक विरक्ति पा सके वह पुरुष धन्य है और उसकी शान्तिकी भंग कर सकने वाला दुनियामें कोई समर्थ नहीं हो सकता। जो शुद्ध ज्ञानमार्गमें लगा हुआ हो उसकी शांतिको भी कोई भंग नहीं कर सकता। तो यही कारण है कि बड़े-बड़े देवेन्द्रों द्वारा, प्रतीन्द्रों द्वारा ये प्रभु पूज्य हुए। हे वासुपूज्य भगवान तुम बड़ी ऊँची अभ्युदय वाली मांगलिक क्रियावोंमें पूज्य रहे अथवा जो कोई भी कुछ अपनी क्रियायें करता है, घरके भी और लौकिक काम भी करता है, उन कामोंमें लोग प्रभुका स्मरण किया करते हैं, मकान बनायें, दुकान बनायें, विवाह शादी हो और कोई भी छोटेसे छोटे कार्य हों उनमें प्रभुस्मरण किया जाता है, और इस बात

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

को तो बड़े-बड़े आचार्योंने कहा कि चाहे एक बार अलौकिक कामोंमें प्रभुका नाम न ले सकें तो न लें, मगर लौकिक जितने भी काम करने चलें, घर आयें, कहीं जावें, कहीं बैठें, सगाई शादीके या और-और जो भी काम करें उन सब कामोंमें प्रभु का स्मरण करना चाहिए। तो हे प्रभु आप सर्व मांगलिक क्रियावोंमें पूज्य हो।

दीपक द्वारा सूर्यका आदर किये जानेकी लोकप्रथाकी तरह अल्पबुद्धि द्वारा भी त्रिदशेन्द्रपूज्य प्रभुकी पूज्यताकी युक्तता—प्रभो आपका नाम वासुपूज्य क्यों है ? तो वासव नाम है इन्द्रका देवका और वासवोंके द्वारा जो पूज्य हो सो वासुपूज्य। यह शब्द ही आपकी विशेषताको बता रहा है कि आप त्रिदशेन्द्र पूज्य हो। त्रिदश कहते हैं देवको, तीनों दशायें जिसकी एक हों वह त्रिदश है, बच्चा, जवान, बूढ़ा, वे सब सदृश हैं, उन देवोंके द्वारा आप पूज्य हो। आपकी पूज्यता तो बड़े-बड़े महान अधिपतियों द्वारा है। यह तो ठीक है, किन्तु लोकमें अल्पबुद्धि मेरे द्वारा जो आप पूज्य बन रहे हैं हे प्रभु सो भी युक्त ही है। जैसे कि लोकमें सूर्यकी पूजा दीपकसे की जाती तो सूर्य तो महान है, बड़ा कान्तिमान है और यह दीपक यह छोटे प्रकाश वाला टिमटिमाता हुआ और उसके द्वारा सूर्यकी पूजा करते हैं लोग तो यह ही बात यहाँ चल रही है कि आप तो बड़े-बड़े इन्द्रों द्वारा पूज्य हो, पर मैं मंदबुद्धि

Version 1

वाला होकर भी पूज रहा हूं सो सही है। क्या दीपकी किरणों से सूर्य पूज्य नहीं चल रहा लोकमें ? अथवा जैसी जिसमें जितनी शक्ति है वह अपनी शक्तिका प्रयोग करके उपासना करता है। बड़े-बड़े मुनीन्द्र अपनी उच्च अनुभूति द्वारा उस सहज परमात्मतत्त्वकी, प्रभुस्वरूपकी उपासना किया करते हैं। यों जिसमें जितनी सामर्थ्य है अपनी बुद्धि अनुसार उसकी उपासना करता है, पर धुन प्रतीत सबके लिए एक समान कही जायगी। तो मैं अल्पबुद्धि होकर भी हे प्रभु मैं आपकी पूजा में प्रवृत्त हो रहा हू तो इसमें एक आपके प्रति तीव्र भक्ति ही कारण है।

न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे न निन्दया नाथ विवान्तवैरे।
तथापि ते पुण्य गुण स्मृतिर्नः पुनातु चित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः ।५७।

वीतराग देवका पूजानिरपेक्षत्व—हे प्रभु तुम वीतराग हो। पूजासे आपका कोई प्रयोजन नहीं और आप वैररहित हो, द्वेषरहित हो, इस कारण निन्दासे भी आपका कोई मतलब नहीं तो भी याने आप पूजासे प्रसन्न नहीं होते और निंदा से दुःखी नहीं होते। पूजा करने वाला आपसे कुछ चाहे तो आप उसे कुछ देते नहीं, फिर भी तुम्हारे पवित्र गुणोंकी स्मृति हम लोगोंके चित्तको पवित्र करे। प्रभुकी उपासनाके प्रसादसे केवल एक ही कामना रहे कि मेरी भावोंमें विशुद्धि जगे तो वह सच्ची पूजा है। एक ही बात रहना चाहिए। केवल एक

http://sahjanandvarnishastra.org/

ही प्रयोजन हो तो सर्व सिद्धि हो जायगी, और जो अनेक बातें चित्तमें सोचे कि हे प्रभो ! मेरा यह काम भी बने, वह काम भी बने, तो उसका कहीं भी पूरा नहीं पड़ता । केवल एक ही भाव रखें कि हे प्रभु मैं आपकी उपासनाके लिए इसलिए आया हूं कि मेरे परिणाम गंदे न रहें, विषयवासनासे विरक्त रहें । आत्मस्वरूपकी उपासनाके लिए मुझमें जागृति हो, आत्माकी विशुद्धि हो सो यह बात प्रभुके गुणोंके स्मरणमें हो ही जाती है । तो प्रभु वीतराग हैं सो वे अपने आनन्दके लिए हैं। उन्हें पूर्ण आनन्द मिल चुका है । अब कोई पूजा करे, कोई यश गाये, कोई गुण गाये तो वह न कुछ चीज है । जैसे यहां कोई बहुत बड़ा ऊँचा लोकमान्य पुरुष हो तो उसके सामने कोई साधारण गुणानुवाद करे तो उसके उसपर क्या प्रभाव पड़ता है ? वह तो उसे न कुछ समझता है, यह तो लोक रीति है । भगवान तो अनन्त आनन्दमें मग्न हैं, उनकी कोई पूजा कर ही क्या सकता है ? जो कोई जो कुछ भी कहेगा वह उनके लिए न कुछ है यानें गुणका लवलेश भी वर्णनमें नहीं आता । तो प्रभु वीतराग हैं अतएव अनंत आनन्दमें मग्न हैं, उनको पूजासे क्या प्रयोजन है ?

प्रभुका निर्वैरत्व—प्रभु बैररहित हैं, विनाशबैर याने विशेषरूपसे वमन कर दिया है बैरको जिसने । रोगके हटनेका बहुत जल्दीका उपाय वमन है । कोई विकार हो गया और

वमन हो गया तो फिर उस रोगके हटनेमें ज्यादा दिन न लगेंगे । भगवान भी तो आखिर पहले संसारी प्राणी ही तो थे, वह भी बैरके रोगी थे, पर इस रोगका ऐसा वमन किया विशेषरूपसे कि अब वे पूर्ण स्वस्थ हैं । अपने आत्मामें स्थित हैं । तो आपने बैरको हटा दिया तो अब निन्दासे क्या मतलब रहा ? निन्दासे कोई उनपर दुष्प्रभाव नहीं पड़ता । तो आपने खुश होकर किसीको कुछ देते हैं नहीं, किसीपर रुष्ट होकर किसीका कुछ हरते हैं नहीं ।

वीतराग देवकी भक्ति पूजासे भक्तात्माके पवित्रताका अभ्युदय—प्रभो ! न आप खुश ही होते, न रुष्ट ही होते, फिर भी ऐसा परम उदासीन अनन्त सहज आनन्दमय प्रभुके गुणोंका स्मरण नियमसे चित्तको पवित्र करता है । कुछ लोग शंका करते हैं कि भगवानकी पूजा करते हैं, उपासना करते हैं, भक्ति करते हैं तो कुछ फायदा न हो, कुछ सिद्धि न हो, कुछ आनंद न आये ऐसा हो ही नहीं सकता । मगर प्रभुकी पूजा, प्रभुका दर्शन हो सके तो नियमसे आनन्द और शान्ति मिलेगी । प्रभु क्या हैं ? दिखने वाली मूर्ति या समवशरण आदिक आकार ये प्रभु नहीं हैं, किन्तु एक ऐसा ज्ञानपुञ्ज जो निर्दोष हुआ, जिसमें मोह रागद्वेषका लवलेश नहीं, जो इतना स्वच्छ है कि समस्त सत् उनके ज्ञानमें युगपत प्रतिभासित होते हैं, ऐसा जो ज्ञानपुञ्ज है वह है प्रभु और इसकी जो सुध लेगा उसको अपनी भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

सुध आयगी और प्रभुमें अपना मिलान बनेगा और गुणानुवाद करता करता कभी अभेद बन जायगा, वह अलग प्रभु अलग हमारी भी दृष्टि न रहेगी। एक चेतनामें चैतन्यस्वरूप हो रहा, ऐसा अनुभव जगेगा। ऐसा दर्शन बने तो उसको अनंत आनंद, अनन्त शक्ति अवश्य होगी। और तत्काल तो सर्व अशान्ति मेरी नष्ट हो जाती है। तो हे प्रभु तुम्हारे पवित्र गुणोंका स्मरण हम लोगोंके चित्तको पवित्र करे।

पूज्यं जिन त्वार्चयतो जनस्य
सावद्यलेशो बहुपुण्यराशौ।
दोषाय नालं कणिका विषस्य
न दूषिका शीतशिवाम्बुराशौ: ॥५८॥

प्रभुकी अर्चाकी पुण्यरूपता—हे वासुपूज्य जिनेन्द्रदेव तुम पूज्यसे पूजन करने वाले मनुष्यके कुछ पाप लग भी जाता है जैसे द्रव्य पूजा करे कोई तो जल लाने आदिक कार्योंमें कोई एकेन्द्रिय जीवका विघात हो भी जाता है तो भी आपके पूजनके भावसे जो बहुत विशाल पुण्यबंध होता है, पुण्य पवित्र भाव होता है उस पुण्य राशिमें यह थोड़ासा सावद्य दोष करनेके लिए नहीं बन पाता। जैसे कि बहुत बड़ा समुद्र हो, जिसमें बहुत ठंडा, मधुर पानी रहता है उसमें विषकी एक कणिका मात्र उस समुद्रको दूषित नहीं कर सकती है। इस छंदमें यथार्थ स्थिति बतायी है। जो जीव आत्मस्वरूपकी

http://www.jainkosh.org

उपासनाकी धुनमें है वह पुरुष उदयवश गृहस्थीमें उसके अनेक घटनायें घटती हैं, उपयोग बदलनेके अवसर आते हैं, उस समय यह जिनेन्द्र भगवानका पूजन वंदन जाप आदिक षट् कार्योंमें लगता है तो उन षट् कार्योंमें लगनेके लिए उसको आलम्बन चाहिए तो वही आलम्बन है पूजा आदिक। सो इन पूजा आदिक आलम्बनोंमें लगे हुये इस भक्तके कुछ थोड़ा बहुत पापका लेश भी हो जाता है तो भी भाव इतना ऊँचा है जिनेन्द्रके गुणोंके स्मरणका भाव है कि वहाँ जो बहुत पवित्र पुण्यभाव बनता है उस राशिमें इतना लेश दोषके लिए नहीं हो पाता। दृष्टान्त भी बहुत व्यावहारिक है और पक्षसिद्ध है। विशाल समुद्रमें विषकी एक कणिकाका क्या अर्थ है? उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ऐसे ही कुछ थोड़ा बहुत मनसे, वचनसे, कायसे थोड़ा सावद्य लेश लग जाय तो इस जीवकी अशान्तिके लिए नहीं होता।

यद्वस्तु बाह्यं गुणदोषसूतेर्निमित्तमभ्यन्तरमूलहेतोः।
अध्यात्मवृत्तस्य तदङ्गभूतमभ्यंतरं केवलमप्यलं ते ॥५९॥

पुण्यकारिणी प्रभुपूजाकी महिमाका कारण अन्तर्भावना—मनुष्योंके गुण और दोषोंके उत्पन्न होनेके निमित्त बाह्य वस्तुवें भी होती हैं। तो जो बाह्य वस्तु गुण और दोषकी उत्पत्तिमें निमित्त बनती है सो अंतरंग भावरूप मूल कारणसे बनती है। बाह्य पदार्थ आश्रयभूत पदार्थ, शुभ अशुभ भावमें कब निमित्त

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बनते हैं। जब कि उस प्रकारका भीतरमें राग वैराग्य भाव बनता हो। तब बाह्य वस्तु भी गुण और दोषके उत्पन्न होनेमें निमित्त होती है। जैसे किसीके क्रोधादिक कषाय जगे तो जब क्रोधादिक कषायोंकी व्यक्ति होती है तो उसके अभिप्रायमें किसी न किसी वस्तु पर चैतन्य दृष्टि जगती है और उसको विषय बनाकर क्रोधादि कषाय व्यक्त होती है। तो ये बाहरी पदार्थ परिजन या अन्य कोई जो क्रोधका निमित्त बने सो अंतरंगमें क्रोधका कारण क्या? खुदकी योग्यता और उस प्रकारके कर्मका उदय। सो इस अंतरंग मूल हेतुवोंके बलपर बाह्य वस्तु दोष उत्पन्न होनेमें निमित्त नहीं बना, इसी प्रकार किसीके विद्या आती है, ज्ञान बढ़ता है तो उसमें बाह्य निमित्त तो गुरुजन आदिक पड़ते हैं, मगर गुरुजन बाह्यनिमित्त कब बने, जब कि इस जीवके ज्ञानकी योग्यता है और ज्ञानावरण का वहाँ क्षयोपशम है, परन्तु हे समाधि प्रिय समाधिवत प्रभु आपका जो अध्यात्म चरित्र है वह शुभ अशुभ भावसे उठा हुआ है ना? शुभ अशुभ भावसे रहित है ना? तो इस अध्यात्मवृत्तका कारण बस एक यही आभ्यंतर है मायने आपके इतनी निर्मलता है कि उस निर्मलताके कारण विशुद्ध विशुद्ध ही परिणमन होता-चला जा रहा है। अध्यात्मवृत्त स्वास्थ्य अर्थात् आत्मस्थिति आपके निरन्तर चल रही है, इसका कारण बाह्य क्या बतायें? फिर भी ऐसी स्थिति पानेसे पूर्व जो भी

पौरुष था उस पौरुषके समय बाह्य भी निमित्त और अंतरंग भी निमित्त था। तो प्रभु आपका ऐसा पावन स्वरूप है, ऐसा अपूर्व गुणविकास है कि अब उसके लिए किसीकी अपेक्षा न रही। अपने आप ही निरपेक्ष होकर आत्मामें वह विकास बराबर चल रहा है। प्रभु निरपेक्ष हैं, आनन्दकी मूर्ति हैं, गुणोंका उत्कृष्ट विकास है और यही एक ऐसा ऐश्वर्य है कि जिसमें किसीकी आधीनता नहीं होती। ऐश्वर्य नाम उसीका ही है। ईश्वरस्य भावाः ऐश्वर्यः, ईश्वर नाम है स्वतंत्रका, निरपेक्षका, जो अपने आपके काममें, वैभवमें किसी दूसरेकी अपेक्षा नहीं होती, उसे कहते हैं ऐश्वर्य। प्रभुके अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्दके विकासमें किसीकी भी अपेक्षा नहीं है। ऐसे ऐश्वर्य सम्पन्न हे प्रभो, आपका जो अध्यात्मवृत्त है, जो शुद्ध परिणमन है उसका अंतरंग कारण केवल आपका ही सहज स्वरूप है।

बाह्येतरोपाधिसमग्रतेयं कार्येषु ते द्रव्यगतः स्वभावः।
नैवान्यथा मोक्षविधिश्च पुंसां तेनाभिवन्द्यस्त्वमृषिर्बुधानाम्॥६०॥

कार्योंमें बाह्येतरोपाधिसमग्रताकी आवश्यकतापर प्रकाश—जो भी कार्य बनता है वह बाह्य और अन्तरंग कारणकी समग्रता पूर्वक बनता है। तो ऐसा होना अर्थात् प्रधान कारण, निमित्त कारण, समर्थ कारण हो जानेपर कार्य बन जाना यह द्रव्यगत स्वभाव है। हे प्रभो! ऐसा तुम्हारा सिद्धान्त है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

जहाँ यह कहा जा सकता है कि निमित्त उपादानमें कुछ नहीं करता, फिर भी निमित्तकी उपस्थिति बिना उपादानमें कार्य नहीं होता, इसका तथ्य क्या है ? तथ्य यही है कि परिणमने वाले द्रव्यका एक ऐसा स्वभाव है कि वह ऐसे अनुकूल निमित्त को पाकर अपनेमें यह कार्य कर लेता है । जैसे कोई पुरुष बैठ गया, जमीनपर ही बैठ गया हो ऐसा बैठना उसका बाह्य और अंतरंग उपाधिपूर्वक हुआ । उसमें बैठनेका सामर्थ्य है और बाह्यमें पृथ्वी आदिक निमित्त है । तो कोई कहे कि पृथ्वीने बैठाया क्या ? पृथ्वीने बैठने वालेपर कुछ किया क्या ? कुछ नहीं । पृथ्वी अपने प्रदेशोंमें अपना परिणमन करती हुई ही रहती है, फिर भी पृथ्वीके बिना क्या वह इस प्रकार बैठ गया ? नहीं बैठा । तो निमित्तने कुछ किया नहीं और निमित्त बिना वह बात हुई नहीं । इसमें रहस्य क्या है ? इसका रहस्य यही है कि बैठने वालेकी ऐसी ही प्रकृति है कि वह जमीनको, बेंचको किसी भी पदार्थको निमित्तमात्र करके अपनी शक्तिसे, अपने बलसे. अपने आपमें ऐसी परिणति कर लेता है यह द्रव्यगत स्वभाव है ।

द्रव्यगत स्वभावके अपरिचयीके निमित्तनैमित्तिक घटनामें कर्तृकर्मत्वका संदेह—द्रव्यगत स्वभावको न पहिचानने वाले लोग परमें कर्तृत्व देखा करते हैं । कुर्सीने इसे बैठा दिया, जमीनने इसे बैठा दिया, अमुक पुरुषने इसे क्रोध दिला दिया,

http://www.jainkosh.org

ये तो हैं सब बाह्य निमित्त, पर वास्तविकताकी दृष्टिसे देखें तो कर्मका उदय आया याने विशेष अनुभाग सहित कर्म उदय में आये तब भी कर्मने जीवको उपयोगी नहीं बनाया, किन्तु उस कर्मोदयका निमित्त पाकर उपयोगमें अनुभागकी झाँकी हुई और उस ही को बढ़ावा देकर जीवने व्यक्त विकार बनाया । तो यह एक उपयोगका स्वभाव है, प्रकृति है, योग्यता है कि वह किस अनुभागका सान्निध्य पाकर किस प्रकार विकाररूप परिणम जाता है । जैसे दर्पणके सामने कोई लाल पीली चीज रख दी, दर्पणमें लाल पीला प्रतिबिम्ब बन गया तो बतलावो क्या उस लाल पीले पदार्थने दर्पणमें प्रतिबिम्ब किया ? सो तो नहीं किया, क्योंकि वह पदार्थ तो दूर ही बैठा है, उसकी कोई चीज वहाँसे निकलकर दर्पणमें नहीं गई । तो क्या उस लाल पीलेका सामना आये बिना दर्पणमें ऐसा प्रतिबिंब बन जाता ? नहीं बनता । निमित्तने प्रतिबिम्ब किया नहीं और निमित्तके सान्निध्य बिना प्रतिबिम्ब बना नहीं । स्थिति है ऐसी । सभी जगह ऐसी ही स्थिति है और अनादिसे यही रीति चली आयी है । बस जो अज्ञानी जीव हैं, वस्तुगत स्वभावको नहीं पहिचानते हैं वे तो परकर्तृत्व निरखते हैं । घरने जकड़ लिया, परिवारने जकड़ लिया, बच्चोंने हैरान कर दिया । इस तरह परकर्तृत्व देखते हैं अज्ञानी जन । और ज्ञानी जन देखते हैं कि एक पदार्थ दूसरे पदार्थका कुछ नहीं करता, विभावरूप

Version 1

 http://sahjanandvarnishastra.org/

योग्यता रखने वाला यह जीव किसी बाह्यको निमित्तमात्र करके अपने आपमें यह क्लेश उत्पन्न कर लेता है। तो बाह्य और अंतरंग उपाधियोंकी यह समग्रता इस कार्यमें कारण बनती। यह सब परिणममान द्रव्यका द्रव्यगत स्वभाव है।

मोक्षविधिकी प्रयोग्यताके निर्देशक प्रभुकी अभिवन्द्यता— मोक्षकी विधिमें भी ऐसा ही प्रयोग चलता है। जो निकट विधि है उसमें केवल एक आध्यात्मिक भाव ही है और जो परम्परा विधि है, जिन शुभ भावोंके बाद शुद्ध समाधि बनती है वह सब बाह्य उपाधि और अंतरंग योग्यताकी समग्रतापर निर्भर है। ऐसा तत्त्व, ऐसा रहस्य हे प्रभु आपने बताया, इस कारण बड़े बड़े विद्वज्जनोंके द्वारा आप अभिवंदनीय हो। जो मोक्षका मार्ग बताये उससे बढ़कर और आभार किसका माना जाय ? सदाके लिए संसारके संकटोंसे छूट जाना, यह है सर्वोच्च पौरुष। इससे बढ़कर और कोई पवित्र कार्य नहीं हो सकता। लेकिन जो यहाँ थोड़े समागममें रत है, आशक्त है, अपनेको चतुर समझता है, किसीको धोखा दे दिया, पैसे ज्यादा आ गए तो समझता है कि मैंने बड़ी चतुराई की, पर भीतर सब प्राकृतिक हिसाब चल रहा है। जैसा भाव वैसा बंध, जैसा उदय होगा वैसा इसको क्लेश, उसमें कोई फेर-फार नहीं कर सकता। खुदका ही विशिष्ट बल हो तो परिवर्तन हो सकता है। तो यह सब रहस्य हे प्रभु आपने बताया इस कारण आप

बुद्धिमान जनोंके द्वारा वंदनीय हैं। इस प्रकार यहाँ वासुपूज्य जिनेन्द्र भगवानका स्तवन समाप्त हुआ।

> य एव नित्यक्षणिकादयो नया
> मिथोऽनपेक्षाः स्वपरप्रणाशिनः।
> त एव तत्त्वं विमलस्य ते मुनेः
> परस्परेक्षाः स्वपरोपकारिणः ॥६१॥

परस्पर निरपेक्ष नयोंकी स्वपरप्रणाशिता एवं परस्पर सापेक्ष नयोंकी स्वपरोपकारिता— विमलनाथ भगवानके स्तवन में कह रहे हैं कि हे विमलनाथ, हे मुनीश्वर, तुम्हारे सिद्धान्त में यह तत्त्व बताया है कि नय अगर परस्पर अपेक्षा न रखे, निरपेक्ष हो तो वह मिथ्या होता है। कोई भी नय हो, नित्य की बात हो, क्षणिककी बात हो, कोईसा भी मत हो, अगर एक दूसरेकी अपेक्षा नहीं रखता है तो वह मिथ्या है और अपने और परका विनाश करने वाला है, कैसे है अपना और परका विनाश करने वाला कि उन एकान्त दृष्टियोंसे खुदको भी सन्मार्ग नहीं मिलता और जिसको समझाता है वह भी सन्मार्गसे अलग रहता है इसलिए अपना भी विनाश किया और दूसरेका भी। यह तो हुई आत्मकल्याणकी बात और लौकिक बातें देखो—जैसे कोई मनुष्य मानता है कि पदार्थ नित्य ही है, उसमें हेर-फेर होता ही नहीं, तो न तो घर चलेगा, न दुकान चलेगी, न खा पी सकेंगे, कुछ भी न होगा।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

तो यों भी अपने और परको बरबाद किया, होता नहीं बरबाद, वह तो केवल गप्प ही गप्प है, काम सब चलता है, पर ऐसा सिद्धान्त भी किस कामका है कि जिससे न व्यवहार बने, न आत्मोद्धार बने। तो हे प्रभु, आपके सिद्धान्तमें यह रहस्य बताया कि सभी नय अगर परस्परमें अपेक्षा रखते हैं तो वे अपनेको और परको उपकारके मार्गमें लगाने वाले हैं, शान्ति संतोषमें रखने वाले हैं। तो हे प्रभु चूंकि आप मलरहित हैं, दोषरहित हैं, अज्ञानरहित हैं, इस कारण आपके सिद्धांतमें तो यथार्थ ही वर्णन है और इस वर्णनका जो प्रयोग करते हैं वे अपना और दूसरोंका भला करते हैं।

यथैकशः कारकमर्थसिद्धये समीक्ष्य शेषं स्वसहायकारकम्।
तथैव सामान्यविशेषमातृका नयास्तवेष्टा गुणमुख्यकल्पतः।६२।

सहायककारकोंसे युक्त कारकोंकी अर्थसिद्धिकारिता—जैसे कोई एक कारक शेष अपने सहायक कारकोंकी अपेक्षा रखते हैं तो अर्थकी सिद्धिके लिए होता है। जैसे कुल्हाड़ीसे काठ काटते हैं तो केवल कुल्हाड़ी, जिसपर बेंट न लगा हो, आदमी भी न चलाये तो वहाँ अर्थसिद्धि तो नहीं होती। काटने वाली कुल्हाड़ी है, मगर जब सहायक कारक उसमें बेंट नहीं, न कोई उसका चलाने वाला है तो वह अर्थसिद्धिके लिए नहीं है। जैसे मनुष्य काठ काटता है, काटता तो है मनुष्य, मगर मनुष्य न हो, कुल्हाड़ीमें बेंट भी न हो तो वह खाली

http://www.jainkosh.org

कुल्हाड़ी काठको काट लेगी क्या ? अरे काठ काटनेके लिए शस्त्र चाहिए, और जो कारण हैं वे सब चाहिएँ। तो जैसे कोई कारक अपने सहायक कारकोंकी अपेक्षा रखता है तो वह प्रयोजनकी सिद्धिके लिए बनता है उसी प्रकार जितने भी नय हैं वे सामान्य विशेषसे बने हैं। परिचयकी मूल बात समझें। चूंकि जो भी सत् है, जो भी है, जीव हो, पुद्गल हो, कुछ हो, है, इस कारण वह सामान्य विशेषात्मक है। जो सामान्यविशेषात्मक नहीं वह सत् नहीं। तो चूंकि प्रत्येक पदार्थ नियमसे जिसमें कहीं कोई छूट ही नहीं है, सत्त्व स्वरूप ही ऐसा है कि सब पदार्थ सामान्यविशेषात्मक होते हैं।

सामान्य विशेष तत्त्वोंमें नयमातृत्व—सामान्य और विशेष ये तत्त्व हैं नयोंकी माता। माता कहते हैं पुत्रको जन्माने वाली। तो पुत्रको जन्माने वाली कौन है ? ये सामान्य और विशेष। कहते हैं कि द्रव्यार्थिकनयसे आत्मा नित्य है। द्रव्यार्थिक नय कहते हैं द्रव्यसामान्यके आलम्बनसे उत्पन्न होने वाले ज्ञानको। पर्यायदृष्टिसे आत्मा क्षणध्वंसी है। यह पर्यायदृष्टि कहाँसे उपजी ? विशेषके आलम्बनसे उपजी। तो नयोंकी माता है सामान्य और विशेष। तो जो सामान्य और विशेषके आलम्बनसे उत्पन्न हुए वे नय गौण और मुख्यकी कल्पनासे इष्ट किए गए हैं। जैसे वस्तु नित्य है तो द्रव्यदृष्टिसे नित्य है, सदा रहती है वस्तु, नित्य है वस्तु, अनित्य है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पुरुषार्थ सिद्धयुपाय प्रवचन

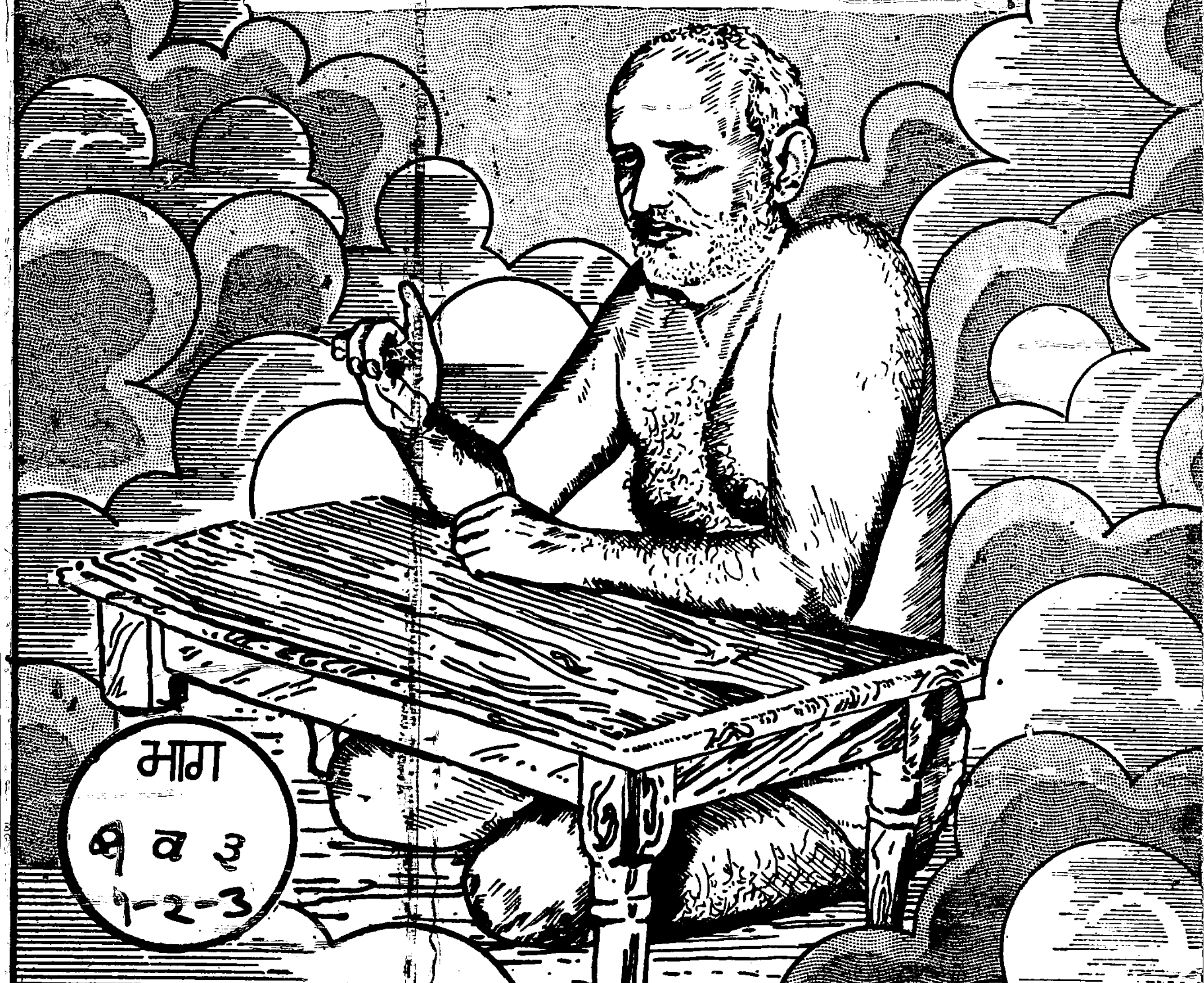

आध्यात्म योगी पूज्य गुरुवर श्री मनोहर जी वर्णी
सहजानन्द जी महाराज

श्री सहजानन्द शास्त्र माला
१८५-ए, रणजीतपुरी, सदर-मेरठ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

का भंग कहलाया। भीतरकी झुकावका अंतर है। तो यहां कह रहे कि हे प्रभो, ये समस्त नय जो सामान्य और विशेष धर्मके बलपर बने हैं वे तब ही इष्ट हैं, तभी कामके हैं, तभी सन्मार्गमें ले जाने वाले हैं जब उनमें गौण और मुख्यकी भावना जगती है। केवल एकान्त रहे तो नहीं।

परस्परेक्षान्वयभेदलिङ्गत: प्रसिद्ध सामान्यविशेषयोस्तव।
समग्रतास्ति स्वपरावभासकं यथाप्रमाणं भुवि बुद्धिलक्षणम् ।६३।

सामान्य व विशेषकी परस्परापेक्षासे प्रमाणताका तंत्र दर्शाने वाले प्रभुका स्तवन—तुम्हारे सिद्धान्तमें यह बताया गया है कि सामान्य और विशेषका, जो कि प्रमाणसिद्ध है, लोग जानते हैं ऐसे सामान्य और विशेषका अन्वय और भेद बननेसे याने अन्वय और भेदके चिह्नसे परस्पर अपेक्षा बनती है। प्रत्येक कथनमें जो अभी कह रहे सो सामान्य और कुछ आगे और बोलेंगे वह विशेष। कुछ आगे और बोलेंगे तो वह विशेष। सामान्य बन गया, अगला विशेष अब विशेष बन गया। तो अन्वय और भेद इन चिह्नोंसे उनकी परीक्षा बनती है। जैसे अभी कोई कहे कि सब जीवोंपर दया करनी चाहिए और सब जीवोंकी रक्षा पर ध्यान देना चाहिए। और वही कहने लगे कि देखो मानवरक्षा करना ही कर्तव्य है तो अब यह दूसरी बात विशेष बन गई और जब यह कहेंगे कि देखो अपने देशवासियोंका ज्यादा ध्यान रखना चाहिए, रक्षा करना चा-

हिए तो जीवरक्षाके सामने मानवरक्षा विशेष है और राष्ट्र-वासियोंके सामने मानवरक्षा सामान्य बन गया। क्यों बन गया कि यहाँ अन्वय है, बहुत पर दृष्टि है, सब राष्ट्रवासियोंका संचय किया मानवरक्षाने और वहाँ भेद किया। तो इसकी जो परस्पर ईक्षा है वह कैसे बनी कि सामान्य और विशेषमें अन्वय और भेदके विशेषसे। सो इसकी जो समग्रता है सामान्य विशेषकी वही स्व और परका अवभासक है। जैसे कि ज्ञानका लक्षण क्या है सही कि जो स्व और परको प्रकट करे, जाने। यहां प्रकरण चल रहा है वस्तुका। वस्तु कैसी है? इतनी खटपट क्यों की जा रही है? बड़ी कठिन बात रखते हैं, समझमें नहीं आता, यह तो सामान्य विशेषकी बड़ी गहरी चर्चा है। सीधा ही क्यों नहीं थोड़ीसी कहानी कह देते? अरे जीवका प्रयोजन है मोह और अज्ञानका मेटना छोटी-छोटी दिलचस्प बातोंमें रह-रह करके जीवन भर गंवाया, पर मोह और अज्ञान न मिटा। उस मोह अज्ञानको मिटानेकी एक मौलिक युक्ति कही जा रही है। प्रत्येक पदार्थको देखो स्वतंत्र है, सदा रहने वाला है, उसकी फैक्ट्री इसीमें है, उससे बाहर कुछ नहीं है, शक्तिपुञ्ज है, पर्यायका आधार है, उसका वही सब कुछ है, दूसरा कुछ हो ही नहीं सकता। मैं सामान्यविशेषात्मक हूं। यह तो आत्मोद्धारमें लगने वालोंकी पहली (प्रारम्भिक) पढ़ाई है अब की। जहांसे एक मौलिक बात चलती

Version 1

है । कैसे समझें कि सब पदार्थ एक दूसरेसे त्रिकाल अत्यन्त निराले हैं ? यह समझमें आये तो मोह कटे । तो उसकी समझ वस्तुस्वरूपके परिज्ञानसे होती है । जैसे वस्तु किसरूप है ? तो हे प्रभु वस्तुका समग्र प्रतिभाससे ही कल्याण बनेगा, ऐसा आपके मतमें स्पष्ट है ।

विशेषवाच्यस्य विशेषणं वचो
यतो विशेष्यं विनियम्यते च यत् ।
तपोश्च सामान्यमतिप्रसज्यते
विवक्षितात्स्यादिति तेऽन्यवर्जनम् ॥६४॥

विशेषण विशेष्य व्यवहारमें विवक्षासे विधि प्रतिषेधका नियोजन प्रकट करने वाले प्रभुका स्तवन—यहाँ प्रभुकी स्तुति की जा रही है । कोई कठिन चक्की नहीं पीसी जा रही । कैसे प्रभुके गुणानुवादमें अपनेको सत्य मार्गकी दृष्टि मिलती है ? स्तवनका प्रयोजन क्या है ? कोई उपलब्धि मिले, खुदको कोई बात प्राप्त हो, यह ही तो सब कार्योंका प्रयोजन है । जैसे कहते हैं कि सब रात पीसा पारेमे उठाया । किसी महिलाने सारी रात चक्की पीसी । जब सवेरा हुआ और उस आटेको समेटा तो एक छोटीसी तस्तरी भर निकला । उसे कहते हैं पारा जो डेग्चीके ऊपर तस्तरी रखी जाय । तो जो धर्मसाधनाके लिए स्तवनमें लगे, समारोहमें लगे, सारे काम किये, स्वागत किया, सब कुछ किया और फल क्या मिला अंतमें कि खुदमें कुछ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

उपलब्धि न हुई, ज्योंके त्यों रहे आये । यद्यपि इसमें भी लाभ है, कुछ मंद कषाय तो होती है, कुछ साधु संतोंपर भक्ति तो जगती है, पर उसका जो मौलिक लाभ है वह भी तो लेना चाहिए । किसलिए कर रहे ? मौलिक बात बने बिना उस सबका फल बहुत थोड़ा रह जाता है । तो यह वस्तुके स्वरूप की बात कही जा रही है । प्रभु आपने ही तो यह स्वरूप बत-लाया, जो सबके उपकारके लिए हो रहा । विशेष वाच्यका विशेषण ही वचन बनता है, क्योंकि उन वचनोंके द्वारा विशे-ष्यका ही ग्रहण होता । वही नियत बनता । जैसे किसी भी पदार्थका नाम तो लो बढ़िया, जो विशेषण न हो और पदार्थ का नाम आ जाय ? किसी चीजका नाम लेकर तो बताओ । आप कहेंगे चौकी । अरे नाम कहाँ लिया, तुमने तो इसमें उस वस्तुकी तारीफ कर दी । जिसमें चार कोने हों सो चौकी । जैसे कोई स्त्री पतिका नाम नहीं लेती, बहुतसी हैं ऐसी स्त्रि-याँ । अब कोई जरूरत थी—मान लो कपूर चाहिये था और पतिका नाम कपूरचंद था तो उसे कपूर नाम लेनेमें शर्म लगने से वह कोई इस ढंगसे बात कहती है कि जिससे दुकानदार उसकी बात समझ जाता है और कपूर दे देता है । तो जैसे वह विशेषण बन गया उस विशेष व्यक्तिकी पहिचानके लिए ऐसे ही जितने भी शब्द हैं दुनियामें, वे सब विशेषण हैं और उनसे पदार्थका बोध होता है । तो उन वचनोंके द्वारा विशेष्य

विनियमित होता है। विनियमित होता है। विशेष्य और विशेषण उन दोनोंका जो व्यवहार बनता है वह सब विवक्षावश बनता है। यह तत्त्व हे प्रभो, आपके सिद्धान्तमें कहा। विशेषणके दो काम होते हैं—एक चीजका ख्याल कराना और बाकीका ख्याल हो जाना। जैसे कहा—नीली धोती ले आवो, तो अब उसके दिमागमें दो बातें आयीं, यह लावो और न लावो। विशेषणका प्रयोजन होता है विधि और निषेध। तो इसी तरह जितने भी वचन हैं वे विशेषण हैं और उनका प्रयोग भला है। एककी विधि करना, बाकीका निषेध करना। तो प्रभु स्याद्वाद तो जिसे कहते हैं रग रगमें बसा है, बात बातमें बसा है। कुछ भी बात बोले—विधि निषेध वहाँ है या नहीं। वही स्याद्वाद, वही अनेकान्त। तो ऐसा तत्त्व हे प्रभो, आपके सिद्धांतमें कहा, जिससे एक व्यवहार बनता और वस्तुके स्वरूपकी परख बनती।

नयास्तव स्यात्पदसत्यलाञ्छिता रसोपविद्धा इव लोहधातवः।
भवन्त्यभिप्रेतगुणा यतस्ततो भवन्तमार्याः प्रणता हितैषिणः।६५।

विवक्षा आशय सहित वचनोंकी अभीष्टद्योतकता दर्शाने वाले प्रभुका संस्तवन—हे प्रभु, तुम्हारे सिद्धान्तमें नय स्यात् पद करके चिह्नित हैं। स्यात् नित्य, स्यात् अनित्य, स्यात्का अर्थ सायद नहीं है, सायद नित्य, सायद अनित्य, ऐसा नहीं है, वह तो मिथ्या है, शंशयवाद है। स्यात्का मजबूत अर्थ है

http://www.jainkosh.org

इस दृष्टिसे नित्यके स्यात्के साथ ही लगा करता है और शायदके साथ भी लगना। अनेकान्तकी मुद्रा भी नहीं, किन्तु 'ही' है। प्रसिद्धिमें तो यों कहते लोग कि नित्य भी है, अनित्य भी है, अनेकान्त बन गया, पर बुद्धिमान जन, आचार्य जन इस बातको महत्त्व नहीं देते। यह 'भी' तो निर्बल चीज है। सबल है 'ही', 'एव'। द्रव्यदृष्टिसे नित्य ही है, रंच भी संदेह नहीं। पर्यायदृष्टिसे अनित्य ही है। कोई संदेह नहीं। अब 'भी' ही' का प्रभाव देखो—जैसे तीन लोग बैठे हैं—पिता, पुत्र और पुत्रका पुत्र। मानो राम (पिता), मोहन (रामका पुत्र) और सोहन (मोहनका पुत्र) ये तीन बैठे हैं। इनमें से मोहनकी बात ले लो। मोहन रामका पुत्र ही है, ऐसा कहा जायगा तो ठीक है। अब इसमें कोई कहने लगे कि मोहनका पुत्र भी है, तो इसमें तो लट्ठमलट्ठ (मारपिटैया) हो जायगी, क्योंकि उसका तो अर्थ यह हो गया कि मोहन रामका और कुछ भी (दादा, बाबा आदि) हो सकता है। तो वहाँ यही कहना होगा कि मोहन रामका पुत्र ही है। अब दूसरी बात ले लो। मोहन सोहनका पिता ही है, ऐसा कहा जाय तो ठीक है। अब कोई कहे कि मोहन सोहनका पिता भी है तो वहाँ भी लड़ाई हो जायगी, क्योंकि उसका तो अर्थ हो गया कि मोहन सोहनका बाबा, बेटा वगैरा भी हो सकता। तो 'भी' में बल नहीं होता, बल होता है 'ही' में। तब ही तो

Version 1

प्राचीन आचार्योंके वचनोंमें 'भी' का प्रयोग कहीं न मिलेगा, बड़े-बड़े ग्रन्थोंमें देख लो। 'ही' मिलेगा स्याद्वादमें। तो प्रभो, नय स्यात् पद करके चिन्हित है। सो ही सत्य है। जैसे रसो पविश्र होकर लोह अभीष्ट गुणयुक्त हो जाता है। हे प्रभु, ये सब इष्ट बातें तभी बनती हैं जब स्यात् पद चिह्नित हो और उनका प्रयोग हो। यह सब आपने बताया इसलिए हितैषी पुरुष, आर्य पुरुष आपका ही सहारा लेते हैं, आपके ही चरणारविन्दमें रहते हैं, नमस्कार करते हैं, भक्ति करते हैं। इस प्रकार विमलनाथकी स्तुति पूरी हुई।

अनन्तदोषाशयविग्रहोग्रहो
विषङ्गवान्मोहमयश्चिरं हृदि।
यतो जितस्तत्त्वरुचौ प्रसीदता
त्वया ततोऽभूर्भगवाननन्तजित् ॥६६॥

तत्त्वरुचिको मोहग्रहविजयका उपाय प्रकट करने वाले प्रभुका स्तवन—अनंतनाथ भगवानके स्तवनमें कहते हैं कि अनन्तनाथ प्रभुके अंतस्तत्त्वकी रुचिके कारण स्वयं इतने स्वच्छ निर्मल हुए कि हे प्रभु तुमने मोहमयी महान् ग्रहको जीत लिया। कैसा है यह मोह महान् ग्रह पिशाच कि अनन्त दोष का अभिप्राय यही जिसका शरीर है। यह मोहकी मूर्तिका नक्शा है। मोहका शरीर क्या है? अनन्त दोषका अभिप्राय, यही मोहका शरीर है। ऐसा यह महान् भयकारी मोहरूपी

ग्रह जो चिरकाल तक हृदयमें बैठा रहा, बैठा ही रहा सबके। प्रभुके भी जब तक अज्ञान था ज्ञानी नहीं हुए, ऐसे उस मोह ग्रहको जीता इसी कारण आप अनंत जिन कहलाते हैं। आपका नाम अनंतनाथ या अनंत जित है, क्योंकि आपने अनंत दोषके आशयका ही है शरीर जिसका ऐसे मोहको पछाड़ा, तो अनंतको पछाड़ा, अनन्त दोषोंको हटाया, इसलिए आप अपराजित कहलाते हैं। इस स्तवनमें कई बातोंपर प्रकाश दिया है। एक तो मोहकी मूर्ति बताया। मोह क्या चीज है? उसका आकार क्या? शरीर क्या? तो उसकी मुद्रा है यह कि जिसका शरीर अनन्त दोषके अनन्त दोषके अभिप्रायरूप है बस यह ही मोह है। अनन्त दोष जहां भरे पड़े हैं उनका संस्कार जहाँ भरा पड़ा है वही मोह है और यह मोह कबसे सता रहा? चिरकालसे। कोई उसकी आदि नहीं। सो उसको आपने जीता कैसे? निर्मल होकर जीता, प्रसन्न होकर जीता। जो पहलेसे ही डर जाय, कांप जाय, कायर हो जाय, अधीर हो जाय वह कैसे जीतेगा? आप निर्भय हैं, निःशङ्क हैं, सही ज्ञानी हैं, इसीसे आपके प्रसन्नता है। इस प्रसन्नताका मूल आधार क्या है कि जो सहज तत्त्व है, आत्माका सहज स्वरूप है उसमें रुचि हुई, प्रीति हुई, यह ही मैं हूं, ऐसा इसको अनुभव हुआ। ऐसे हे प्रभु तुमने इस अनन्त दोषी मोहको जीता, स्तवन किया और इससे अपनेको शिक्षा मिली कि ऐसा ही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

हम करें तो ठिकाना पड़ेगा।

कषायानाम्नो द्विषतो प्रमाथिनामशेषयन्नाम भवानशेषवित्।
विशोषणं मन्मथदुर्मदामयं समाधिभैषज्य गुणैर्व्यलीयनयन् ।६७।

समाधिभैसज्यबलसे कषायवैरियोंका विलय करने वाले प्रभुका संस्तवन—हे अनंतनाथ आपने क्या किया? कषाय नामक बैरियोंको जो इस जीवको सता रहे हैं, किस तरह सता रहे? मथकर सता रहे, उनका सफाया किया, उनका कुछ निशान नहीं रहने दिया, क्योंकि आप अशेषवित् हैं। कषायोंको नष्ट करनेसे आप सर्वज्ञ हुए हैं, और कामका जो दुर्मद है, आमय रोग है खोटा, सो समाधिरूपी भैसज्यके द्वारा उसको भी विलीन किया। कैसे हैं वे? विशोषण, सुखा देने वाला। जिसके यह मन्मथका दुर्मद रोग लग जाय उसको ये सुखा देते हैं। मन्मथ मायने काम विकार। तो प्रभु आपने उस प्रमाथी कषायको अशेष किया, कषाय प्रमाथी है याने जीवको मथ-मथकर बरबाद करने वाली है। अब बतलावो जीव तो भगवानके समान एक शुद्ध चैतन्यस्वरूप है याने अपने आप अपने ही सत्त्वसे सहज चैतन्यस्वरूप है। उसको क्या पड़ी, क्या कष्ट, क्या वेदना, स्वरूपसे देखो तो मेरे लिए कुछ नहीं। पर ऐसा कोई माने उसके लिए कुछ नहीं, जो ऐसा न मान सके उसके लिए सारे संकट हैं। कुछ ऐसा भी समझमें आ सकता इस मोहका उपद्रव कि खुदपर तो उपद्रव छाया है

http://www.jainkosh.org

वह तो जल्दी समझमें नहीं आता, अगर दूसरा गलती करे, दूसरा मोह करे तो कुछ जल्दी समझमें आता कि कुछ लेन नहीं, देन नहीं, किसका कौन? और इतना मोहमें बरबाद हो रहा यह। तो जो बात हम दूसरेके विषयमें जल्दी सोच सकते हैं वैसी ही बात अपने बारेमें जो सोच सके बस वही तो ज्ञानबल है। तो स्वरूपतः हम आप सब कृतार्थ हैं, एक भी संकट नहीं, कुछ भी आपत्ति नहीं। और जहाँ स्वरूपकी दृष्टि हटी और बाह्यमें दृष्टि लगी, संस्कार तो बाट देखता ही रहता है। जैसे ही बाह्यमें ध्यान गया, मकान, पुत्र, वैभव, देह आदिक बाह्य चीजोंमें दृष्टि लगी, बस बरबादी शुरू हो गयी, और जब अपने स्वरूपको ही निरख रहा है तब तक शान्ति रहती है। जैसे आज कोई पुरुष घरमें उत्पन्न हुआ और उसके घरमें जैसे दो-चार जीव हैं, मानो वह इस घरमें न उत्पन्न होता, दुनिया तो बहुत बड़ी है, कहीं अन्यत्र उत्पन्न होता तो इसके लिए फिर यहाँका जिस परिवारमें रह रहे उसका ख्याल भी आता क्या? तो सारहीन बात तो है ही, लेकिन उस सारहीन बातमें न फँसें, आकुलित न हों और अपने विशुद्ध आत्मस्वरूपकी दृष्टि रहे यह बात यथार्थ तत्त्व-ज्ञानका दृढ़तम अभ्यास हो तो बनती है, नहीं तो अभी तक मरते चले आये यहां तो किसी अनिष्टको देखकर गाली दे दी, कहाँका मरा आ गया, और यह गाली अपने पर नहीं घटती

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

क्या ? कहांका मरा आ गया ? मरता ही तो गया। मरण किया, जन्म किया। कहांका मरा मरता मरता आया। तो अपने आपके स्वरूपका दृढ़तम अभ्यास हो तो मोह मिटे।

शिवपथगमनके लिये मोह व कामका विलय करनेकी प्रथम आवश्यकता—मोहमें मिलता कुछ नहीं, कभी नहीं मिलता, जीवन व्यतीत हो रहा, मरणके निकट आ रहे, प्रथम तो हट्टे-कट्टेका भी विश्वास नहीं, और जहां उम्र ज्यादा होती है वहाँ तो मरण निकट है। तो मरणके तो निकट हैं और मोहकी सूझ लगी है, तो ऐसा तो अनादिसे ही करता चला रहा है जीव। कोई बुद्धिमानीकी बात इस भवमें न कर सका। ये कषाय बैरी इस तरहसे इस जीवका प्रमथन करने वाली है। उसका संघर्ष और उसका समाप्त करना ही प्रभु आपका काम है। और फिर द्वितीय पंक्तिमें कह रहे हैं कि कामदेवके दुर्मद आमयको भी समाधिबलसे विलीन कर दिया, ऐसा है विशेषण। काम कषायसे कुछ अलग चीज नहीं है। कषायमें ही काम गर्भित है, पर लोगोंपर इतना हावी है यह काम कि आचार्योंको चार कषायोंका नाम लेकर भी काम को अलगसे कहना पड़ा। काम, क्रोध, मान, माया, लोभ। काम कुछ अलग है क्या कषायसे ? लेकिन इस कामका इतना वजन है, इतना तौल है कि चारों कषायें भी इकट्ठी कर दें फिर भी कामका वजन ज्यादा रहता है, इसीलिए इस काम

को कषायसे अलग कहनेकी पद्धति चली आयी। इस कामको हे प्रभो, आपने समाधिरूपी अग्निके द्वारा विलीन कर दिया। प्रभुका हम जो गुणानुवाद करते हैं उससे हम यह शिक्षा लेते जायें कि जो प्रभु आपने किया सो हम कर सकते और जो आपने किया वही हम करें तो हम संकटोंसे पार हो सकते हैं अन्यथा नहीं।

परिश्रमाम्बुर्भयबीचिमालिनी
त्वया स्वतृष्णासरिदार्य शोषिता।
असंगधर्मार्कगभस्तितेजसा परं
ततो निर्वृतिधाम तावकम् ॥ ६८ ॥

असंगता द्वारा तृष्णा नदीका शोषण कर देने वाले परम आत्माका स्तवन—हे प्रभो, तुमने तृष्णारूपी नदीका शोषण कर दिया याने तृष्णा नदीमें जलकी बूंद न रही, तृष्णाका सफाया कर दिया। कैसी है वह तृष्णा नदी कि उसमें परिश्रमका तो जल भरा है, जैसे नदीमें तो जल भरा होता और यहां तृष्णारूपी नदीमें काहेका जल भरा है ? परिश्रमका अर्थात् यह तृष्णा परिश्रमसे बनी हुई है। तृष्णामें परिश्रम करना ही होता, परिश्रमसे ही तो तृष्णा बनी और परिश्रम ही तृष्णाका फल है, विकल्प करना परिश्रम ही तो है। दिलमें ज्यादा विचार लाना यह परिश्रम ही तो है, और शरीरका श्रम करे वह भी श्रम है। तो विकल्प करना स्वरूप

Report any errors at vikasnd@gmail.com

से च्युत होना यह बहुत बड़ी कवायत, व्यायाम, कसरत है, नहीं तो आत्मा आनन्दमय है, आनन्दमें रहे। अपना स्वरूप जैसा है वैसा ही अपनेको रखे तो कौनसा कष्ट है? कौनसा उपद्रव है? कौन लाठी मार रहा कि तुम इसे मानो कि यह मेरा है? और लाठी मारकर कोई मान नहीं सकता कि यह मेरा है। खुद अज्ञानी बनकर ममता करते हैं और दुःखी होते हैं। जब अन्त समय आ जाता है तो मर जाते हैं, उपलब्धि कुछ नहीं हो पाती। यह अध्यात्मदर्शन सारे परिश्रम दूर करनेका साधन है। कोई पुरुष दिनमें १० घंटे परिश्रम करके और ढीला शरीर करके पड़ जाता है, ऐसा करना ही पड़ता है तब उसकी थकान दूर होती है। तो यह आत्मा तो अनादि से विकल्प कर-करके खूब थक गया है, यों ही थक गया है और थके हुएकी ये दशायें हैं, कीड़ा बना, मकौड़ा बना, अनेक बार बना तो इसकी यह थकान मिटे कैसे? इस मनुष्यके दिन भरका विकल्प करके, परिश्रम करके जो थकान आयी है उसका मिटाना, यही है अध्यात्मदर्शन। जहाँ विकल्पसे रहित निज अंतस्तत्त्वकी दृष्टि बनी कि सारी थकान दूर। तो यह थकान, यह विकल्प इससे तृष्णानदीका पूर हो गया, सो हे प्रभु, आपने इस तृष्णानदीका शोषण किया। नदीमें लहरें उठती हैं। तो तृष्णाकी नदीमें काहेकी लहरें हैं? भयकी। जहाँ तृष्णा है वहाँ भय है और ये भयकी लहरें उठ-उठकर इस नदीको तरेड़

मरेड़ देती हैं। तो जहाँ परिश्रमका जल भरा और भयकी लहरें जहाँ चल रहीं, ऐसा अपने आपमें उत्पन्न हुई तृष्णारूपी नदी हे आर्य तुमने शोषित कर दिया। काहेसे शोषित किया? कुछ उपाय तो बताओ। तो कहते हैं कि असंग सूर्यकी तीक्ष्ण किरणोंके द्वारा। गर्मीके दिनोंमें नदी कैसी ही सूख जाय, जहां यह भी न पता पड़े कि यहां नदी रही होगी, तो आपने उस परिग्रहरहित सूर्यकी किरणोंके तेजके द्वारा उस तृष्णा नदी को शोषित किया, इसी कारण आपका अब निर्वृत्ति धाम हुआ, जो उत्कृष्ट है वह निर्वाण स्थान हुआ।

तृष्णानदीके शोषणका उपाय करने वालेके प्रति तृष्णा पारेच्छुकी रुचि—यह तृष्णा नदी सूख सकती है तो निसंगतासे ही सूख सकती है। निर्लोभता, निसंगता, सर्वविविक्तता, केवल चिन्मात्र अपने आपको अनुभव करना बस इस भीतरी भावनासे ही यह तृष्णानदी सूख सकती है। जो किनारे पहुंच जाता है नदीके उस पार है इस पार रहने वाला उस पार वालेसे बड़ी आशा रखता है, उस पार पहुंचे हुएसे बड़ी भक्ति रखता है। यह पहुंच गया उस पार। कुछ उसे सफल देखता है। लौकिक पुरुषोंकी भी ऐसी आदत है सो सुना रहे। जो नदीके उस पार पहुंच गया पैदल चल-चलकर, उसी तरह पहुंचनेका जहां साधन है, तो उस पार पहुंचे हुए को यह शाबाशी देता है, मनमें उसके प्रति अच्छा विचार रहता है।

Version 1

पार हो गए, चले गए, संकटसे हट गए और फिर उनकी पूछ करते हैं कि कहांसे पार हुए, चले गए, किस किस गली से गए ? फिर उनका अनुकरण करते हैं। तो ऐसे ही संसार रूपी महानदीसे पार हो गए प्रभु। सो जो उस पार पहुंचना चाहता है, संसारके पार लगना चाहता है सो उस प्रभुके प्रति बड़ी भावना रहती है। किस गैलसे गए, कैसे गए ? सब बखान करते हैं। किसी भी जगहका, पदका कोई नेता हो, जब तक वह अपनेको जरूरत नहीं अनुभव करता है कि हमें ऐसा ही होता है तब तक उसके लिए वह टूटा हुआ ऊँचा है। हैं, जान लिया, अच्छे हैं, ऊँचे हैं, और जब उसपर चलनेकी बात आयी, प्रयोगमें जब अनुभव होता उस पद पर पहुंचने वालेका कैसा साहस, कैसी चर्या, कैसा भाव, कैसे गए ? तो अनुभव होता है। जैसे एक कहावत है कि बंध्या क्या जाने गर्भिणीकी प्रसव वेदनाको। सुनते हैं सब कि बड़ी वेदना होती है। लोग भी कहते हैं कि उसका पेट चीरकर (आपरेशन करके) बच्चा निकला, कुछ उसके दर्दके प्रति चिक चिक भी मुखसे कर लेंगे, मगर वह बात न आ पायगी, उस वेदनाका वैसा अनुभव न हो पायगा जैसा कि उस स्त्रीको होता है। अभी किसीके पैरमें बेवाई फटी हो काफी बड़ीसा, तो भले ही उसकी कुछ बात कर लेवें, पर उसकी वेदनाका सही अनुभव

नहीं हो सकता। खुदके पैरमें जब बेवाईं फटे तब सही पता पड़े दूसरेकी फटी बेवाईंका। तो जिसको संसारके उस पार पहुंचनेका भाव है वह सब अनुभव करता हुआ चलता है। प्रभुने क्या किया ? कैसे गए फिर तो उसके चरित्रकी बात सुननेकी भी दिशा बदल जाती है। और इस तरह सुनना चाहते हैं, फिर प्रभुके चरित्रको कि जिस तरहसे हमें भी चलना है, यह बात चित्तमें भरी रहती है। क्या क्या किया प्रभुने ? अपना कोई मित्र हो, पार्टीका हो, कहीं कुछ काम आ गया हो, उसकी कोई खबर लाया हो तो कैसी रुचिसे पूछते हैं—कहां पहुंच गया, क्या हुआ ? तो अपने ही तो हैं प्रभु। वही मार्ग तो चलना है, वह पहले चले गए, हम जरा देरसे चेते, देरमें जायेंगे, पर काम तो मेरा प्रभु होनेका है, दूसरा तो प्रोग्राम हो नहीं है, है ही नहीं। होना हो न चाहिए।

निजको निज परको पर जानकर परकी चिन्ता त्याग कर निजाभिमुख होनेमें ही लाभका संदर्शन—भैया! प्रभुता की ओर दृष्टि देना, झंझटोंकी चिंता नहीं करना। संसारमें झंझट अनेक हैं, सैंकड़ों झंझट लगे हैं। मानो १०० झंझट लगे थे, चलो एक झंझट और लग जाय, क्या फर्क पड़ता है। ऐसा चित्त बने। झंझट कम होनेकी बात क्यों सोचते हो ? जो झंझट कम होनेकी बात सोचता है वह झंझटसे डर रहा है तो वह झंझटसे पार ही नहीं होता। हम नोति न्याय

Report any errors at vikasnd@gmail.com

पर हैं, और दो झंझट आ जायें, क्या है ? परपदार्थके परिणमन हैं, उसमें इसने विकल्प लगा लिया। सो जिस ही समय हम अपना उपयोग वहाँसे खींचेंगे तो सैंकड़ों झंझट हैं तो सैंकड़ों भी टूट जायेंगे। सब झंझटोंको मिटा डालनेकी बूटी तो अपने पास है। कितने ही झंझट आयें, पर कायर भी बने रहें और ऐसी बात भी बोलें तो असर नहीं होता भीतर। पक्का प्रोग्राम हो कि हमें तो अपने पथपर जाना है, उसके लिए दुनियाका कोई झंझट नहीं है। तो यह तृष्णानदी हे प्रभु, आपने शोषित की। और वह भी निष्परिग्रहतारूपी सूर्यके किरण तेजसे। इसीलिए आपका धाम बड़ा उत्कृष्ट है, जहाँ आप रहते हैं।

सुहृत्त्वयि श्रीसुभगत्वमश्नुते द्विषंस्त्वयि प्रत्ययवत्प्रलीयते।
भवानुदासीनतमस्तयोरपि प्रभो परं चित्रमिदं तवेहितम्।६९।

भक्त और विरोधीमें प्रभुके उदासीनपना होनेपर भी प्रभुभक्तकी स्वयं सुगमता व प्रभुविरोधीकी प्रलीनता होनेके आश्चर्यके वातावरणमें प्रभुका स्तवन—हे नाथ जो तुममें मित्र बनता है अर्थात् जो आपसे प्रेम करता है, भक्ति करता है वह तो श्री सुगमताको प्राप्त होता है। लक्ष्मी, धन वैभव, मनोज्ञता इन सब बातोंको भोगता है, जो आपमें राग करता, प्रीति करता, प्रशंसा करता, सेवा करता, आपकी ओर मित्र सा रहता वह तो हो जाता है सुभग, लक्ष्मीवान और जो

http://www.jainkosh.org

आपमें द्वेष करता है वह प्रत्ययकी तरह मिट जाता है। शब्द और धातुवोंमें प्रत्यय लगाया जाता है तब वह प्रयोगके योग्य होता है। तो कुछ प्रत्यय ऐसे होते हैं कि जिनका पूरा विनाश हो जाता है, पूरा मिटा देता है तो फिर प्रत्यय ही क्यों लगाते ? बस लगे और मिटे, उसीसे ही शब्द बन गए। कई शब्द हैं ऐसे, जैसे कृत, अंतकृत, कृञ धातु है, उससे कृ या और कोई प्रत्यय जोड़ दिया, बादमें मिटा दिया तो उससे वे अपशब्द कहलाने लगे, नहीं तो पहले धातु कहलाते थे। कुछ प्रत्यय तो लगे रहते हैं। जैसे कुम्भकार, कार कृ धातुसे क प्रत्यय लगा, कार बन गया, कृयमें य का लोप हुआ, कृ भर रहने दिया तो कार बन गया। कुछ प्रत्ययका थोड़ा रख लेते और छोड़ देते और कुछ प्रत्यय लगाते और पूरा मिटा देते, उस प्रत्ययके कारण पूरे शब्द आ जाते हैं। तो जैसे प्रत्यय पूरा मिट जाता है ऐसे ही जो आपकी भक्तिमें द्वेष करता है, आपके खिलाफ करता है वह प्रत्ययकी भाँति मिट जाता है, लेकिन आश्चर्य तो यह है कि आप दोनोंमें उदासीन हैं। तारीफ आपकी यह है कि न आपको मित्रमें राग जगता है और न उस द्वेषीसे आपको बैरभाव जगता है। सो हे प्रभु तुम्हारी चेष्टा बड़ी अद्भुत है, बड़ा आश्चर्यकारी है कि ऐसी-ऐसी तो बातें हो रहीं, आपको सारी सुविधायें हैं, चलो आप अपने भक्तोंसे राग कर लें, मौज ले लेवें, बहुतसे लोग तो

Version 1

आनन्द लूटते हैं या जो आपकी निन्दा करता है उसको थोड़ी सी फूंक मार दें तो वह तो भस्म हो जायगा। आप तो बड़ी ऋद्धि सम्पन्न हो, मगर आश्चर्य है कि आप दोनोंमें उदासीन हो। न तो अनुरागीसे आपको राग है और न द्वेषीसे आपको विरोध है। यह ही आपकी गम्भीरता है। प्रभुके ऐसे गुण-स्मरण कर अपने आपमें उसी तरहका ध्यान रखना चाहिए।

त्वमीदृशस्तादृश इत्ययं मम प्रलापलेशोऽल्पमतेर्महामुने।
अशेषमाहात्म्यमनीरयन्नपि शिवाय संस्पर्श इवामृताम्बुधेः ।७०।

प्रभुभक्तिके रुचियाके कल्याणकी सिद्धि—हे महामुने जो भी मैं कुछ प्रलाप कर रहा हूं, बक रहा हूं कि तुम ऐसे हो, तुम वैसे हो, यह सब प्रलाप है। सो प्रलाप भी तो पूरा नहीं कर पाते, वह भी लवलेश है, लेकिन फायदा तो हो रहा इसका। हम आपके सारे माहात्म्यका वर्णन भी नहीं कर पा रहे, लेकिन यह सब हमारे कल्याणके लिए हो रहा। जैसे अमृतसमुद्रका थोड़ा भी स्पर्श हो जाय तो वह कल्याणके लिए है। इससे यह सब भक्तिकी ही तारीफ है। प्रभुको ओर स्मरण करता हुआ कुछ भी यदि वह यथार्थ बोल न सके तो भी उसका भला हो जाता है। इस तरह हे प्रभु तुम्हारा स्तवन यह सब मेरे कल्याणके लिए होवो।

धर्मतीर्थमनघं प्रवर्त्तयन् धर्म इत्यनुमतः सतां भवान्।
कर्मकक्षमदहत्तपोऽग्निभिः शर्म शाश्वतमवाप शङ्करः ॥७१॥

कर्मकक्षका दहन कर शाश्वत आनंदलाभका तथ्य प्रयोग से प्रकट करनेके कारण प्रभुकी धर्मरूपता—हे धर्मनाथ प्रभो आप सज्जन पुरुषोंके द्वारा बुद्धिमान जनोंकी दृष्टिमें धर्म हैं, इस तरहसे माने गए, क्योंकि आपने पापरहित धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति की। धर्मनाथ नाम क्यों पड़ा कि धर्मकी प्रवृत्ति की। और तप रूपी गुणोंके द्वारा कर्मोंकी कक्षाओंको याने सब प्रकारके इन कर्मोंको जला डाला, इस कारण आपने शाश्वत् अविनाशी सुख प्राप्त किया, इसलिए आप शंकर हुए। शं मायने सुख, जो उसको उत्पन्न करे उसका नाम है शंकर। इस छंदमें एक तो धर्मनाथके नामकी निष्पत्ति बतायी है। निर्दोष धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति की, धर्मतीर्थ तो वही है जो निर्दोष है, पापरहित है। जहां रंचमात्र भी पाप है वह धर्मतीर्थ नहीं कहला सकता। तो धर्मतीर्थको प्रवृत्ति की, अतएव आप बुद्धिमानोंकी दृष्टिमें धर्मनाथ इस प्रकारसे माने गए। तीसरी बात यह कही जा रही है कि तपरूपी अग्निके द्वारा कर्मकक्षको जलाया, कर्मोंकी भी कक्षायें हैं। जो ज्ञानावरणादिक ८ प्रकार के कर्म हैं वे कक्षायें हैं, उनसे भी कठिन कक्षायें हैं घातिया कर्मकी। तो आपने तपरूपी अग्निके द्वारा कर्मकक्षाओंका सहन किया और शाश्वत सुखको प्राप्त किया, इसी कारण आप शंकर कहलाये।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

देवमानवनिकायसत्तमैरेजिषे परिवृतो वृतो बुधैः ।
तारकापरिवृतोऽतिपुष्कलो व्योमनीव शशलाञ्छनोऽमलः ।७२।

प्रभुकी सर्वाभ्यर्चितता—हे प्रभु, आप उत्तम देव और मानवोंके समूहके द्वारा घिरे रहे, शोभा प्राप्त कर रहे और जो बुद्धिमान जन हैं विद्वान् गणधर आदिक उनके द्वारा आप घिरे रहे, सो ऐसे शोभायमान हुए कि जैसे पूर्ण चन्द्रमा, निर्दोष चन्द्रमा आकाशके तारों द्वारा घिरा हुआ रहता है । भगवानके समवशरणमें भी चारों ओर गोल सभायें रहती हैं, इसलिए देव और मानवोंके समूहसे आप घिरे हुए रहते हैं, और जो विद्वज्जन हैं, विद्याके रुचिया हैं उनके द्वारा आप सतत अपेक्षनीय रहे, इसलिए आप ऐसे शोभायमान रहे जैसे कि पुष्कर चंद्रमा तारकाओंसे घिरा हुआ रहता है । वह आकाशमें घिरा रहता है । प्रभु भी आकाशमें ही घिर रहे, क्योंकि समवशरण पृथ्वीपर नहीं बनता, क्योंकि उतनी जगह ही कहाँ पृथ्वीपर जहाँ समवशरण बनाया जा सके । समवशरण होता है १०-१२ कोशके विस्तारमें और इतना बड़ा मैदान कहीं होता नहीं, तो कुछ ऊँचे आकाशमें बनता है । समवशरणकी रचना बनती है तो चारों ओर सीढ़ियाँ रहती हैं । सीढ़ियाँ भी बड़ी सुखद, और भक्तिके भावसे जाने वालोंको पता ही नहीं पड़ता, एक ऐसा अतिशय है कि उन सीढ़ियोंपर आराम से झट ऊपर चढ़ जाते हैं । तो चारों ओर सीढ़ियाँ रहती हैं

http://www.jainkosh.org

नीचेसे ऊपर तक और कुछ ऊपर ५ हजार धनुष ऊपर वहाँ समवशरणकी रचना होती है, और उसमें अनेक शृङ्गारकी रचनायें, ध्वजाओंकी रचनायें, चैत्यालयोंकी रचनायें ऐसा घेर घारकर सबसे बीचमें गंधकुटी होती है और उसके चारों ओर सभा होती है । गोल सभायें रखनेका कारण वहाँ यह था कि सभी लोग चाहते हैं कि भगवानके मुखके दर्शन होते रहें । तो हर एक लोग सामने ही आते । कोई पीछे बैठना पसंद नहीं करता, किन्तु वहाँ ऐसा अतिशय है कि चारों ओर मुख दिखता है । कुछ ऐसी ही समवशरणकी रचनाकी विधियाँ हैं कि यह अतिशय प्रकट हो जाता है । तो चारों ओर सब सभामें बैठ गए और उपदेश सुनते हैं । तो इस तरह प्रभु देव और मानवके समूहसे घिरे हुए रहते हैं ।

प्रतिहार्यविभवैः परिष्कृतो देहतोऽपि विरतो भवानभूत् ।
मोक्षमार्गमशिषन्नरामरान्नपिशासनफलैषणातुरः ॥७३॥

प्रातिहार्यवैभवसे परिष्कृत होनेपर भी देह तकसे भी विरक्तता होनेका दर्शन—भगवान प्रातिहार्यके विभवसे परिष्कृत रहे, शृङ्गार शोभित रहे, फिर भी आप इस देहसे विरक्त थे । यहाँ दो बातें कही जा रही हैं कि यह तो बड़े सुन्दर प्रातिहारी वैभवसे युक्त थे और वास्तवमें आप देहसे भी वि-
रक्त थे । यहाँ दो बातें कही जा रही हैं कि यह तो बड़े सुन्दर
प्रातिहारी वैभवसे युक्त थे और वास्तवमें आप देहसे भी वि-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रक्त थे। प्रातिहारी क्या चीज कहलाती? प्रतिहारोंके द्वारा जो रची जाय, सो प्रातिहारी। प्रतिहार इन्द्र। बड़े-बड़े बुद्धिमान कलाकार ऋद्धि सम्पन्न देव देवेन्द्रों द्वारा जो चीज रची जाती है वह प्रतिहारी है। जैसे प्रातिहारी बताया गया कि अशोक वृक्ष हो, उत्तम सिंहासन हो, तीन छत्र ऊपर ढुले, चमर ढुले, भामण्डल हो, दिव्यध्वनि खिरे, पुष्पवर्षा होना आदिक, इनका प्रबंध इन्द्रों द्वारा होता है तब सबसे उत्तम शोभा रहती है। तो इतनी शोभाके बीच हैं आप। बड़े-बड़े मणि रत्न जवाहरात बड़ी ऊँची कीमती चीजें उन सब सिंहासनोंमें लगे रहते हैं। तो ऐसे बड़े वैभवसे आप परिष्कृत हो, फिर भी आप शरीरसे भी विरक्त हो। इसमें पुण्य और वैराग्य दो का महत्त्व बताया है। सर्वाधिक पुण्य तीर्थंकरोंके प्रकट होता है, वैसे पुण्यवानोंमें चक्रवर्ती और इन्द्र महान माने गए हैं, पर ये भी जिसकी पूजा करें, जिसकी उपासना भक्ति करें तो वह सारा पुण्य, सारा शृङ्गार, सारी शोभा सब प्रभुकी समझ लीजिए। तो पुण्य संपदा समवशरणमें सबसे बड़ी सम्पदा है, पर उस सम्पदाके बीच रहते हुए भी हे प्रभु आप देहसे भी विरक्त थे।

मोक्षमार्गका उत्तम उपदेश देकर भी शासनफलकी एषणासे राहित्यका दर्शन—आपने मोक्षमार्गका उपदेश दिया देवोंको, मनुष्योंको, लेकिन आप उपदेशके फलकी चाहसे व्याकुल न थे, कोई इच्छा भी न थी। कोई भी उपदेश देता है लोकमें छद्मस्थ जीव तो उपदेश किसी पीड़ावश ही देता है, रागकी पीड़ाकी मनमें बात आयी, किसी न किसी अंशमें वेदना तो हुई उस वेदनाका प्रतिकार बनता है उपदेश। तो उपदेश करने वाला भी कोई न कोई अंशमें आतुर रहता है, लेकिन आपने इतना सत्य दिव्य उपदेश दिया इस संसारमें भटक रहे प्राणियोंको कि वे ऐसा सत्यमार्ग पा जावें कि जिससे सदाके लिए समस्त संकटोंसे छूट जायें। आपने ऐसा उपदेश दिया फिर भी उपदेशके फलकी चाहसे आपमें रंच भी आतुरता न थी। भव्य जीवोंके भाग्यसे और प्रभुके वचनयोगसे दिव्यध्वनि खिरती है, उससे ही लोग अपनी-अपनी योग्यता माफिक उपदेश प्राप्त कर लेते हैं। तो इस द्वितीय पंक्तिमें यह बतलाया कि आपमें उपदेश करने तककी भी चाह न थी और उपदेश इतना ऊँचा होता था कि जिससे संसारके प्राणी समस्त संकटोंसे दूर होनेका मार्ग पा सकें।

कायवाक्य मनसां प्रवृत्तयोनाऽभवंस्तव मुनेश्चिकीर्षया।
नासमीक्ष्य भवतः प्रवृत्तयो धीर तावकमचिन्त्यमीहितम् ।।७४।।

इच्छाके बिना योगोंके प्रवर्तनका दर्शन—हे मुने, आपके शरीर, वचन और मनकी प्रवृत्तियाँ भी हुईं, १३वें गुणस्थानमें योग होता है और तीनों योग होते हैं—मनोयोग, वचनयोग और काययोग। तो काययोग तो एक अचेतन द्रव्यकी ही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

चीज है। वचनयोग भी अचेतन है, द्रव्यकी ही चीज है। मन दो प्रकारका होता है—द्रव्यमन और भावमन। तो आपके द्रव्य मनोयोग था, भाव मनोयोग न था, जहाँ केवलज्ञान प्रकट हो जाता है वहाँ मनसे ऊँची स्थिति हो जाती है, मनसे परे। वहाँ मनकी प्रयोजकता नहीं रहती, फिर भी चूंकि द्रव्यमन है, मनोवर्गणायें आती रहती हैं इसलिए मनोयोग माना गया है। तो हे मुने, तुम्हारी मन, वचन, कायकी प्रवृत्तियाँ तो हुईं, पर करनेकी इच्छासे न हुई थीं, चिकीर्षा आपमें रंच न थी। तो जैसे लोग कुछ चाह न रखें और परिश्रम करें, यह तो नहीं देखा जाता, लेकिन आपके चित्कीर्षा रंच भी न थी और योग होते रहे। तो यह सब एक जो निष्पन्न योग होता है, केवलज्ञानी पुरुष होते हैं उनके विपाकवश मन, वचन, कायकी चेष्टायें होती हैं, किन्तु उसमें उपयोग नहीं होता, क्योंकि परमातमा हो गए। अब तो स्वच्छ ज्ञानोपयोग ही चलता है, इसी प्रकार हे प्रभो, आपकी प्रवृत्तियाँ तो हुईं, मगर बिना विचारे नहीं हुईं। लो पहले तो बताया कि विचारके नहीं हुईं और अब बतलाया बिना विचारे नहीं हुईं, तो इन दोनों ही बातोंका सही सम्बंध है। बिना विचारे प्रवृत्ति होना हल्की बात कहलाती है। बिना ही विचारे प्रवृत्ति हो गई। कुबुद्धिसे प्रवृत्ति होनेको बिना विचारे प्रवृत्ति करना कहलाते हैं, सो यह भी न था और विचार करनेकी भी बात न थी, क्योंकि इच्छा

हो तो विचार करनेकी बात बने। तो हे प्रभु आपकी प्रवृत्ति बिना विचारे नहीं हुई। सो कहते हैं कि हे प्रभु आपका काम, आपकी चेष्टा, आपकी परिणति अचिन्त्य है। बिना विचारे हुई सो भी ठीक नहीं, विचारकर हुई सो भी ठीक नहीं। तो फिर कैसे हुई ? कोई तीसरी बात भी नहीं कही जा सकती। तो आपकी समस्त चेष्टायें अचिन्त्य हैं।

मानुषीं प्रकृतिमभ्यतीतवान् देवतास्वपि च देवता यतः।
तेन नाथ परमासि देवता श्रेयसे जिनवृष प्रसीद नः ॥७५॥

प्रभुकी देवाधिदेवता—हे प्रभु, आप मानवीय प्रकृतियोंसे अतीत हो गए। मनुष्योंकी जो प्रकृतियाँ होती हैं—विचारना, करना, रागद्वेष, चिन्तवन, भावना, इन सब प्रकृतियोंसे आप ऊँचे उठ गए। मनुष्य होकर भी आप मानवी प्रकृतिसे ऊँचे उठे हुए थे। और देवताओंमें भी आप परम देवता थे मायने देवताओंमें जो प्रकृति होती है उससे भी ऊँचे उठे आप देवता थे। मनुष्योंकी ओरसे उत्कृष्ट मनुष्य, देवताओंकी ओरसे उत्कृष्ट देवता आप रहे। सो हे नाथ आप परम देवता हो, देवाधिदेव हो। देवोंके भी अधि (ऊंचे उठे हुए) देवको देवाधिदेव कहते हैं। जिसके चरणोंमें सब देव आकर नमस्कार करते हैं ऐसे आप परम देवता हो, सो हे प्रभु, हे जिनेन्द्र, हे धर्ममूर्ति, हमारे कल्याणके लिए हमसे प्रसन्न होवो। भक्तिमें ऐसा गुणानुवाद चलता है। भगवान कहीं प्रसन्न नहीं होते, खेद खिन्न भी नहीं

होते । कैसी अलौकिक स्थिति है कि वहाँ ज्ञान ही ज्ञान चमक रहा है । शुद्धज्ञान, जाननहार, न किसीकी ओर राग, न किसी की ओर द्वेष । ऐसे परम वीतराग हो फिर भी जो आपकी भक्ति करते हैं वे भक्तिके प्रसादसे अपना कल्याण पा ही लेते हैं । तो हे भगवान आप हमपर प्रसन्न होवो, हमारे कल्याणके लिए होवो । भक्ति हो, प्रसन्न हों, निर्मल हों, यही प्रभुका प्रसाद कहलाता है । तो प्रसन्नता तो भक्तिकी और व्यवहारमें कहा जाता है कि प्रभु आपकी प्रसन्नतासे मेरा कल्याण हो । जैसे करतूत तो हुई भक्त की, पर भक्तिमें कहा जायगा कि आपकी ही करतूत है, आपका ही कर्तव्य है, आपका ही आशीर्वाद है । तो हे प्रभु आप प्रसन्न होवो और मेरा कल्याण होवे ।

इस प्रकार धर्मनाथ प्रभुकी स्तुति समाप्त हुई ।

विधाय रक्षां परितः प्रजानां
राजा चिरं योऽप्रतिमप्रतापः ।
व्यधात्पुरस्तात्स्वत एव
शान्तिमुर्निर्दयामूर्तिरिवाघशान्तिम् ॥७६॥

कारुण्यमूर्ति—शान्तिनाथ भगवानकी स्तुतिमें कह रहे हैं कि हे प्रभु शान्तिनाथ आपने क्या किया था, उसका चित्रण इस छंदमें है । जिन्होंने चारों ओरसे प्रजाजनोंकी रक्षा की और रक्षा करके चिरकाल तक अनुपम प्रताप वाले आप रहे । इस प्रथमपंक्तिमें यह चित्रण किया है कि हे प्रभु आप चक्रवर्ती

थे और राज्यमें सारे इस भरत क्षेत्रकी रक्षा की थी । इसीलिए आपका नाम जगन्नाथ है । जैसे जगन्नाथ पुरी बहुत प्रसिद्ध है, वहाँ शान्तिनाथ भगवानकी प्रतिमा होनेसे जगन्नाथ पुरी नाम पड़ा । तो जगन्नाथके मायने हैं शान्तिनाथ । क्योंकि वे चक्रवर्ती थे, छः खण्डके अधिपति थे । तो वे संसारके स्वामी कहलाये । तो जिन्होंने प्रजाकी बड़ी रक्षा की और रक्षा कर बड़े प्रतिज्ञ प्रताप वाले हुए याने जिसके प्रतापका कोई अनुमान न हो सकता हो और फिर एक दयामूर्ति बनकर स्वयं ही एक शांतिको उत्पन्न की और पापकी शांतिको किया । इसमें दो चित्रण हैं—पहला तो प्रजाकी रक्षा की, चक्रवर्तित्व प्राप्त किया और फिर दयामूर्तिकी तरह पापोंको शान्तिको किया । इसके पश्चात् निर्ग्रन्थ दीक्षा ली, छः कायके जीवोंकी रक्षा की और अपने समस्त पापोंको नष्ट किया । सभी कर्म आपने नष्ट किया है । तो पहले घातिया कर्म दूर किया । इन घातिया कर्मोंको पापकर्म कहते हैं । घातिया कर्मकी जितनी भी प्रकृतियाँ हैं वे सब पापकर्म हैं और अघातिया कर्मकी प्रकृतियोंमें कुछ पाप प्रकृतियाँ हैं और कुछ पुण्य प्रकृतियाँ हैं । सो आपने पापोंकी शांति की । इससे यह ध्वनित हुआ कि आप अरहंत देव हुए ।

चक्रेण यः शत्रुभयंकरेण जित्वा नृपः सर्वनरेन्द्रचक्रम् ।
समाधि चक्रेण पुनर्जिगाय महोदयो दुर्जयमोहचक्रम् ॥७७॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

प्रभुका चक्राधिपतित्व—आपने शत्रुवोंको भय उत्पन्न करने वाले चक्रके द्वारा समस्त नरेन्द्रोंके समूहको जीता, इसमें चक्रवर्तीपना स्पष्ट है। चक्रवर्तियोंको एक ऐसे विशेष चक्ररत्न की सिद्धि होती है कि इसके द्वारा सभी नरेन्द्र वश हो जाती हैं, क्योंकि एक यही ऐसा शस्त्र है कि जो सिर्फ अपने कुटुम्बी जनोंको छोड़कर कहीं निष्फल नहीं जाता। और उसीसे ये चक्रवर्ती कहलाते हैं। जिसको चक्र रत्नकी सिद्धि हुई वह चक्रवर्ती, और ऐसा चक्र नारायणके भी होता है और इसीसे श्रीकृष्ण नारायणके हाथमें चक्रकी फोटो होती है। श्रीकृष्ण नारायण थे, वे अर्द्धचक्री थे, नारायण अर्द्धचक्री कहलाते अर्थात् वे तीन ही खण्डके अधिपति होते, विजयार्द्धके उस तरफके खण्ड रह जाते हैं। तो हे प्रभु आप छः खण्डके अधिपति थे, शत्रुवोंको भय उत्पन्न करने वाले चक्रके द्वारा समस्त नरेन्द्रोंको जीतकर अपने समाधि चक्रके द्वारा दुर्जय मोहके चक्रको नष्ट किया। मोहका चक्र बड़ा दुर्जय है, यह ज्ञानबल से, समाधिबलसे ही हटता है।

मोहचक्रका परिचय—मोहचक्र कैसे उत्पन्न होता कि इस जीवके साथ प्रकृत्या कर्मबंधन चल रहा अनादिसे। तो जो मोहनीय कर्म है वह एक पौद्गलिक प्रकृति है। उसका जब उदय होता है तो उसका उदय होनेपर उस ही प्रकृतिमें एक भयंकर गड़बड़ी चलती है, लेकिन चूंकि वह प्रकृति जड़ है,

अचेतन है सो अपने क्षोभका, अपनी गड़बड़ीका वह अनुभव नहीं करता। किन्तु वह जो क्षोभ और गड़बड़ी हुई वह विकार है कर्ममें। वह विकार इस आत्मामें प्रतिबिम्बित होता है, क्योंकि यह आत्मा चेतन है और यह विकार सारा प्रतिबिम्बित हुआ, और इस जीवपर ऐसी महान् धूल पड़ी है कि इन विकारोंको ही अपनाता है। और जब क्षोभको इसने अपनाया तो इसमें क्षोभ परिणाम बनता है। जब भेदविज्ञान जगे कि यह तो जितना मोह रागद्वेष जो कुछ यह मुझमें छायारूप आ रहा है वह सब कर्मकृत परिणाम है। मैं तो एक विशुद्ध चैतन्यस्वरूप मात्र हूं। मैं तो वह हूं जो अपने आप अकेला रहता हो, मुझमें अकेलेमें जो बात हो सकती है अपने सत्त्वके कारण मुझमें तो वह है और उस स्वरूप मैं हूं, मैं अन्य स्वरूप नहीं हूं। जैसे दर्पण अपने आप तो स्वच्छतामात्र है, प्रतिबिम्बरूप नहीं है, परन्तु बाधक उपाधि सामने आये, कोई वस्तु सामने हुई तो उसका सन्निधान पाकर प्रतिबिम्ब बन जाता है। तो हम प्रतिबिम्बमें तो भेदविज्ञान कर लेते हैं कि यह प्रतिबिम्ब कांचका स्वरूप नहीं, यह अमुकका फोटो है। तो इस तरह समझ लो सीधे शब्दोंमें कि मुझमें जो खराबियां हैं, विकार हैं वह सब कर्मकी फोटो है, मेरी चीज नहीं है, ऐसा अन्तरमें भेदविज्ञान जिसके जगा है और चैतन्यस्वरूप की बार-बार भावना करके स्पष्ट हो गया है वह पुरुष उस

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मोह फोटोसे, चित्रणसे फिर अपनेको विह्वल नहीं करता। जानता है कि कर्मकी चीज कर्ममें है, मेरी चीज मुझमें है। तो ऐसे भेदविज्ञान बलसे यह मोहका दुर्जय चक्र समाप्त होता है।

शान्तिप्रभुका पूर्वचक्रवर्तित्व व उत्तरचक्रवर्तित्व—इस छंदमें प्रभुकी दो विशेषतायें कहीं कि जब वे घरमें थे तब तो वे चक्रवर्ती थे और जब घर त्याग दिया तो समाधि चक्रवर्ती हुए। समाधि चक्रके द्वारा दुर्जय मोहके चक्रका विनाश किया। बड़े पुरुषोंकी ऐसी ही रीति होती है कि उनका अंतिम समय पवित्र बनता है। और वे मनुष्य व्यर्थ जीवन बिता गए जिनका अंतिम जीवन पवित्र न बन सका। अंतिम जीवन पवित्र बने उसका लाभ अगले भवमें होता है। यद्यपि पहला जीवन पवित्र हो और पीछे बिगड़ जाय उसका भी कुछ लाभ है, मगर पीछेका जीवन बिगड़ गया तो उससे पवित्रताका लाभ बिल्कुल कम हो जाता है। इसलिए यह सोचना चाहिए कि हमको काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह उनके लिए नहीं जीता है, किन्तु मेरेमें पवित्रता बने जो मेरेको काम देगी, ये मोह रागद्वेष काम न देंगे। मेरा जो पवित्र भाव ज्ञानदर्शन ज्ञानस्वरूपमय हूं, इस प्रकारकी बराबर भावना यह चीज चलती रहे तो उसके पवित्रता रहेगी और उससे अब भी शान्ति है और अगले भवमें भी शान्ति मिलेगी। तो महापुरुषोंके जब हम चरित्र सुनते हैं तो उनसे शिक्षा यह ही लेते हैं। प्रत्येक

महापुरुष प्रारम्भमें पवित्र न थे, कोई काम पवित्र थे, कोई एकदम गंदे थे, कोई पतित ही थे, ऐसे ऐसे भी चरित्र हैं, लेकिन अंतिम समय उनका पवित्र बना, निसंग, निरारम्भ, निर्विकल्प केवल एक विशुद्ध ज्ञानस्वरूपके ध्यानमें ही रहा उपयोग, ऐसा जीवन बना तब ही महापुरुष कहलाये और लोगोंके पूज्य हुए, स्वयं निराकुलताको प्राप्त कर सके। तो ऐसे ही प्रभु शान्तिनाथ भगवान जब तक घरमें रहे तब तक चक्रवर्तित्वके द्वारा दुष्टोंका निग्रह और शिष्टोंका अनुग्रह किया और पश्चात् सर्व त्यागकर एक समाधिभावके द्वारा उन्होंने मोह रागद्वेषके लेश-लेशको उखाड़ दिया।

राजश्रियाराजसु राजसिंहो रराज यो राजसुभोगतन्त्रः।
आर्हन्त्यलक्ष्म्यापुनरात्मतन्त्रो देवासुरोदारसभेरराज ॥७८॥

शान्ति प्रभुकी राजसुभोगतन्त्रता व आत्मतन्त्रता—जिन शान्तिनाथ प्रभुने राजलक्ष्मीके द्वारा राजसिंह बनकर शोभा पायी और राजके उत्तम उत्तम भोग जिनके आधीन रहे उन्हीं शान्तिनाथ प्रभुने, तीर्थंकरने पश्चात् आरहंत्य लक्ष्मीके द्वारा अरहंत होकर देव, असुर, उदार पुरुषोंकी सभामें शोभाको प्राप्त किया। यहां दोनों चित्रण चल रहे हैं। पहले तो वे राजभोगके आधीन रहे, परतंत्र रहे और राजावोंमें सर्वश्रेष्ठ कहलाये अपनी राजलक्ष्मीके द्वारा और पश्चात् आरहंत्य लक्ष्मीके द्वारा केवलज्ञान लक्ष्मीके द्वारा वे आत्मतंत्र रहे, स्वाधीन रहे और फिर वे बड़े देव असुर और उदार पुरुषोंको

Report any errors at vikasnd@gmail.com

सभामें शोभाको प्राप्त हुए। इन दोनोंका अन्तर कितना स्पष्ट दिख रहा है। शोभा तो उनकी उस राज अवस्थामें थी, मगर वह शोभा थी राजाओंमें। और राजा सब क्या हैं? पुण्य पापके चक्रमें फँसे हुए संसार यातनाओंको भोगने वाले। उनमें श्रेष्ठता मिली। उस राजलक्ष्मीके लगावका, उसके सम्पर्कका क्या फल मिला कि न कुछ जरा राजावोंमें तो शोभा मिली मगर रहे वे पराधीन सुख। राजके सुखके आधीन रहे और पश्चात् उनकी कितनी पवित्र अवस्था बनी कि केवलज्ञान लक्ष्मी पायी और इन्द्रोंकी सभाओंमें, देवोंकी सभामें वे शोभाको प्राप्त हुए। तो यहाँ भी यह देखो कि बहुत बड़े पुण्यवान थे प्रभु, लेकिन पहली शोभासे यह शोभा कितनी गुणित है। और वहाँ थी परतंत्रता, यहाँ है स्वाधीनता। वहाँ थी शोभा मोहियोंमें, यहाँ है शोभा सर्व प्राणियोंमें। तो प्रभु आपकी जो एक उत्तर दशा है ऐसी अंतिम पवित्रता है वह जगतके लिए पूज्य है।

यस्मिन्नभूद्राजनि राजचक्रं मुनौ दयादीविितिधर्मचक्रम्।
पूज्ये मुहुः प्राञ्जलि देवचक्रं ध्यानोन्मुखे ध्वंसि कृतान्तचक्रम् ॥७९॥

शान्तिप्रभुके राजचक्र, धर्मचक्र, देवचक्र व कृतान्तचक्रका क्रमशः दर्शन—जिन महापुरुषोंमें, राजाओंमें तो राजचक्र थे और मुनि होनेपर दयाकी किरणोंका धर्मचक्र रहा और जिन पूज्य पुरुषमें यह सारा देवचक्र, सारा देव समूह प्रणत रहे, अंजुली जोड़कर नमस्कार करता था, और जब आप ध्यानके

उन्मुख रहे, ध्यानस्थ रहे तो यह कालचक्र ध्वंस हो गया। यहाँ प्रभुकी चार अवस्थाओंका प्रदर्शन है। पहले तो राज्य अवस्थामें राज्यचक्र ही उनके पास था, फिर मुनि अवस्थामें दयाचक्र उनके साथ रहा और फिर जब केवलज्ञान हुआ, अरहंत भगवान हुए तब देवचक्र उनकी सेवामें प्रणत रहा और जब सयोगकेवलीकी अंतिम अवस्था हुई, सयोग केवली हुए, निर्वाणको प्राप्त हुए तो वहाँ मरणचक्र समाप्त हो गया। भगवानके आयुक्षयका नाम निर्वाण कहा जाता है। इस तरह प्रभु आपके जीवनमें चार अवस्थाओंमें ये चार स्थितियाँ हुईं।

स्वदोषशान्त्याविहितात्मशान्तिः शान्तेर्विधाता शरणंगतानाम्।
भूयाद्भवक्लेश भयोपशान्त्यै शान्तिर्जिनो मे भगवान शरण्यः ॥८०॥

शान्तिप्रभुके शरणागतकी शान्तिपात्रता—हे प्रभु! आपने अपने दोषोंकी शान्तिके द्वारा आत्मशान्ति प्राप्त की। कोई भी जीव अपनेमें शान्ति पा सकेगा तो दोषोंका शमन करके ही पा सकेगा। दोष क्या है? मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ ये ५ महादोष हैं। जब तक मोह है तब तक शान्ति नहीं मिलती। क्रोध जग रहा तो शान्ति नहीं मिलती। चाहे किसीके न्यायपर क्रोध जग रहा हो चाहे अन्यायपर, चाहे भूलसे जग रहा हो चाहे उपयोगबुद्धिमें रहकर। क्रोध तो क्रोध है। क्रोधके समयमें शान्ति नहीं रहती। भले ही कुछ भेद डाल दिया जाय, मगर क्रोधकी जो प्रकृति है—शान्तिको भस्म कर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

देना, वह प्रकृति नहीं मिटती। यों ही जब तक मान (घमंड) का भाव रहता है तब तक शान्ति नहीं मिलती। न जाने अज्ञानमें क्या-क्या चाहता है, क्या-क्या पुलावे बनाता है। मायाचारमें तो एक दिल ही बड़ा विकट बेढंगा हो जाता है। चैन नहीं पड़ती। अनेक शल्य सताते हैं और लोभ तृष्णामें तो शान्ति ही कहा रखी है ? तो जब दोषोंकी शान्ति हो तब ही आत्मामें शान्ति हो। अब इन दोषोंकी शान्तिके लिए क्या प्रयोग करना ? क्या दोषोंको सामने रखकर एक एक दोषको हटायें ? इस तरहसे दोष नहीं हट सकते, दोषोंपर दृष्टि देकर कोई सोचे कि मैं इन्हें मिटाऊँगा। तो इस तरहसे दोष नहीं मिट सकते। सारे दोष मेटनेका उपाय यह है कि अपनेको मात्र ज्ञानस्वरूप अनुभव करना। दुष्टोंसे प्रेम करे तो नुकसान, द्वेष करे तो नुकसान। लोकमें जैसे यह देखा जाता है ऐसे ही दोषकी दृष्टि, दोषोंको हटानेका भाव, कुछ भी करे, आखिर दोष तो उपयोगमें आ ही गए। उन दोषोंको मिटानेका उपाय दोषरहित अपने विशुद्ध चैतन्यस्वरूप की भावना करना है। मैं चैतन्यमात्र हूं। दोषोंको विधिसे भी न देखें, निषेधसे भी न देखें। दोषोंकी चर्चा ही न हो, दोषोंको ध्यानमें ही न लायें। यह उत्कृष्ट उपायकी बात कह रहे। दोषोंका नाम ही न रहे। एक अपना जो सहज स्वरूप है उस स्वरूपमात्र अपना अनुभव बने तो दोषोंकी शान्ति नियमसे होती है। तो प्रभुने

ऐसे ही अपने दोषोंकी सम्हालके द्वारा दोषोंकी शान्ति की और उन दोषोंको शान्तिके कारण आत्मशान्ति प्राप्त हुई। और हे प्रभु शरणमें आये हुए पुरुषोंके लिए आप शान्तिके करने वाले हो। यद्यपि आप स्वयं विकल्प करके कहीं शान्ति नहीं किया करते। आप तो अपने ही ज्ञानानन्दमें दृढ़ हो, पर जो भक्त आपके इस विशुद्ध स्वरूपका ध्यान करता है उसके दोषोंका शमन होता है और उसको शान्ति मिलती है। तो जिसका निमित्त पाकर या जिसकी उपासनाकी धुनमें इस जीव ने शान्ति प्राप्त की वह भक्तिमें यह ही तो कहेगा कि आप शान्तिके करने वाले हो। सो हे प्रभु आप ऐसे शान्त जिनेन्द्र प्रभु हैं। मेरे संसारके क्लेश और भयकी शान्तिके लिए हो। यह ही मेरेको एक शरण्य है, इसके उस विशुद्ध स्वरूपकी आराधना रहे। उस आराधनाके प्रतापसे संसारके क्लेश शान्त हों, एक यह ही मेरी भावना है और इसीलिए हे प्रभु आपकी मैं शरण गहता हूं।

कुन्थुयभृत्यखिलसत्त्वदयैकतान:
कुन्थुर्जिनोज्वरजरामरणोपशान्त्यै।
त्वं धर्मचक्रमिह वर्त्तयसि स्य भू यै
भूत्वा पुरा क्षिति पतीश्वरचक्रपाणि: ॥८१॥

कुन्थुनाथ प्रभुका चक्राधिपतित्व—कुन्थुनाथ भगवानका स्तवन हो रहा है। तुच्छ प्राणियोंसे लेकर समस्त जीवोंमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

दयाका ही जिसमें विस्तार है ऐसे कुन्थुनाथ जिनेन्द्र शान्तिके लिए हों जिनकी स्वयंकी भी प्रवृत्ति ऐसी रही कि छोटेसे लेकर बड़े पर्यन्त सभी जीवोंके प्रति सही रक्षाका भाव रहा और तभी जब भगवानकी दिव्यध्वनि खिरी और उनका उपदेश हुआ उनके सिद्धान्तका प्रसार हुआ तो उस सिद्धान्तमें सब जीवोंकी रक्षाकी बात आयी। जो बड़े बुद्धिमान हैं, निकट भव्य हैं उनको मोक्षका उपदेश है। जो अभी बहुत पीछे हैं उनको पुण्य कार्यका उपदेश है और ज्ञानार्जनका उपदेश है, और जो एकेन्द्रिय दोइन्द्रिय आदिक असंज्ञी जीव हैं उनको उपदेश तो हो ही क्या सकता है, क्योंकि उनके मन नहीं है, तो जीवरक्षाका जो सिद्धान्त चला है, उसके पालन करने वाले लोग हुए तो उनके द्वारा इन एकेन्द्रिय आदिक जीवोंकी रक्षा हुई। तो प्रभुका सिद्धान्त सर्व जीवोंके हितके लिए है। सो ऐसे कुन्थुनाथ जिनेन्द्र हमारे रोग, बुढ़ापा, मरण आदिक रोगों की शान्तिके लिए हों। जो खुद शान्त स्वरूप हैं, जो खुद दया की मूर्ति हैं उनके स्वरूपका ध्यान करनेसे भक्त स्वयं शान्ति प्राप्त करता है उसी शान्तिका यहाँ संकेत है। ये कुन्थुनाथ जिनेन्द्र इन्होंने पहले तो राजावोंके अधिपति होकर, चक्रवर्ती होकर एक चक्रका विस्तार किया, पश्चात् यहाँ धर्मचक्रका विस्तार किया। धर्मचक्रकी प्रवृत्ति की। कुन्थुनाथ जिनेन्द्र चक्रवर्ती थे। मुनि होनेसे पहले और फिर अरहंत होकर एक

धर्मचक्रका प्रभाव बढ़ाया।

तृष्णार्चिषः परिदहन्ति न शान्ति-
रासामिष्टेन्द्रियार्थविभवैः परिवृद्धिरेव।
स्थित्यैव कायपरितापहरं निमित्त-
मित्यात्मवान्विषयसौख्यपराङ्मुखोऽभूत् ॥८२॥

आत्मवान्की विषयपराङ्मुखता—संसारी प्राणियोंको तृष्णाकी ज्वालायें लपटें जला रही हैं। जीव स्वयं ज्ञानानन्द का पिण्ड है, इसका सहज स्वभाव गम्भीर, धीर, पवित्र, शांत है, पर कैसा ही कारण पाकर हुआ, इस जीवमें तृष्णाकी बात आयी। बाह्य पदार्थोंके प्रति इसके तृष्णाका भाव उठा कि बस यह ही निरन्तर आकुलित करने वाली है। इस तृष्णा ज्वालाकी वृद्धिसे या इष्ट इन्द्रिय अर्थ वैभव मिला तो इससे इस ज्वालाकी शान्ति नहीं होती, उल्टे बढ़ती है। जैसे अग्नि में ईंधन डालने पर अग्नि शान्त नहीं होती, मिट नहीं जाती, किन्तु बढ़ती है इसी प्रकार इस जीवको जैसे-जैसे इष्ट समागम मिलता जाय, वैभव मिलता जाय तो तृष्णा अग्नि शान्त नहीं होती, प्रत्युत बढ़ती है, संसार मार्ग और मोक्षमार्ग ये दो विभिन्न मार्ग हैं। जिनको मोक्षमार्ग चाहिए, जो अपना सारा भविष्य उज्ज्वल रखना चाहते हैं, कल्याण चाहते हैं वे इतने गम्भीर विरक्त ज्ञानी होते हैं कि वे इन लौकिक बातोंको देखकर तृष्णामें नहीं आते। जो जीव तृष्णाके वश हैं वे लौकिक

http://www.jainkosh.org
Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जीव हैं और जो तृष्णाके वश नहीं हैं वे अलौकिक पुरुष हैं। तो इस तृष्णा अग्निकी ज्वालाओंने इस संसारी प्राणीको जला दिया है। इस तृष्णाकी शांति मनचाहे पदार्थोंके मिलनेसे नहीं होती, बल्कि बढ़ती है। कोई यह सोचे कि इतना परिग्रह जोड़ लूं फिर मुझे कोई काम नहीं, फिर शान्तिसे रहूंगा, यह उसका एक कोरा ख्याल है। वैभव मिल गया तो भीतरमें तृष्णा अग्नि और बढ़ती है। कदाचित् व्रत ले रखा हो और न ही उससे अधिक संचय करे तो भी भीतरकी तरंगें ये बड़ी अनिवारित हैं। सो इनकी ओरसे ध्यान ही कोई हटाये और तृष्णारहित, कषायरहित निज ज्ञानानन्दस्वरूपका ध्यान रखे तो शान्ति मिल सकती, पर जगत्के वैभवोंके पानेसे इसे शांति नहीं मिल सकती। ये इन्द्रियविषय सौख्य वैभव ये जब तक रहते हैं तब तक या जब तक इनका समागम है तब तक ही थोड़ासा एक संताप दबासा रहता है, पर भीतर नहीं दब सकता। भीतर तो आकुलता ही है। अगर थोड़ासा शारीरिक सुख मिल गया, आरामसे रहने लगे, शरीरका संताप दूर हो गया तो स्थिति माध हीं है यह। थोड़े क्षणकी ही बात है यह। वस्तुतः तब भी शांति नहीं, मगर ऐसे दिन सदा किसके रहते हैं ? एक घंटा भी नहीं गुजर पाता किसीका कि जो एक घंटे तक लगातार सुख ही सुखका अनुभव करे। तो ऐसी असारता जानी प्रभु आपने इसी कारण आत्ममग्न होकर आप

वैषयिक सुखोंसे पराङ्मुख हुए।

बाह्यं तपःपरमदुश्चरमाचरंस्त्व-
माध्यात्मिकस्य तपसः परिवृंहणार्थम्।
ध्यानं निरस्य कलुषद्वयमुत्तरेऽस्मिन्
ध्यानद्वये ववृतिषेऽतिशयोपपन्ने ॥८३॥

आध्यात्मिक तपकी वृद्धिके लिये बाह्य तपका आचरण— हे प्रभु ! कुन्थुनाथ जिनेन्द्र ! आपने जो बहिरंग कठोर आचरण आचरा तप किया और और भी नियम किया तो बाह्य जो आचरण आपने आचरा सो आध्यात्मिक तपकी वृद्धिके लिए ही आचरा हेतु पौद्गलिक है, उसकी किसी भी प्रकार की क्रिया करनेसे या उसकी कुछ भी स्थिति बनानेसे शान्ति का सम्बंध नहीं है, शान्ति होती है आध्यात्मिक तपश्चरणसे याने निर्दोष सहज ज्ञानस्वभावकी आराधनासे। सो जो कुछ भी बाह्यमें तपश्चरण किये जाते हैं उनका प्रयोजन है अंतरंग तप मायने ज्ञानस्वभावकी उपासना। सो हे प्रभु आपने बहिरंग तपश्चरण किया है आध्यात्मिक तपकी वृद्धिके लिए। सो आपने खोटे जो दो ध्यान हैं—(१) आर्तध्यान और (२) रौद्रध्यान, इन दोनों ध्यानोंका निराकरण करके जो उत्तम अतिशय सहित दो ध्यान हैं—धर्मध्यान, शुक्लध्यान, जिनके ध्यान में आपके उपयोगकी वृत्ति गई, फिर संसारके हेतुभूत आर्तध्यान और रौद्र ध्यानको त्यागकर धर्मध्यान और शुक्लध्यान

Report any errors at vikasnd@gmail.com

में आपका उपयोग रहा। प्रभुके स्तवनका प्रयोजन यह है कि जो प्रभुकी अवस्था है वही मेरी अवस्था बने। इस प्रकारका एक उत्साह जगता है। और प्रभुने जिस बिधिसे जो कार्य किया वह मेरी विधि बने और उसी मार्गका अनुकरण हो। तो यहाँ प्रभुके गुण गाये जा रहे हैं। उन्होंने बाहर क्या किया और अंतरंगमें क्या किया इसका इसमें चित्रण किया है।

हुत्वा स्वकर्मकटुकप्रकृतीश्चतस्रो
रत्नत्रयातिशयतेजसिजातवीर्यः।
विभ्राजिषे सकलवेदविधेर्विनेताव्यभ्रे
यथा वियति दीप्तरुचिर्विवस्वान् ॥८४॥

प्रभुकी परमदीप्तिका दर्शन—हे प्रभु आपने खोटे कटुक चार प्रकृतियोंको पहले जलाया मायने ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय इन चार घातिया कर्मोंका पहले दहन किया, काहेके द्वारा? रत्नत्रयके अतिशयसे जो तेज जगा या रत्नत्रय बढ़ता जाता यही एक महान् तेज है। उस तेजमें जिसकी शक्ति प्रकट हुई, ऐसे प्रभु आप चार घातिया कर्मोंको जलाकर सर्व ज्ञानोंकी विधिके नेता हुए, सर्वज्ञ हुए और सबको आपने सन्मार्गमें प्रवर्तनेकी पद्धति बतायी। सो इस तरह आप शोभायमान हो रहे हैं। जैसे मानो मेघरहित आकाशमें दीप्त किरण वाला सूर्य चमकता है, प्रकाशित होता है इसी प्रकार आपने भी रत्नत्रयके तेजसे चार घातिया कर्मोंको नष्ट करके

http://www.jainkosh.org

एक सुख शान्ति प्राप्त की है और लोगोंको सन्मार्ग बताया।

यस्मान्मुनीन्द्र तव लोकपितामहाद्या
विद्याविभूतिकणिकामपि नाप्नुवन्ति।
तस्माद्भवन्तमजमप्रतिमेयमार्याः स्तुत्यं
स्तुवन्ति सुधियः स्वहितैकतानाः ॥८५॥

प्रभुकी अप्रतिमेयता—हे प्रभु आपके सिद्धान्तसे विमुख हुए अनेक जन कितना ही तपश्चरण करें, कितना ही प्रयास करें, लेकिन विद्या विभूतिमें लवलेशको भी नहीं पा सकते। कोई अलौकिक विभूति है तो वह विद्या ही है, ज्ञान ही है। इस सम्यग्ज्ञानके वैभवको इस सम्यक्त्वके वैभवको वे लोग नहीं पा सकते हैं, इसी कारण विद्वान् लोग आपका ही आश्रय करते हैं और आपका ही स्तवन करते हैं। हे प्रभु आप अज हैं। वस्तु तो प्रत्येक अज है, सत्तासे सिद्ध है, ऐसा आपका जो ऐश्वर्य है, प्रभुता है वह भी किसीसे पैदा नहीं हुई इसलिए आप अज हैं, अनुपम हैं। आचार्यजन आपका ही स्तवन करते हैं। जिनको कि अपने एक कल्याणकी ही धुन है ऐसे पुरुष सहज ज्ञानस्वभावकी प्रतिमूर्ति जो भगवान हैं उन भगवानकी उपासना करते हैं और स्वयं आत्मविकास करके वे निकट कालमें निर्वाणको प्राप्त करेंगे।

गुणोस्तोकं सदुल्लंघ्य तद्बहुत्वकथा स्तुतिः।
आनन्त्यात्ते गुणावक्तुमशक्यास्त्वयि सा कथम् ॥८६॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रभुगुणोंकी अवक्तव्यताका कारण—यह अरहनाथ भगवानका स्तवन है। कहते हैं कि स्तुति कहते किसे हैं ? किसी में गुण तो थोड़े हों और उन गुणोंसे बढ़कर बहुत बड़ी कथा करे, बहुत अधिक गुण बताये उसका नाम स्तुति है। लेकिन हे प्रभु आपमें तो उनसे उल्टी बात है कि गुण तो हैं बहुत और बोल सकते नहीं, तो स्तवन हम कैसे कर सकते ? प्रभु के स्तवनके समय समन्तभद्राचार्य कहते हैं कि तुम्हारी स्तुति कोई करनेमें समर्थ हो ही नहीं सकता, क्योंकि स्तवन तो उसका नाम है कि गुण तो हों थोड़े और उसे बढ़ाकर बहुत बहुत कहे, मगर आपके गुण तो अनन्त हैं। अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त शक्ति और सभी अनन्त। तो ऐसे और भी अनेक अनन्त गुण हैं, और वे गुण बोले जा नहीं सकते, इसलिए आपका स्तवन कोई भी करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। जैसे नदीके किनारे जहाँ रेत बहुत है तो आँखोंसे रेत तो दिख जाता है, मगर उन रेतके दानोंकी कोई गिनती कर सकता है क्या ? तो जैसे रेतकी कोई गिनती नहीं कर सकता, ऐसे ही प्रभु आपके गुणोंकी कोई गिनती या बखान नहीं कर सकता। आप स्तवनसे अतीत हो। स्तवन तो लौकिक बातोंका हुआ करता है। थोड़े गुण हों, ज्यादा बोल दिया वह भी गुण हो गया जिसके गुण कहे जाते, मगर आपके अनन्त गुण हैं, बोले जा सकते नहीं और कोई कहे कुछ तो

उससे आप खुश होते नहीं, क्योंकि आप वीतराग हैं, इसलिए तुम्हारे विषयमें कुछ भी स्तवन करना अशक्य है।

तथापि ते मुनीन्द्रस्य यतो नामापि कीर्तितम्।
पुनाति पुण्यकीर्तेर्नस्ततो ब्रूयाम किञ्चन ॥८७॥

प्रभुनामकीर्तनसे भी पवित्रताकी संभवता—फिर कोई पूछ सकता है ऐसा कि जब भगवानके गुण गाये नहीं जा सकते उतने गुण हैं उनका स्तवन नहीं बन सकता तो फिर हे समंतभद्र तुम यहाँ आये क्यों और भगवानका स्तवन क्यों कर रहे ? उसका उत्तर दिया है कि हे प्रभु यद्यपि तुम्हारे गुण अनन्त हैं और ये बखाने नहीं जा सकते फिर भी हे मुनीन्द्र मैं आपका स्तवन कर रहा हूं। स्तवनकी तो बात क्या, अगर कोई आपका श्रद्धाभक्तिसे ज्ञानसहित नाम भी लेवे तो उससे उसका हृदय पवित्र होता है। यों भगवानके गुण तो नहीं बखाने जा सकते, किन्तु भगवानकी भक्ति हो, भगवानके स्वरूपका थोड़ा ध्यान जाय, नाम ले कोई तो उसका मन पवित्र हो जाता है। तो हम लोग पवित्र हो जाते हैं, इसलिए थोड़ा हम कुछ बोल रहे हैं, स्तवन कर रहे हैं। स्तवन का फल ही यह है। अभी ध्यानमें कोई ममताकी चीज आ जाय तो तुरन्त संक्लेश होता है, खेद होता है, ऐसा क्यों हुआ ? और प्रभुके स्वरूपकी सुध होती है, प्रभुके नामकी सुध होती है तो वहाँ शान्ति रहती है, मन प्रसन्न रहता है, पवि-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

त्रता बनती है। तो चूंकि आपका सम्बंध है इस कारणसे मनुष्योंके पवित्रता बढ़ती है और वह सम्बंध है उसके उपयोग द्वारा याने भक्त आपके स्वरूपका आपका नाम भले ही लेते हैं, मगर उसका पूरा ध्यान चलता जाता है। जैसे कोई ज्ञानी पुरुष यहाँ जो जानकार हो, किसीका नाम लें तो पूरी बात उसके चित्तमें आ जाती है, इस तरहसे जो ज्ञानी भक्त है जब भगवानका नाम लेता है तो भगवानका पूरा चित्रण, वे वीत-राग हैं, सर्वज्ञ हैं, वह उपयोगमें आता है, और जहाँ उपयोग में राग न रहे, उपयोगमें वीतरागताका ही ध्यान रहे तो वह उपयोग भी पवित्र हो जाता है। इस कारणसे हम कुछ बोलते हैं।

लक्ष्मीविभवसर्वस्वं मुमुक्षोश्चक्रलाञ्छनम्।
साम्राज्यं सार्वभौमं ते जरत्तृणमिवाभवत्॥८८॥

प्रभुके लिये सार्वभौम साम्राज्यकी जरत्तृणरूपता—अर-हनाथ भगवान चक्रवर्ती हुए, कामदेव हुए, तीर्थंकर हुए, तीन पदोंके धारक थे, इसी कारण यह प्रसिद्धि है कि प्रायः करके जब मूर्ति बनाते हैं तो शान्ति, कुन्थु, अरह ये तीन मूर्तियाँ बनाते हैं। पहले इसका रिवाज यहाँ बहुत रहा, क्योंकि इन तीनोंको जगन्नाथ बोलते हैं। छह खण्डकी विभूतिके स्वामी थे। तो तीनकी मूर्ति बहुधा करके लोग इकट्ठा बनाते हैं और सुना तो यह गया कि चूंकि जैनधर्मका इस विश्वमें सर्वत्र

http://www.jainkosh.org

प्रचार था, तो जो अरब, काबुल आदिक पास-पासके देश हैं उन अनेक देशोंमें अब भी अनेक मूर्तियाँ निकलती हैं, और कभी इन तीन मूर्तियोंके मंदिर भी थे बहुत जगह, पर किसी समय किसीके मनमें आया कि इन पत्थरोंकी क्यों पूजा करते? पर उनके बुजुर्ग भक्त लोगोंने रोका और उनके आगे एक पत्थर लगा दिया, मूर्ति ढक गई। पत्थर लगा दिया तो एक अन्य तरहका उपासनास्थान बन गया। तो आजकल भी लोग उस पत्थरकी पूजा करते हैं जिसके अन्दर शान्ति, कुन्थु, अर-हनाथकी मूर्तियाँ हैं। तो ये अरहनाथ भगवान चक्रवर्ती हुए। तो कहते हैं कि उस समय आपके पास लक्ष्मी विभव साम्राज्य था, क्योंकि आप छह खण्डके अधिपति थे। तब तो आपके पास सुदर्शन चक्र था और महान् साम्राज्य था, आपका राज्य सार्वभौम था। लेकिन जब आप मुमुक्षु बने, मोक्षके पथकी ओर बढ़े तो वह सबका सब वैभव जीर्ण शीर्ण तृणके समान आपके लिए हो गया। जैसे कोई तृणसे प्रीति नहीं रखता। कोई कुछ थोड़ी बहुत तृणसे प्रीति रख भी ले, मगर जीर्ण शीर्ण, सड़े-गले तृणसे कोई प्रीति नहीं करता। तो वह सब वैभव आपका जीर्ण तृणके समान हो गया था अर्थात् आप चक्री भी थे, किन्तु जब आप वैराग्यमें बढ़े, मुक्तिके मार्गमें बढ़े तो वह सारा वैभव जीर्ण शीर्ण तृणके समान आपको निसार दिखने लगा। प्रभुके स्तवनमें यह ही तो ध्यानमें लाना

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

चाहिए कि जो प्रभुने किया सो मेरे करनेकी है। प्रभुने जीर्ण शीर्ण तृणके समान इस जगतको जाना और इसे छोड़ा, तो ऐसा ही हमें करना पड़ेगा। यह होगा ज्ञानबलसे, सहज होगा। जब ऐसा हो पायगा तब अशान्तिका जाल मिटेगा और शान्ति के पथ पर बढ़ेंगे।

तव रूपस्य सौन्दर्यं दृष्ट्वा तृप्तिमनापिवान्।
द्वयक्षः शक्रः सहस्राक्षो बभूव बहुविस्मयः ॥८९॥

प्रभुसौन्दर्यकी बहुविस्मयकारिता—हे अरहनाथ जिनेन्द्र, तुम्हारे रूपका सौन्दर्य देख करके इन्द्र भी तृप्त न होता था। सर्व तीर्थंकर सहज सुन्दर शरीरके होते हैं, फिर भी ये अरहनाथ कामदेव थे। कामदेव कहते हैं बहुत सुन्दर मनोज्ञ शरीर वालेको। जैसे हनुमान भी कामदेव हुए। उनका बड़ा सुभग सुन्दर शरीर था, पर चूंकि वह हनुरुह द्वीपमें उत्पन्न हुए थे, इससे हनुमान नाम पड़ा था, यह तो ठीक है, पर वानर वंश के कुलमें थे इसलिए लोग वानर जैसा मुख बनाने लगे, पूंछ लटकाने लगे। लेकिन हनुमानका रूप बहुत ही सुन्दर था, उन्हें कामदेव कहते थे। तो अरहनाथ स्वामीका भी रूप बहुत सुन्दर था और उन्हें भी कामदेव कहते थे। तो आपके इस रूप सौन्दर्यको देखकर इन्द्र तृप्त न हुआ और उसके दो आंख तो थे, पर आंखोंसे ऐसा देखता रहा कि उसको उस रूपका अवलोकन करनेके लिए और तृप्त होनेके लिए, मन भरनेके

लिए हजार नेत्र बनाने पड़े तिसपर भी वह तृप्त न हो सका। अर्थात् हजार नेत्र बनाये इन्द्रने भगवानका रूप देखनेके लिए और अपना मन भरनेके लिए, लेकिन हजार नेत्र बनाकर देखने पर भी तृप्त न हो सका। इस छंदमें यह बताया गया कि प्रभु तीर्थंकर थे, चक्रवर्ती भी हुए, मगर साथ ही साथ वे कामदेव पदके धारी भी थे।

मोहरूपो रिपुः पापः कषायभटसाधनः।
दृष्टिसम्पदुपेक्षास्त्रैस्त्वया धीर पराजितः ॥९०॥

मोहविजयके तन्त्रका दर्शन—हे धीर, हे प्रभो! आपने मोहरूपी शत्रुको सम्यग्दर्शन मूर्ति और उपेक्षरूप अस्त्रके द्वारा पराजित किया, मायने मोहशत्रुका विध्वंस किया और पापका भी विध्वंस किया। कैसा है पाप? कषाय भटसाधन, यह मोहरूपी शत्रु पाप है। वास्तविक पाप मोह है। कोई धर्म करे तो उसे यह समझना चाहिए कि सबसे पहले तो मोह हटायें तब धर्म लगेगा और मोह बना रहे भीतर तो चाहे कितना ही धर्मके नामपर कोई कुछ करे, पर उसे धर्मका बंध नहीं लगता। पापोंका सिरताज है मोह, अज्ञान, परपदार्थको मानना कि यह मेरा है और परपदार्थसे अपनेको बड़ा महत्त्व मानना बस यह तो महान् अज्ञान है, यह पाप है। कोई पुरुष बाहरी पाप न करता हो और मोह बसाये रहता हो तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

उसे निष्पाप न कह सकेंगे। महापाप तो मोह ही है। तो यह मोहरूपी शत्रु पापस्वरूप है और इसके कषायरूपी जो सुभट हैं वे साधन हैं। सो हे नाथ, ऐसे महान् शत्रुको आपने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूपी शस्त्रोंके द्वारा पराजित कर दिया। इस छंदमें यह बताया है कि मोह कैसे गलाया जाता है? एक तो सम्यग्दर्शन हो, सच्चा बोध हो, पदार्थका वास्तविक स्वरूप ज्ञात हो और उसके फलमें फिर उससे उपेक्षा करे, यहाँ मेरा कुछ नहीं, मेरा तो मात्र मैं ज्ञानस्वरूप हूं। इसके अतिरिक्त मेरा कहीं कुछ नहीं, ऐसी उपेक्षा करे तो वह मोहरूपी शत्रुको जीत सकता है। न सम्यग्दर्शन है, न उपेक्षा है तो उसके तो मोह लगेगा ही। और जिसके मोह है वह कभी सुखी नहीं है। घरमें रहना पड़े, जंगलमें रहना पड़े, संग में रहना पड़े, कोई भी परिस्थिति हो, अपना ज्ञान ऐसा सही रखना चाहिए कि मुझ आत्माका सहारा केवल यह मैं आत्मा ही मात्र हूं। दूसरा मेरेको सहारा नहीं है। इस तरहसे सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रके बलपर यह मोह रूपी शत्रु जीता जा सकता है।

कंदर्पस्योद्वरो दर्पस्त्रैलोक्यविजयार्जितः।
हेपयामास तं धीरे त्वयि प्रतिहत्तोदयः ॥६१॥

प्रभुदर्शनसे कन्दर्पदर्पका पतन—भगवान अरहनाथकी स्तुतिमें यह बात बतला रहे हैं कि ये प्रभु कामदेव भी थे।

http://www.jainkosh.org

अरहनाथ प्रभु तीर्थंकर थे, चक्रवर्ती थे और कामदेव थे। तो किन शब्दोंमें बतला रहे हैं कि हे प्रभु! तुमने तीन लोकके पूज्यसे उपार्जित किए हुए कामदेवका घमंड लज्जित कर दिया था अर्थात् कामदेव कोई चीज नहीं है। सुन्दरताका नाम है कामदेव। तो आपने जगत् भरकी सुन्दरताको लज्जित कर दिया था याने आपका रूप इतना मनोरम था कि उस समय में आपकी तरहका किसीका रूप न था। कैसे हैं ये कामदेव? काम नाम विकारका है कि जो आपमें उदित न हो सका। तो हे अरहनाथ जिनेन्द्र, तुम धीर हो, ज्ञानमय हो, इस कारण आपमें काम विकारका उदय न हो सका और आपने कामके मानको लज्जित कर दिया। भले ही तीनों लोकोंपर विजय पालेसे आप यश वाले बन रहे थे, क्योंकि जगतके प्राणी इस कामके बहुत वशीभूत हैं। तो सारा जगत कामने वश कर लिया, इस कारण उसके बड़ा ही घमंड फैल रहा था, लेकिन उसको हे अरहनाथ जिनेन्द्र आपने नष्ट कर दिया।

आयत्यां च तदात्वे च दुःखयोर्निनिरुत्तरा।
तृष्णा नदी त्वयोत्तीर्णा विद्यानावा विविक्तया ॥६२॥

ज्ञाननौकासे तृष्णानदीको पार करनेके तंत्रके दर्शकका स्तवन—तृष्णारूपी नदी बड़ी भयंकर है। जगत्के जीव इस तृष्णाके कारण ही दुःखी हैं। जो आगे भी दुःखका बीज है और वर्तमानमें भी दुःखका बीज है। जब समस्त पदार्थ अपने

Version 1

आपकी सत्तासे हैं, स्वतंत्र हैं, परिपूर्ण हैं, एकका दूसरेसे संबंध नहीं है तो ऐसा यह जीव भी सबसे निराला केवल अपने स्वरूपमें रहने वाला, अपनी परिणतिसे परिणमने वाला, इसका दूसरा क्या हो सकता है ? है तो कहीं कुछ नहीं, किन्तु तृष्णा में सारे जगत्को इसने उपयोगमें रख लिया। यह भी चाहिए, यह भी हो, ऐसा भी हो, उसकी यह तृष्णारूपी नदी इस दुःख की जड़ है। इसकी वेदना बड़ी कठिन है। जगत्के प्राणी इसे तैरकर पार नहीं हो पाते। विरला ही जो पार हो गया सो भगवान। तो यह तृष्णारूपी नदी जो वर्तमानमें भी दुःखका बीज है और भविष्यमें भी दुःखका बीज है ऐसी नदीको हे अरहंत जिनेन्द्र आपने उत्तीर्ण किया। किसके द्वारा इस नदी को पार किया ? तो विद्यारूपी नौकासे, ज्ञानरूपी नौकासे, जो रागद्वेषसे रहित है, अन्य पदार्थके लगावसे रहित है ऐसे ज्ञान रूपी नौकाके द्वारा आपने इस तृष्णा नदीको पार किया। इस छंदमें अनेक तथ्य बताये गए हैं। यह तृष्णा इस भवमें भी दुःखका बीज है, परभवमें भी दुःखका बीज है, इसका तैरना बड़ा कठिन है। ये तीन बातें तो तृष्णानदीकी विशेषतामें कहीं और आपने इस तृष्णा नदीको पार किया, जिसका पार किया जाना कठिन था। काहेके द्वारा ? विविक्त ज्ञानरूपी नौकाके द्वारा याने विशुद्ध ज्ञान, जिस ज्ञानमें उपाधिका सम्बंध नहीं, केवल ज्ञान ज्ञानमात्र। उस ज्ञानके द्वारा आपने तृष्णाको नष्ट

किया। इससे शिक्षा यह मिलती है कि जितना दुःख है वह सब तृष्णाका है और तृष्णा दूर की जा सकती है इस भेदविज्ञानसे। मेरा मात्र मैं हूं, मेरा बाहर कहीं कुछ नहीं, किसी पदार्थका कुछसे कुछ परिणमन हो, वह उनकी बात है, मेरा परिणमन मेरेमें है, ऐसा जब ज्ञान जगे तो तृष्णा नदी पार की जा सकती है।

अन्तकः क्रन्दको नृणां जन्मज्वरसखा सदा।
त्वामन्तकान्तकं प्राप्य व्यावृत्तः कामकारतः ॥९३॥

प्रभुकी अन्तकान्तकता—अंतकः अर्थात् यमराज मृत्यु यह इस प्राणीका क्रन्दन करने वाली है, रुलाने वाली है याने इससे ये प्राणी बड़े दुःखी हैं। कैसा है यह ? अंतकः याने यमराजमें जिसका जन्म और जन्मरूपी ज्वर जिसका मित्र है याने मरणका मित्र जन्म है। जन्म बिना मरण जीवित नहीं रह सकता, ऐसा इसका घना मित्र है, क्योंकि जन्म नहीं है तो मरण फिर कहाँ टिकेगा ? तो मरण भी जन्म बिना नहीं टिक सकता, इस कारण जन्म मरणका घनिष्ट मित्र है। तो जिसका जन्म घनिष्ट मित्र है ऐसा यह अंतक जगतके जीवोंको रुला रहा है। सो हे प्रभु तुम हो अन्तकान्तक मायने अंतक का अंतक। मरणका मरण कराने वाले याने मरणका जिसने अंत किया है ऐसा प्रभु आपको पाकर यह मरण चुपचाप अपने आप यहाँसे लौट गया। जैसे किसी बलिष्टको देखकर कोई शत्रु

Report any errors at vikasnd@gmail.com

चुपकेसे लौट जाता है ऐसे ही यमराज भी आपको देखकर चुपकेसे लौट गया अर्थात् आप मरणरहित हैं। न आपका जन्म है न मरण है। जब मरण नहीं है तो जन्म सखा भी कहांसे रह सकता ? ऐसे हे प्रभु आप जन्ममरणसे रहित केवल एक विशुद्ध ज्ञानज्योति स्वरूप शाश्वत अपनेमें विराजमान रहते हो।

भूषावेषायुधत्यागि विद्यादमदयापरम्।
रूपमेव तवाचष्टे धीरदोषविनिग्रहम् ॥९४॥

प्रभुरूपमें विद्या इन्द्रियदम व दयापरताका दर्शन—हे नाथ ! आपका रूप ही इतनी बातोंको बता रहा है क्या क्या हैं वे बातें, जिनको आपकी मुद्रा (शक्ल) बता रही है ? आपकी मुद्रा ज्ञान, दमन और दया ये तीन बातें बता रही हैं, आप इन तीनों बातोंमें तत्पर हैं। आपकी मुद्रा है वेशभूषा और हथियारका जहाँ त्याग है। हथियारका त्याग है उससे ही यह प्रकट हो रहा कि आप दयाके सिंधु हैं। जो क्रूर होगा वह कुछ न कुछ हथियार लिये रहेगा, पर आप दयाकी मूर्ति हैं। आपको हथियारसे क्या प्रयोजन ? और आपके वेशभूषा नहीं है। यह बात बतला रही है कि आप इन्द्रियदमनमें तत्पर हैं, ज्ञानके भण्डार हैं और इन्द्रियदमनमें कुशल हैं, क्योंकि जिसके इंद्रियदमन नहीं वह शरीरसे अवश्य कुछ लगाव रखता है और शरीरके लगावकी धुनमें कोई न कोई प्रकारका एक

http://www.jainkosh.org

भूषण या शृङ्गार या सफाई यह शरीर पर रखता है तो भेष और आयुधसे रहितकी मुद्रा यह बतला रही है कि आप ज्ञान इन्द्रियदमन और दयामें तत्पर है तथा हे धीर आपकी मुद्रा यह बतला रही है कि यहां दोषोंको विनिग्रह किया है अर्थात् यथाजातरूप ज्ञान ज्ञानमें ही उपयुक्त हो रहा। ज्ञान ज्ञानस्वरूपको सम्हालता हुआ विचित्र अलौकिक आनन्द पा रहा, ऐसा आपका परम शान्त रूप इन सब गुणोंको दर्शा रहा है।

समन्ततोऽङ्गभासां ते परिवेषेण भूयसा।
तमो बाह्यमपाकीर्णमध्यात्मध्यानतेजसा ॥९५॥

प्रभुकी ज्योतिर्मयता—हे प्रभु, आपके शरीरकी जो आभा है, भामण्डल जो चारों तरफसे आभा है उसके जो चार देश हुए गोलाकार एक महान् उसके द्वारा तो आपने बाहरके अंधकारको दूर किया और आध्यात्मिक अंधकारको ध्यानरूपी तेज के द्वारा दूर किया याने बहिरङ्ग और अन्तरङ्ग दोनों प्रकारके अन्धकारको आपने नष्ट कर दिया। कैसे नष्ट हुआ बाहरी अंधकार ? तो आपके शरीरकी जो आभा है, उसका जो एक मंडल है उसके द्वारा बाह्य अंधकार दूर हुआ और आध्यात्मिक अंधकार अध्यात्मध्यान रूपी तेजके द्वारा दूर हुआ याने प्रभु भीतर में ज्ञानज्योतिके पुञ्ज थे और बाहरमें शरीरकी ऐसी आभा थी कि जिससे बाहरी अंधकार दूर हुआ। इस तरह आप अन्तरंग और बहिरंग दोनों प्रकारके अंधकारके नष्ट करने वाले हो।

Version 1

सर्वज्ञज्योतिषोद्भूतस्तावको महिमोदयः ।
कं न कुर्यात् प्रणम्रं ते सत्त्वं नाथ सचेतनम् ॥९६॥

प्रभुका महिमोदय—हे प्रभु, आपकी महिमाका बहुत बड़ा उदय है। कैसे प्रकट हुआ ? सर्वज्ञकी ज्योतिषोंके द्वारा याने आपने केवलज्ञानके द्वारा समस्त पदार्थोंको जाना, इतना विशुद्ध आपका ज्ञान है, उस ज्ञानकी महिमाका ऐसा उदय है कि किस बुद्धिमानको, किस सचेतनको, किस जानकारको नम्रीभूत न कर दे। कोई पत्थर हो, अचेतन हो वही तो नम्र न हो सकेगा, क्योंकि सचेतन है, बुद्धि रखता है, वे सब आपके चरणोंमें नम्र हो जाते हैं, क्योंकि आपकी महिमाका ऐसा ही उदय है। किसकी महिमा है ? वह सर्वज्ञ जो केवलज्ञानी हुए, जो विशुद्ध हैं रागद्वेष मलीनतासे रहित हैं उस ज्ञान वैभवके कारण सभी जीव आपके चरणोंमें नम्रीभूत हो जाते हैं याने भगवान किसका नाम है यह बात इस छंदमें बताया है। भगवान नाम है विशुद्ध ज्ञानका, जहाँ रागद्वेष नहीं, मलीनता नहीं, केवल ज्ञान प्रकाश मात्र है उस ज्ञानज्योतिका नाम भगवान है, सो जिसकी नजरमें प्रभुका यह स्वरूप आया उस स्वरूपकी ओर झुकता ही रहेगा, ऐसी आपकी महिमाके उदयसे समस्त सचेतनोंने, बुद्धिमानोंने, दिल वालोंने प्रणाम्य कर दिया।

तव वागमृतं श्रीमत्सर्वभाषास्वभावकम् ।
प्रणीयत्यमृतं यद्वत् प्राणिनो व्यापि संसदि ॥९७॥

प्रभुवचनामृतकी तृप्तिकारिता—हे प्रभु, आपका वचनरूप अमृत जो समस्त भाषाका स्वभाव रखता है वह प्राणियोंको अमृतकी तरह प्रीति उत्पन्न करता है। जैसे लोग अमृतका पान करते हैं, इसी प्रकार आपकी वाणी सुनकर लोगोंने एक अद्भुत अलौकिक अमृतका पान किया। दिव्यध्वनि खिरी थी समवशरणमें। सो उस समवशरणमें प्राणियोंने आपके वचनामृतका पान किया। क्यों हैं वे वचन अमृत कि वहाँ वस्तुका सही स्वरूप बताया गया। और जीवका उद्धार होगा तो सही स्वरूपके ज्ञानसे ही होगा, अज्ञान द्वारा उद्धार नहीं हो सकता। ज्ञान ही उद्धार कर सकता है। तो वह ज्ञान आपकी वाणीमें है। उसे जो सुनता है वह अमृतकी तरह मानो उसका फल प्राप्त करता है। जीव सभी अमर हैं, कोई मरता नहीं, स्वरूप अमर है। कभी मरण नहीं होता, उसे जिसने ज्ञानमें पाया वह अमर बन गया। अमर तो था ही। अमर न मानकर जीव दुःखी था। अब जैसा अमर स्वरूप है वैसा ज्ञानमें आया तो इसके सारे संकट दूर हो गए। तो आपका वचनामृत अमृतकी तरह लोगोंको सुख देता है, आनन्द देता है।

अनेकान्तात्मदृष्टिस्ते सती शून्यो विपर्ययः ।
ततः सर्वं मृषोक्तं स्यात्तदयुक्तं स्वघाततः ॥९८॥

प्रभुकी अनेकान्तमयी सती विभूति—आपकी अनेकान्ता-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

त्मक दृष्टि यही एक सती है, सही है, समस्त पदार्थ अनेकान्तात्मक हैं। तो ऐसा स्वरूप जो बताया, ऐसी दृष्टि जो कराया वह तो पवित्र ही है और अनेकान्तात्मक दृष्टिसे रहित हो तो वह विपरीत है। वह मृषा भी है, क्योंकि वह अपना ही घात करती है याने जो पुरुष एकान्तकी बातमें आग्रह करते हैं उससे उनका ही घात है, उन्हें मोक्षमार्ग नहीं मिलता। जैसे जो मानते हैं कि जीव नित्य अपरिणामी है तो जब आत्मामें कुछ नहीं बनता। जो लोग मानते हैं कि आत्मा अनित्य है, निरन्तर नया-नया उत्पन्न होता है तो उन्हें क्या फिक्र पड़ी? तप करे कोई, मोक्ष पाये कोई। ऐसा कौन करेगा? तो जो आपकी दृष्टिसे बहिर्मुख है, जो किसी एकान्तका आग्रही हो गया है वह मृषा है, झूठ है, क्योंकि उससे उसका ही घात होता है। इस जीवकी रक्षा करने वाली दृष्टि अनेकान्त दृष्टि है। सो सिद्धान्त आपका प्रकट हुआ, इसलिए आप सर्व जीवोंके हितके करने वाले हो।

ये परस्खलितोन्निद्राः स्वदोषेभनिमीलिनः।
तपस्विनस्ते किं कुयुरपात्रं त्वन्मतश्रियः ॥९९॥

मुग्ध तपस्वी जनोंमें प्रभुदर्शनलक्ष्मीलाभकी अपात्रता—जो परपदार्थोंके लगावसे अपने स्वरूपसे स्खलित हो गए हैं और अपने दोष समूहको निरखनेमें आंखें मींच गए ऐसे तपस्वी जन आपके मनलक्ष्मीके अपात्र हैं याने ये तपस्वी, वे

http://www.jainkosh.org

संन्यासी जो अपने स्वरूपसे स्खलित हैं और अपने दोषोंको देख नहीं पाते हैं वे आपके मनरूपी लक्ष्मीके अपात्र हैं। उनकी दृष्टिमें यह अनेकान्त शासन आ नहीं पाया है तो अपात्र हैं। इसका अर्थ है कि उनका कल्याण नहीं बनता। जो आपकी सत्लक्ष्मीका सत्कार करेंगे वे ही पुरुष संसारसे पार होते हैं। तो जो आपके स्याद्वादके सिद्धान्तसे बहिर्भूत हैं वे मोक्षमार्गके पात्र नहीं हो पाते।

ते तं स्वघातिनं दोषं शमीकर्तुमनीश्वराः।
त्वद्द्विषः स्वहनो बालास्तत्त्वावक्तव्यताश्रिताः ॥१००॥

प्रभुदर्शनद्वेषियोंकी स्वघातिता—जो सम्यग्ज्ञान नहीं पाते और एकान्तका आग्रह रखते हैं वे अपना ही घात करने वाले हैं। सो अपना ही घात करने वाले दोषोंका शमन करनेमें समर्थ नहीं हैं। हे प्रभु जो आपके मतसे विद्वेष रखते हैं वे अपने आपका हनन करने वाले अज्ञानी जन हैं। जो पुरुष स्याद्वादसे विरोध रखते हैं वे तत्त्वको कह ही नहीं सकते। अथवा कहते-कहते ऐसे भूलके मार्गपर पहुंच जाते हैं कि तत्त्व अवक्तव्य है या तत्त्व नहीं है, शून्य है आदिक धारणायें बना लेते हैं। इस जीवका कल्याण है किस तरह कि रागद्वेष मोह मिटे और आत्माके स्वरूपमें ज्ञानका निवास रहे, यह बात सम्यग्ज्ञान होनेपर ही बनती है, मिथ्याज्ञानमें नहीं बन सकती,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

क्योंकि उपयोग अपने आपके ज्ञानस्वभावमें टिके तो वह ही उपयोग टिक सकता है जो परम है, शुद्ध है, सही है। तो जो पुरुष अनेकान्तसे द्वेष रखते हैं वे अपना ही घात करते हैं।

सदेकनित्यवक्तव्यास्तद्विपक्षाश्च ये नयाः।
सर्वथेति प्रदुष्यन्ति पुष्यन्ति स्यादितीहिते ॥१०१॥

सर्वथावाद व स्याद्वादके दोष व गुणका निर्देश—वस्तुके जाननेके लिए जितने धर्म हैं, जैसे वस्तु सत् है, वस्तु एक है, वस्तु नित्य हैं, वस्तु वक्तव्य है अथवा उनसे उल्टा कह लीजिए। वस्तु असत् है, अनेक है, अनित्य है, अवक्तव्य है। तो इन सब बातोंको कहने वाला जो नय है तो उनमें अगर सर्वथा शब्द जुड़ा हो, उनका आशय सर्वथा माननेका ही तो दोष है, और स्यात् शब्द लगा है याने अपेक्षा दृष्टिसे कहा जा रहा हो तो वह आत्माका पोषण करता है। जैसे कोई कहे कि आत्मा अनित्य है, सर्वथा अनित्य है, हर प्रकार अनित्य है। क्षण-क्षणमें दूसरा दूसरा आता है तो अब इसमें आत्माका पोषण क्या रहा? कहाँ आत्मा जायगा? पाप कोई करे, फल कोई पायगा, तपश्चरण कोई करे, मोक्ष कोई पायगा। क्योंकि आत्मा तो नया-नया बदलता है, जो करे सो ही तो आगे फल में नहीं है तो वहाँ दोष है। कोई कहे कि आत्मा तो दिव्य अपरिणामी है, उसमें तो कुछ बदल भी नहीं होती। तो बदल नहीं होती, संसार किसका? फिर मोक्ष किसको करायें?

इसी तरह सभी प्रकारके धर्म यदि सर्वथा आग्रह रूपमें हों, हठवाद हों तो उसमें दोष है और यदि अपेक्षा दृष्टिसे सहित हों तो उससे आत्माका पोषण है। तो हे प्रभु आपका सिद्धान्त स्यात् शब्दसे सहित दर्शनको बताता है, इसलिए आपका बताया हुआ उपदेश मोक्षमार्ग है, वह जीवका भला करने वाला है।

सर्वथा नियमत्यागी यथादृष्टमपेक्षकः।
स्याच्छब्दस्तावके न्याये नान्येषामात्मविद्विषाम् ।१०२।

आत्मविद्वेषियोंमें स्याद्वादन्यायकी अपात्रता—हे प्रभु! आपके सिद्धान्तमें सर्वथाके नियमका त्याग है याने वस्तुका अपेक्षासे वर्णन होता है और वहाँ वस्तु अवक्तव्य है, फिर भी वर्णन अगर किया जायगा तो अपेक्षासे किया जायगा। सर्वथा कोई धर्म नहीं होता। जैसे नेत्रका ही वर्णन करे कोई तो किसीने कहा कि ये तीन फिटके हैं, किसीने कहा कि ये डेढ़ फिटके हैं, किसीने कहा—हरी है तो क्या वे सब गलत हैं? उनकी अपेक्षा जुदे-जुदे हैं, इस कारण गलत कोई नहीं है, और वह हठ कर जाय कि नहीं, डेढ़ फिटकी नहीं, हरी नहीं वह तो तीन फिट लम्बी ही है, तो हठमें गलत हो गया। वस्तुका स्वरूप अपेक्षासे सिद्ध होता है। तो यह आपके सिद्धान्तमें जो स्यात् शब्द है वह शब्दकी अपेक्षा रखता है और सर्वथा नियमका त्याग होता है। तो ऐसा आपके ही सिद्धान्त

Report any errors at vikasnd@gmail.com

में है। अन्य जो आत्माके द्वेषी हैं उनके सिद्धान्तमें अपेक्षाका महत्त्व नहीं है। जो वस्तुके स्वरूपको अपेक्षादृष्टिसे नहीं निरखता वह आत्माका द्वेषी है और उसे आत्माकी सिद्धि भी नहीं होती।

अनेकान्तोऽप्यनेकान्तः प्रमाणनयसाधनः।
अनेकान्तः प्रमाणात्ते तदेकान्तोऽर्पितान्नयात् ॥१०३॥

अनेकान्तकी अनेकान्तमयता—प्रभुका सिद्धान्त है अनेकान्त। जो अनेकान्तका ज्ञान करे उसे भी अनेकान्त कहते और वस्तुको अनेकान्त कहते। अनेकान्तका अर्थ है अनेक धर्म वाली चीज। कोई भी वस्तु हो उसमें अनेक धर्म हैं, अनेक स्वभाव हैं, जैसे पुद्गल है; कैसा उसमें रस है, कैसा गंध है, कैसा आकार है। तो अनेक बातें हैं ना ? आत्मा है, उसमें क्या गुण है, कैसी पर्याय है, क्या स्वभाव है, अनेक बातें हैं। तो अनेक धर्म वाला है पदार्थ, इसलिए पदार्थको अनेकान्त कहते हैं। और इस अनेकान्तको बताने वाला ज्ञान भी अनेकान्त है। सो अनेकान्त भी अनेकान्तरूप है, क्योंकि एक एक धर्मसे बना है अनेकान्त, तो अपेक्षा दृष्टियोंसे एकान्त भी तो पड़ा हुआ है, सो अनेकान्त एकान्तरूप भी है, अनेकान्तरूप भी है याने अनेक एकान्त दृष्टियोंका समुदाय है अनेकान्त और ऐसा अनेकान्त ही प्रमाण और नयका साधक होता है। सो हे प्रभु आपके सिद्धान्तमें प्रमाणसे अनेकान्त सिद्ध है और वह

http://www.jainkosh.org

है एकान्तकी विवक्षा रखने वाले नयोंसे। बस सर्वथा न होना चाहिए। दृष्टियोंसे वर्णन होना चाहिए। जैसे आत्मा द्रव्यदृष्टिसे नित्य है, पर्यायदृष्टिसे अनित्य है। अवस्थाकी दृष्टिसे अनेक रूप है और वहीका वही सदा रहता है। इसलिए एक रूप है। अपने आपकी ओरसे सत् है, अन्यकी ओरसे असत् है, ऐसी वस्तुमें अनेक धर्मात्मकपनेकी सिद्धि होती है। और ऐसे यथार्थ ज्ञानको जो करे सो ही शान्तिका मार्ग पा सकता है।

इति निरुपमयुक्तिशासनः प्रियहितयोगगुणानुशासनः।
अरजिन दमतीर्थनायकस्त्वमिव सतां प्रतिबोधनायकः ॥१०४॥

प्रभुकी प्रतिबोधनायकता—हे अरहंतनाथ जिनेन्द्र ! आपका शासन उपमारहित युक्तिवोंसे सिद्ध है और प्रिय, हित इन दोनोंका योग है ऐसा गुण भरा हुआ शासन है याने प्रिय भी है, हित भी है। अब यों तो जिनको आत्मकल्याणकी वाञ्छा है ही नहीं उनको तो न प्रिय लगेगा, क्योंकि इसमें संयम तपश्चरण आदिक सब कुछकी बात लगी हुई है। ऐसे तो शिकारी भी अगर किसी साधुको देख लें तो वे कहते हैं कि असगुन हुआ, लेकिन जिनको आत्महितकी वाञ्छा है उनको प्रिय है और हितकारी है। छोटी-छोटी बातें जैसे रात्रिको न खाना कोई कठिन बात नहीं है। पापका उदय आनेपर दिन में भी नहीं मिलता, रात्रिमें भी नहीं मिलता, अनेक पाप पड़े हैं, पर कुछ स्वच्छन्दता है कि जरा जरासी बातपर भी अमल

Version 1

मनुष्य आदिक सहित संसार विनम्र होकर उनके चरणोंमें नमस्कार करता भया। प्रभुके क्यों देव, इन्द्र, मनुष्य सब भक्त हैं ? इसका कारण यह है कि सभी जीव सुख शान्ति चाहते हैं और सुख शान्तिका मार्ग मिलता है प्रभुकी मुद्रामें, प्रभुके उपदेशमें। प्रभु जिस मार्गसे चले उस मार्गसे चलनेकी भावनामें। वे सब बातें प्रभुकी उपासनामें प्रकट होती हैं, इसी कारण सभी जीव प्रभुके चरणोंमें भक्त होकर सेवा करते भये। यह सब माहात्म्य है प्रभुके ज्ञानविकासका, विशुद्ध ज्ञानविकासका। रागद्वेष इष्ट अनिष्ट बुद्धिसे रहित एक विशुद्ध ज्ञानप्रकाश उत्पन्न हुआ है, वे स्वयं आनन्दमय हैं। तो जो विशुद्ध आनन्दमय है उसकी उपासनासे वह आनन्दकी झलक मिलेगी और ऐसा शासन प्राप्त होगा कि जिस शासनसे चलकर आनन्द मिल सकता है। तो प्रभुके ज्ञानकी महिमा है जो सारा संसार उनके चरणोंका दास हो गया।

यस्य च मूर्तिः कनकमयीव स्वस्फुरदाभाकृतपरिवेषा।
वागपि तत्त्वं कथयितुकामा स्यात्पदपूर्वा रमयति साधून् ॥१०७॥

प्रभुकी मूर्ति व वाणीकी रमणीयता—जिनकी मूर्ति स्वर्णमयी हैं, मल्लिनाथ जिनेन्द्रके शरीरका वर्ण स्वर्णमय था, तो जिनकी मूर्ति स्वर्णकी तरह अपनेमें स्फुरायमान जो कान्ति है, उससे जो उनका भामण्डल बना ऐसी कान्तिमान जिनकी मूर्ति है, और जिनके वचन कैसे हैं कि जो पदार्थको कान्तिमान

करते हुए स्यात् पद पूर्वक चलते हैं और साधु सज्जन पुरुषों को उसमें रमण कराते हैं, साधु संत जन, आत्महित चाहने वाले ज्ञानी पुरुष कहाँ रमण करते हैं ? ज्ञानकी बातोंमें। ज्ञानके उत्कृष्ट उत्कृष्ट रहस्य मिलते जायें वहाँ साधुवोंका, ज्ञानियोंका मन रमता है। ज्ञानी पुरुषोंका मन संसारकी इन विनाशीक बातोंमें नहीं रमता, किन्तु ज्ञानप्रकाशमें ही उनका मन रमता। सो उस ज्ञानप्रकाशका साधन है प्रभु आपकी वाणी, दिव्यध्वनि। तो इस वाणीने साधुवोंको आत्मरमण कराया और उनके आनन्दके पहले पापविनाश करनेमें कारण हुई।

यस्य पुरस्ताद्विगलितमाना न प्रतितीर्थ्या भुवि विवदन्ते।
भूरपि रम्या प्रतिपदमासीज्जातविकोशाम्बुजमृद्हासा ॥१०८॥

प्रभुधामकी रम्यता—जो विवाद करने वाले लोग हैं, जैनशासनसे विद्वेष करने वाले हैं वे जिनके सामने मानरहित होकर ऐसा शान्त हो गए कि अब विवाद नहीं कर सकते। कोई पुरुष विवादकी इच्छा करके भी जाय प्रभुके पास तो उनके दर्शन करते ही विवाद करनेके सारे विकल्प नष्ट हो जाते हैं। भक्तिसे उसका हृदय नम्र जाता है और विवादकी जगह अनुराग प्रकट हो जाता है। तो जो प्रतिवादी जन हैं वे हे मल्लिनाथ जिनेन्द्र आपके सामने मानरहित हो जाते और फिर वे कुछ विवाद नहीं कर पाते। आपके सत्संगसे यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

सारी पृथ्वी रमणीक हुई। पृथ्वी रमणीकके मायने हैं कि सब लोग सुखी हो गए। सुखमें पृथ्वी रमणीक कहलाती है। तो जहाँ आप राजते हैं वहाँ सब सुखी रहते हैं, वहाँ विप्लव, विद्रोह आदिक नहीं हो सकते। तो यह सारी पृथ्वी रमणीक हो गयी और मानो एक मृदु हास्य करती हुई पृथ्वी हो, कमल फूल रहे हैं, षट् ऋतुके फल फल रहे हैं. मनुष्योंके हृदय प्रफुल्लित हैं, तो सारी पृथ्वी वहाँ प्रसन्न और रमणीक है।

यस्य समन्ताज्जिनशिशिरांशोः शिष्यकसाधुग्रहविभवोऽभूत्।
तीर्थमपि स्व जननसमुद्रत्रासितसत्त्वोत्तरणपथोऽग्रम् ॥१०६॥

प्रभुतीर्थकी संकटहारिता—हे प्रभु आप ऐसे शोभायमान होते हो जैसे कि समस्त ग्रहोंके बीच चन्द्रकी शोभा होती है। तो ऐसे शिशिर शीत किरणों वाले चन्द्रमाके ये सब ग्रह वैभव थे मायने शिष्यसमूह था और आप गणधर मनुष्य, देवेन्द्र आदिके बीच आप ऐसे शोभायमान हुए जैसे कि अनेक तारों के बीच पूर्ण चन्द्र शोभायमान होता है, क्योंकि आपका तीर्थ भी इस संसार समुद्रमें दुःखी हुए प्राणियोंको तारनेमें अग्रणी है, क्योंकि लोग आपके शिष्य बने, अव्रती हो वह भी भक्त, व्रती हो वह भी भक्त। गणधर हो वह भी भक्त। तो उनके इस अनुरागका कारण क्या था कि प्रभुका सिद्धांत ऐसा पवित्र था कि जिस पर चलनेसे मनुष्य संसार समुद्रके सारे संकटोंसे दूर हो जाता है। जीवोंको यह ही तो चाहिए कि त्रास सदा

के लिए मिट जाय, और वह बात मिलती है प्रभुके शासनमें, इस कारणसे सब लोग आपके भक्त हुए।

यस्य च शुक्लं परमतपोऽग्निर्ध्यानमनन्तंदुरितमधाक्षीत्।
तं जिनसिंहं कृतकरणीयं मल्लिमशल्यं शरणमितोऽस्मि ।११०।

दुरितध्वंसी प्रभुकी कृतकरणीयता—हे मल्लिनाथ जिनेन्द्र आपका शुक्लध्यान परम तपश्चरण अनन्त पापको जलाने वाला था। शुक्लध्यान किसे कहते? अनुभूति ध्यानको अनुभूति क्या? याने जहाँ ज्ञान शुद्ध रहे, रागद्वेषकी मात्रा न हो, केवल पदार्थको विशुद्ध जाने, ऐसो धारी बनी रहे उसे कहते हैं शुक्लध्यान। तो इस शुक्लध्यानमें यह ही परम तप है, इसीके लिए बाह्य तप हैं। तो जिनके शुक्लध्यानने अनन्त पापोंको जला डाला, ऐसे हे जिनश्रेष्ठ आप कृतकृत्य हुए। जो करने योग्य था सो कर लिया। अब आपको जगत्में कुछ करना नहीं रहा। ऐसे हे कृतकृत्य, हे जिनश्रेष्ठ शल्यरहित मल्लिनाथ भगवानकी शरणको मैं प्राप्त होता हूं। जो अज्ञानी हो, शल्यसहित हो, अधीर हो, घबड़ाहट हो उसकी शरणको कौन गहता है? यद्यपि वे भी जीव हैं और उनपर कर्मका उपद्रव छाया है, भीतर तो उनका स्वरूप वही है जो प्रभुका है, मगर उनकी शरणमें आने वालोंको मिलता कुछ नहीं और हे प्रभु जिनेन्द्र आप शल्यरहित हो, अनन्त ज्ञान, अनंत दर्शन, अनन्तशक्ति और अनन्त आनन्दके अधिकारी हो, इस कारण

मैं आपकी शरणको प्राप्त होता हूँ।

अधिगतमुनिसुव्रतस्थितिर्मुनिवृषभो मुनिसुव्रतोऽनघः।
मुनि परिषदि निर्बभौ भवानुडुपरिवीतसोमवत् ॥१११॥

प्रभुकी मुनिपरिषन्नायकता—मुनि सुव्रतनाथके स्तवनमें कह रहे हैं कि ये मुनिसुव्रत प्रभु मुनियोंके परिषदमें ऐसे शोभायमान हुए जैसे कि नक्षत्रोंके द्वारा घिरा हुआ चन्द्रमा शोभित होता है। प्रभु सकल परमात्मा हो जाते हैं तो उनकी सेवामें हजारों मुनिजन रहते हैं, उनसे भी घिरे हुएसे रहते हैं। तो वहाँ चित्रण किया है कि जैसे नक्षत्रोंसे घिरा हुआ पूर्ण चन्द्र शोभित होता है ऐसे प्रभु आप मुनियोंकी सभामें शोभित हुए थे। कैसे थे वे मुनिसुव्रत जिनेन्द्र कि जिन्होंने मुनियोंके उत्तम व्रतोंकी स्थिति भली प्रकार की। खुद मुनि थे और मुनिव्रतका पालन भले प्रकार वही कर सकता जो मुनिव्रतसे परिचित हो। प्रभु एक विशुद्ध ज्ञानमार्गकी ओर चल रहे थे। तो ऐसे महान् संतोंने चरणानुयोगमें क्या है, किस तरह करना है, ये विकल्प नहीं करने पड़ते, किन्तु उनकी प्रक्रिया स्वतः ऐसी बनती है जैसा कि चरणानुयोगमें लिखा है, और इस तरहसे यह कह सकते कि ऐसे महान तीर्थंकर महामुनिका जो प्रवर्तन है उससे चरणानुयोग बना। इस तरह भी कह सकेंगे, क्योंकि चरणानुयोगके बारेमें दिव्यध्वनिमें और उपदेशमें वही वर्णन होता है जैसा कि ज्ञानी पुरुषोंका आचरण

होता है। ये प्रभु मुनियोंमें श्रेष्ठ थे और इसी कारण इनका मुनिसुव्रत नाम पड़ा। जो मुनियोंके उत्तम व्रतोंको प्राप्त कर चुके हैं ऐसे ये पापरहित प्रभु मुनिपरिषदमें ऐसे शोभित हुए जैसे नक्षत्रोंके बीच पूर्ण चन्द्र शोभित होता है। इस छंदमें कुछ तथ्योंका प्रकाश किया गया है। तीर्थंकर मुनिसुव्रत ही क्या, जितने होते हैं वे सब पहले मुनि रहते हैं और मुनियोंकी वृत्तिका अच्छी तरहसे पालन होता है और मुनिपदके बाद मुनि अवस्थामें ही अन्तमें १२वें गुणस्थानके अन्तमें जैसे ही समस्त घातियाकर्म दूर हो गए, मोहनीय तो पहले ही दूर हो गया था। तीन घातिया कर्म जैसे ही और दूर हुए कि वे सकल परमात्मा होते हैं और तीर्थंकरोंका समवशरण होता है और वहाँ मुनियोंकी बहुत अधिक सत्संग होती है और अनेक मुनि वहाँ केवली भी हो जाते हैं। इतना विशिष्ट अतिशय ज्ञान है कि वे ऐसे मुनिपरिषदमें शोभित होते हैं।

परिणतशिखिकण्ठरागया कृतमदनिग्रहविग्रहाभया।
तव जिन तपसः प्रसूतया ग्रहपरिवेषरुचेव शोभितम् ।११२।

मुनिसुव्रतनाथके रूपकी ग्रहपरिवेषरुचेव शोभितता—मुनिसुव्रतनाथ भगवानके शरीरका रंग नीलवर्णका था। सो उसीका चित्रण करते हैं कि मोरके कंठकी तरह वर्ण है जिसके शरीरकी आभाका, सो कैसी है वह शरीरकी आभा कि जिसने मदका निग्रह कर दिया, ऐसे निग्रहकी आभा। जब कोई

Report any errors at vikasnd@gmail.com

पुरुष कषायोंका शमन करता है और विषयोंकी रेखा जब शरीरपर, मुखपर नहीं आती है तब एक अद्भुत छवि बनती है। जीवके परिणामोंका असर इस शरीरपर पड़ता है। जैसे कि जब क्रोध हो तो शरीरमें भी विकार रहता है। ओंठ कांपने लगें, नेत्र भृकुटी चढ़ जाय, बुद्धि मलीन हो जाय, इसी प्रकार जब घमंड होता तो विकार, मायाचार होता तो उसका भी विकार देहपर झलकता है। ऐसे ही लोभ तृष्णामें भी यह विकार झलकता है। जिसके परिणाम भले होते हैं उसके शरीरमें भी बाधायें कम होती हैं। भले ही कोई तीव्र पाप-कर्मका उदय हो कि भले परिणाम होकर भी शरीरमें प्रतिकूल बात जगती हो, किन्तु प्रायः एक ऐसा सम्बंध है कि आत्माके जिस प्रकारके भाव होते हैं शरीरपर भी वैसी अनुकूल बात बर्तती है। तो प्रभु जिनेन्द्रके मद नहीं रहा, कषाय नहीं रही तो एक विचित्र आभा होती है, एक तो शरीरकी आभा, दूसरे आत्माकी शांतिके कारण उस आभाका कई गुणित हो जाना। उस शरीरकी आभाके द्वारा हे जिनेन्द्र देव ऐसी शोभा होती हुई कि जैसे मानो नक्षत्रोंके परिमंडलकी आभा जग रही हो। नक्षत्र प्रायः कुछ नील वर्णके होते हैं और उनकी आभा भी आस-पास फैली हो तो जैसे वहाँ शोभा है वैसे ही हे प्रभु, आपके परिमण्डलकी शोभा है। इस भगवानके शरीरका वर्ण और शान्तिका प्रभाव, इन दो बातोंका चित्रण किया है।

http://www.jainkosh.org

शशिरुचिशुचि शुक्ललोहितं सुरभितरं विरजो निजं वपुः।
तव शिवमतिविस्मयं यते यदपि च वाङ्मनसोऽवमीहितम्।।११३।

विश्वोपकारी प्रभुके देहकी शुक्ललोहितता, सुरभितरता व विरजस्कता—प्रभुका शरीर कैसा था? चन्द्रमाकी किरणों की तरह शुक्ललोहित वाला, प्रभुका रुधिर सफेद होता है। इस सम्बन्धमें कुछ आयुर्वेद भी ऐसा बताते हैं कि प्रत्येक मानवके खून दो प्रकारके होते हैं—सफेद और लाल। लाल खून तो कीटाणुवों वाला है और सफेद खून एक निरोगताका साधक और उन कीटाणुवोंका अभाव करने वाला होता है, पर भगवानके शरीरमें तो सभी सफेद खून था। शायद इस तरह भी सफेद खून हो जाय, एक अलंकार रूपमें कह रहे कि चूंकि वे सारे जगतका हित चाहते थे, इसलिए प्रभु सारे संसारकी माताकी तरह है। माता अपने बच्चेसे एक निश्छल वात्सल्य रखती है तो उसके परिणामगें माताके स्तनसे दूध झरता है, वह भी तो सफेद है। तो फिर जो सारे जगत्का हित चाहता हो उसके सारे शरीरका खून अगर दूधकी तरह हो तो अलंकारसे विचारो कि कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, पर एक स्वास्थ्यवर्द्धककी दृष्टिसे कुछ जिनका अच्छा शरीर होता है उनकी ऐसी प्रकृति होती है कि वे सफेद खूनसे भरे हुए होते हैं। अत्यन्त सुगंधित, मल रजसे रहित, ऐसा हे प्रभु तुम्हारा जो यह शिव कल्याणपद देह है सो देह क्या है? एक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/
तो अति विस्मय कारक है, दूसरे यह देह ही वचन और मन की सारी चेष्टाओंको प्रकट करता है। शान्त सुरभित, उससे सब अनुमान होते कि यहाँ विराजमान आत्मा कैसा है? यद्यपि आत्माके गुण आत्मामें हैं, शरीरका कोई सम्बंध नहीं, फिर भी जिस बाह्य धाममें बस रहे हैं उसकी शोभा और उसकी स्थितिसे आत्माका अंदाज, आत्माकी चेष्टा एक प्रकट सी हो जाती है। तो ऐसे प्रभु ज्ञान और वैराग्यकी मूर्ति थे।

स्थितिजननिरोधलक्षणं चरमचरं च जगत्प्रतिक्षणम्।
इति जिनसकलज्ञलाञ्छनं वचनमिदं वदतां वरस्य ते ।।११४।।

प्रभुवाणीकी सकलज्ञचिह्नता—सारा जगत चर अचर जगत, जो चले और न चले, चल अचल जगत, तो चलसे अर्थ हुआ जीवका और अचलसे अर्थ हुआ अजीवका, यह जीव और अजीव पदार्थोंसे भरा हुआ जगत अर्थात् ये सभी पदार्थ उत्पाद व्यय ध्रौव्य लक्षण वाले हैं। प्रतिक्षण प्रत्येक पदार्थमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य रहता है। सुननेमें भले ही ऐसा लगता होगा कि ये तीन चीजें विरुद्ध अर्थ रखने वाली हैं उत्पाद है तो व्यय कैसा? व्यय है तो उत्पाद कैसा? उत्पाद व्यय है तो ध्रौव्य कैसा? और ध्रौव्य है तो उत्पाद व्यय कैसा? लेकिन यह तो वस्तुका स्वभाव है। ये तीनों ही स्वरूप प्रत्येक पदार्थमें प्रति समय रहते हैं। अन्तर नहीं रहता कि अभी उत्पाद हो रहा है तो व्यय न रहे, व्यय अगले समय आ

जाय। एक क्षणका भी अन्तर नहीं। उसी समय उत्पाद है, उसी समय व्यय है, उसी समय ध्रौव्य है। कोईसा भी दृष्टांत लो, जैसे घट फूटा और कपाल बन गईं, खपरियाँ हो गईं तो किस समयकी बात कह रहे? घटके समयकी। तो वहाँ मिट्टी का लोंधा मिटा और पूर्व पर्याय हुई या कपालके समयकी लो तो कपालका उत्पाद, घटका विनाश और मिट्टीका ध्रुव, तीनों ही एक समयमें हैं। अब उसकी अगली जो पर्याय है तो उत्तरका उत्पाद, पूर्वका विनाश और द्रव्यका ध्रौव्य, ये तीनों ही एक साथ रहते हैं। अन्य दार्शनिकोंने भी किसी दूसरे रूपमें ये तीन चीजें माना तो हैं—जैसे सत्त्व, रज और तम गुण। किन्तु उनका भिन्न रूप कैसे? किसी पदार्थमें सत् गुण हैं कभी तो शेष दो नहीं हैं। किसीमें तमो गुण है तो शेष दो नहीं। जब रजो गुण हैं तो शेष दो नहीं, और उसका यों परिचय करते हैं कि जैसे कोई पुरुष अज्ञानमें बस रहा है तो बस वहाँ तमोगुण है, सत्त्व और रज नहीं है। कोई क्रोधी बन रहा तो रजमें आया सत्त्व, तम नहीं। कोई योगी पुरुष है, शान्त है तो सत्त्व गुण आया, दो गुण नहीं। किन्हींने ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीन देवताओंके रूपसे माना, ब्रह्मा रचने वाला सो उत्पाद, महेश—संहार करने वाला सो विनाश और विष्णु—रक्षा करने वाला सो ध्रौव्य, ऐसे तीन देवताओंकी कल्पना की है, पर उनका समय भिन्न-भिन्न है। तो एक ही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

समयमें तीन बातें आनी ही चाहिएँ वस्तुमें, अन्यथा वह सत् नही रह सकता। जिन्होंने तीनमें से किसी एककी भी उपेक्षा की उनका मंतव्य, उनके दर्शनका विषय एक विडम्बना रूप ही रहता है। तो प्रत्येक पदार्थ उत्पाद व्यय ध्रौव्य लक्षण वाला है। ऐसे हे जिनेन्द्र देव तुम्हारे ये वचन सर्वज्ञताके चिह्न हैं। यथार्थ बात जो कहे वह सब कुछ जानने वाला कहलाता है। लोकमें भी तो जो जगत्के समस्त पदार्थोंकी बात बताये वह सर्वज्ञ बिना कैसे बन सकेगा? यद्यपि सर्वज्ञके इच्छा नहीं है, स्वय ही ध्वनि खिरती है, स्वयं ही उपदेश होता है, पर ऐसी ध्वनि उसके ही बनती है स्वतः कि जो सर्वज्ञ हुआ हैं। तो समस्त पदार्थोंके स्वरूपका तो आपके दर्शनमें वर्णन है वह सब सर्वज्ञताकी निशानी है।

प्रभुवाणीके माध्यमसे पदार्थका यथार्थ स्वरूप जानकर मोहक्षयका लाभ लेनेका संदेश—पदार्थोंका यथार्थ स्वरूप जाननेसे क्या लाभ होता है? मोह रागद्वेष मिटता है। जीव का भला मोह रागद्वेषके मिटनेमें है। कोई मोह रागद्वेषके प्रोग्राम बनाये, परम्परा बनाये और उसमें अपनी चतुराई समझे तो वह उनके अपने आपके विकल्पसे चतुराई है। वास्तविक बुद्धिमानी तो यह है कि आत्मा अपने निसंग ज्ञानमय स्वरूप हो जाने और उस ही में रमनेका यत्न करे। मोह रागद्वेष उसके मिटें, वास्तविक चतुराई यह है। तो यह बात

http://www.jainkosh.org

मिलती है पदार्थोंके स्वरूपके ज्ञानसे। प्रत्येक पदार्थ अपनेमें अपनी पर्याय बनाता है। अपनेमें अपनी पर्यायका विनाश करता, और अपनेमें अपने अस्तित्वको सदा रखता। ऐसी बात प्रत्येक पदार्थकी है। मेरा भी यही स्वरूप है। अन्य सब चर अचर जगतका, सबका भी यही स्वरूप है। फिर कौन किसका लगा? कोई किसीका रंच भी सम्बन्धी नहीं। सब अपने अपनेमें अपने ही ज्ञान द्वारा, अपने ही विकल्प द्वारा अपनी परिणति किए जाते हैं। रागद्वेष मोह मिटा कि आत्माका जो सहज ज्ञानस्वरूप है वह स्वयमेव अपने आप पूरा प्रकट होता है। यही स्थिति कल्याणकी है। सो यह सब मार्ग मिलता है वस्तुस्वरूपके परिचयसे। और ऐसा वस्तुस्वरूप हे जिनेन्द्र आपने कहा सो सचमुच आप समस्त लोकके हितकारी हैं।

दुरितमलकलंकमष्टकं निरुपमयोगबलेन निर्दहन्।
अभवदभवसौख्यवान् भवान् भवतु ममापि भवोपशान्तये॥११५॥

आत्मयोगका फल परमात्मत्व—हे प्रभो! आपने आत्मयोगके बलसे याने ज्ञान ज्ञानस्वरूपको ही जाने, निरन्तर जाने ऐसी स्थितिको कहते हैं आत्मयोग। जो कि निरुपम है, जिसकी उपमा अन्य कहीं भी नहीं है, ऐसे एक अनुपम योगके बलसे आठों प्रकारके मल, कलंक, पापको दूर किया, जला डाला और एक मोक्षसुखके अधिकारी हुए। सो हे प्रभु अर्थात्

Version 1

स्तवनमें आये हुए आप, ध्यानके विषयभूत आप मेरे भी संसार को शांतिके लिए होओ। संसार मिटे, संसारका मिलना मिटे, बस इसीका ही नाम है मोक्ष। और जीवका कल्याण है इसी में। अब कोई शरीरमें ममता रखता हो तो यह करतूत है शरीर मिलते रहनेकी। आखिर यह आप बहुत शक्तिमान भगवान स्वरूप है, सो जैसा यह चाहे वैसा इसे मिलेगा नहीं क्या? यह भगवान आत्मा शरीरको चाहे तो शरीर मिलते ही रहेंगे, और शरीर मिलते रहें, यही दुःख है, यही क्लेश है, और शरीर न मिले, इसका उपाय है कि शरीरमें यह मैं हूं, यह मेरा है, इन दोनों कल्पनाओंको नष्ट कर दें। शरीर शरीरमें है, मैं इससे निराला आत्मतत्त्व हूं, ऐसी स्पष्ट सुध बनी रहे और ऐसा ही योग बने तो शरीरोंके मिलनेसे छुट्टी मिल सकती है। तो जैसे यहाँ धनका इच्छुक धनी पुरुषकी उपासना करता है, ज्ञानका इच्छुक ज्ञानीकी उपासना करता है तो संसाररहित स्थिति पानेका इच्छुक संसाररहित भगवान की उपासना करता है। तो ऐसे पापरहित प्रभो, मेरे भी भवों की शान्तिके लिए होओ।

स्तुतिः स्तोतुः साधोः कुशलपरिणामाय स तदा।
भवेन्मा वा स्तुत्यः फलमपि ततस्तस्य च सतः॥
किमेव स्वाधीनाज्जगति सुलभे श्रायसपथे।
स्तुयान्न त्वा विद्वान्सततमभिपूज्यं नमिजिनम्॥११६॥

प्रभुस्तवनसे स्तोताके कुशलपरिणामकी निश्चितता— यह नमिनाथ भगवानका स्तवन चल रहा है। जो साधु पुरुष स्तवन करते हैं प्रभुका तो उनका यह स्तवन उनके कुशल परिणामके लिए होता है। जिसका स्तवन किया जा रहा है वह यहाँ चाहे न हो और उससे कोई फल भी नहीं मिलता अर्थात् जिसकी स्तुति कर रहे वह प्रभु सुख देने नहीं आता, वह तो यहां सामने भी नहीं, फिर भी जो ज्ञानपुञ्ज निर्दोष उस परमात्मतत्त्वकी स्तुति करता है तो यह स्तुति स्तवन करने वालेके नियमसे सुख शान्तिके लिए होती है। तो अब कितना यह स्वाधीन काम है, कितना यह सुगम कार्य है, जिसमें कोई अपेक्षा भी नहीं कि भगवान सामने हों तब काम बने या भगवान कृपा करें तब काम बने। किन्तु स्तवन करने वाला एक उस गुण पिण्डकी स्तुति कर रहा है। तो उसकी स्तुति उसी समय नियमसे उसके कुशल परिणामके लिए होगी। ऐसा जब एक स्वाधीन कारण है, कार्य है, इतना जब सुलभ एक कल्याणका मार्ग मिल रहा है कि जिसमें पराधीनताका नाम भी नहीं है। तो हे प्रभु, सतत् पूज्य इन नमिनाथ जिनेन्द्र देवकी कौन विद्वान् स्तवन न करेगा? एक कल्याणके इच्छुक पुरुषमें उमंग होनी चाहिए, फिर वह कल्याण अपने आप अपने परिणामको कर लेगा। कल्याणकी प्राप्तिमें पराधीनता रंच मात्र भी नहीं है, क्योंकि वह अपने ज्ञान और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

ज्ञानरुचिसे उसकी भलाई होती है। सो हे प्रभो! ऐसी स्वाधीन बातको कोई न अपनाये तो वह समझदार नहीं कहला सकता। इस छंदमें स्तुति करनेके तथ्यका प्रकाश और स्तुति करनेके फलकी बात कही गई है, जिससे यह प्रेरणा मिलती है कि नियमसे अपने समय प्रभुस्तवनमें जो ऐसा यत्न करे और उस प्रभुस्तवनके साथ अपने आपके उस आत्मस्वरूपका मिलान बने, यहाँ भी प्रभुस्तुति ही है, क्योंकि प्रभुमें और आत्मस्वरूपमें स्वभावमें भेद नहीं है। व्यक्ति अवश्य जुदे-जुदे हैं मगर स्वरूप दृष्टिसे देखें तो भेद नहीं है। तो जो प्रभुकी स्तुति करता है उसका ध्यान अगत्या अपने आपके स्वरूपमें आता है। यही कल्याणका मार्ग हैं और यह एक सुलभ कल्याणका पथ है, इस कारण हे प्रभु सभी विद्वान् आपका स्तवन करते हैं।

त्वया धीमन् ब्रह्मप्रणिधिमनसा जन्मनिगलं।
समूलं निर्भिन्नं त्वमसि विदुषां मोक्षपदवी ॥
त्वयि ज्ञानज्योतिर्विभवकिरणैर्भाति भगव-
न्नभूवन् खद्योता इव शुचिरिवावान्यमतयः ॥११७॥

ब्रह्मोपयोगसे विदेहताकी सिद्धि—हे प्रभो, हे ज्ञानवान्, तुमने ब्रह्मस्वरूपमें उपयोग लगाया इस महान योगके बलसे जन्मकी बेड़ीको मूलसे काट डाला जीवके लिए तो जन्म बेड़ी है। हम आप बैठे हैं तो निरन्तर बँधे हुए बैठे हैं। कल्पना

http://www.jainkosh.org

करो कि यह आत्मा स्वरूपसे तो निराला ही है। दूसरा पदार्थ है। यदि यह स्पष्ट अकेला रहता तो इसको शरीरका बन्धन न होता। केवल एक अपना जैसा स्वरूप है ज्ञानज्योति विशुद्ध ज्ञान यही मात्र रहता, तो उसमें संकटका क्या काम था? जितने भी संकट आ रहे हैं वे सब इस शरीरके सम्बंधसे आते हैं। किसी भी प्रकारके संकट हों, दरिद्रताका, इष्टवियोगका, अनिष्ट संयोगका, सम्मान अपमानका, प्रशंसा निन्दाका, भूख प्यासका, रोगका, सारे संकट इस शरीरपर निर्भर है। यदि यह आत्मा शरीररहित रहता, जैसा कि इसका स्वयं स्वरूप है तो इसके लिए कोई आकुलता न थी। शरीर मिला जन्म होने से। तो जन्म एक बेड़ी है। इस बेड़ीको हे प्रभो आपने ब्रह्मोपयोग द्वारा मूलतः निर्भिन्न कर दिया। कहीं ऐसा नहीं कि अभी शरीर नहीं है तो कालान्तरमें शरीर मिल जाय। इस वाक्य अर्थके द्वारा एक दार्शनिक सिद्धान्तका निराकरण होता है। जो ऐसा मानते हैं कि तपश्चरण योग साधनाके बलसे आत्मा मुक्त हो जाता है; शरीर भी नहीं रहता, रागद्वेष भी नहीं रहते, किन्तु इस कालके बाद यद्यपि इस मुक्त अवस्थाका भी बहुत लम्बा काल मानते हैं कल्पकाल, फिर भी जब वह काल समाप्त होता है तो सदा शिव ईश्वर जो एक है जगतका आधारभूत, वह उन मुक्त आत्माओंको वहाँसे ढकेल देता है, पतित करता है और फिर जन्ममें बाँध देता है। एक दर्शनका

Version 1

ऐसा सिद्धान्त है। तो समूल निर्भिन्न कर दिया जन्मबेड़ीको, इससे उसका निराकरण हुआ अर्थात् अब कभी भी यह महा आत्मा, परमात्मा जन्म धारण नहीं करते, सो हे प्रभो आपने इस ब्रह्मोपयोग द्वारा जन्मबेड़ीको सकल घेर लिया और तुम ही विद्वान् पुरुषोंके लिए मोक्षकी पदवी हो, श्रेणी हो, सीढ़ी हो या मोक्षपदके दर्शावनहार हो। तुममें ज्ञानज्योति ऐसी शोभायमान होती है कि आत्मविभवकी किरणोंके द्वारा मानो ऐसा महान् प्रकाश भव्य जीवोंके चित्तमें पहुंचा है कि जिसके आगे जो अन्य मति वाले पुरुष हैं अर्थात् प्रभुके सिद्धान्तसे द्वेष रखने वाले जो अन्य दार्शनिक हैं वे एक खद्योतकी तरह, पटबीजनाकी तरह एक शुक्लवर्णसे होते हैं, एक पलाशतुल्य हो जाते हैं। इस प्रकार नमिनाथकी स्तुतिमें इस दूसरे छन्दमें मुख्यतया इस सिद्धान्तको बताया कि जन्मबेड़ीको तोड़नेका उपाय केवल एक ब्रह्मोपयोग है, पर आत्माका जो सहज चैतन्यस्वरूप है उसका ज्ञान बना रहे, उसका उपयोग रहे, सही ज्ञान जब बना रहे, बस यही ब्रह्मयोग इस जन्मबेड़ीको काटने का कारण है।

विधेयं वार्यं चानुभयमुभयं मिश्रमपि तद्।
विशेषैः प्रत्येकं नियमविषयैश्चापरिमितैः॥
सदान्योन्यापेक्षैः सकलभुवन ज्येष्ठगुरुणा।
त्वया गीतं तत्त्वं बहुनयविवक्षेतरवशात्॥११८॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

बहुनयविवक्षेतरको तत्त्वज्ञानके तंत्रका प्रदर्शन करने वालेका संस्तवन—कहते हैं कि हे प्रभो, पदार्थके स्वरूपके जाननेकी कुञ्जी आपके सिद्धान्तमें बहुत स्पष्ट है। जिस किसी भी पदार्थमें जो कुछ भी समझा जाता हो तो वह तो विधेय हैं। जैसे जीवमें नित्यत्व समझना है तो नित्यपना विधेय है। जो बात पहले कही जा रही है, जिसकी विधि की जा रही है, सद्भाव बताया जा रहा है वह तो विधेय कहलाता है, पर उस विधेयके साथ वार्य और लगा है विधेय याने उसका प्रतियोगी जिसका विधेय लगा है तो विधेय जिसका नित्यपना है, जीव नित्य है तो वार्य हुआ, निषेध्य हुआ जीव नित्य नहीं है। अब ये दोनों बातें सही हैं। जीव नित्य है यह तो द्रव्यदृष्टिसे है, जीव नित्य नहीं है यह पर्यायदृष्टिसे है। तो जहाँ दो तत्त्व सामने आये—विधेय और वार्य। उदाहरणमें नित्य और अनित्य तो वहाँ तीसरी बात अनुभव होती है। मानो जैसे कोई समझा रहा कि देखो द्रव्यदृष्टिसे तो नित्य है, पर्याय दृष्टिसे अनित्य है तो उसने कहा कि तुम तो एक बारमें ही बता दो कि कैसा है? एक समयमें कह दो कि कैसा है जीव, इतनी देर क्यों लगाते? एक साथ कहा नहीं जा सकता, इसलिए दोनों नहीं हैं। अनुभव है मायने अवक्तव्य है। इससे तीन बातें सामने हुई थीं कि वही नित्य है, अनित्य है और

अनुभय है। चाहे अवक्तव्य कहो। अब इन तीनका उभय लगायें, नित्य, अनित्य, अवक्तव्य। लगाइये—क्रमसे नित्यानित्य, नित्य अवक्तव्य, अनित्य अवक्तव्य तीन उभय हुए। जैसे तीन चीजें कोई हों स्वतंत्र। और उनका जोड़ा बनाया जाय तो तीन जोड़े बनेंगे। जैसे नमक, मिर्च और खटाई। ये तीन चीजें रखी हैं। अब उनके जोड़े बनायें तो तीन बनेंगे—नमक मिर्च, खटाई नमक, खटाई मिर्च, ये तीन जोड़े बन सकते हैं क्योंकि तीन चीजें स्वतंत्र हैं और एक बनेगी तीनोंका मिलकर। तो जैसे तीन चीजें हों तो उनका स्वाद ७ तरहसे लिया जा सकता है ऐसे ही जब वस्तुमें तीन धर्म हैं—विधेय वीर्य और अनुभय, तो उसके ७ भङ्ग बन जाते हैं। तीन भङ्ग तो ये हैं ही। तीन होते हैं दो दो के, और एक हो जाता है तीनों का मिलकर। सो और विशेष अगर करें तो प्रत्येकके साथ यह लगायें और साथ ही अनन्त धर्म हैं तो ऐसी दृष्टि बतायें तो अपरिमित एक दृष्टि बनती है सो वह अगर अन्योन्यापेक्ष है, एक दूसरेकी अपेक्षा रखता है तो हे प्रभु आपने बताया कि वह तत्त्व सही है। जैसे एक पुरुष यही कह रहा कि आत्मा क्षणभंगुर है, अनित्य है, बस यही एकान्त किया जा रहा है और दृष्टिमें यह नहीं ले पा रहे कि जीव नित्य है द्रव्यदृष्टिसे, तो उसका अनित्य कहना मिथ्या हो जाता है। कोई पुरुष

जीवको नित्य कहे जा रहा है, नित्य है, खूब नित्य है, अपरिणामी है, अवस्थायें भी नहीं हैं तो अवस्थाका विरोध करनेसे एकान्तमें भी कुछ उपलब्धि न हुई, उसका नित्य कहना मिथ्या है। तो हे जिनेन्द्र देव समस्त लोकमें श्रेष्ठ गुरुराज तुमने यह तत्त्व बताया है जो बहुत तपोंकी विवक्षा और अविवक्षाके वशसे सिद्ध हुआ है।

आत्मकल्याणके लिये वस्तुस्वरूपपरिचयकी अत्यावश्यकता—वस्तुके स्वरूपका परिचय इसलिए आवश्यक है कि सही पूर्ण परिचय होनेसे यह बात चित्तमें पूर्णतया आ जाती कि प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र स्वतंत्र अस्तित्व लिए हुए है, एकका दूसरा कुछ नहीं लगता, ऐसा बोध हुआ तो वहाँ ममता दूर हुई। वर्तमानके जो समागम हैं और उनमें लोगोंको यह बनाया जा रहा है कि किसका घर? मेरा ही तो है, मेरा ही तो बच्चा है मेरा ही तो पति है, स्त्री है, ऐसी जो दूसरोंके विषयमें ममता रहती है तो और अधिक ज्ञान न हो किसीको तो इतना ही सोच ले कि इससे पहले भवमें भी कोई थे पिता पुत्र सम्बंधी किसी भी पर्यायमें हों, थे तो कुछ न कुछ समागम। वे हमारे लिए आज क्या हैं? ख्यालमें भी नहीं। कहो कोई उसी घरमें घरका ही आदमी मरकर बछड़ा हो जाय, झोंटा हो जाय तो उससे क्या मोह रहता है? वह तो जैसे पशुवोंके प्रति व्यवहार है सो ही व्यवहार करेगा। सामने पूर्व

भवके लोग खड़े हैं, मगर किसीसे ममता थोड़े ही होती है। अगर ममता है तो पशुधनके नातेमें ममता है, पूर्व समयके नातेसे नहीं है। और फिर विशेष स्वरूपको जानें कि प्रत्येक पदार्थका अस्तित्व है, स्वयंमें परिणमन है, किसीका किसीसे क्या मतलब है? रही एक विकारी परिणमनकी बात, तो उसमें दूसरा निमित्त तो अवश्य है, मगर निमित्त इसमें न प्रवेश करता, न परिणति करता। यह बात जब समझमें आती है तो अहंकार ममकार दूर हो जाते हैं।

अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमं।
न सा तत्रारम्भोस्त्यणुरपि च यत्राश्रमविधौ ॥
ततस्तत्सिद्ध्यर्थं परम करुणो ग्रन्थमुभयं।
भवानेवात्याक्षीन्न च विकृतवेषोपधिरतः ॥११९॥

परम अहिंसाकी मूर्ति—जगत्के प्राणियोंका परमब्रह्म क्या है? अहिंसा, क्योंकि जहाँ ममतापरिणाम है वहाँ ब्रह्म स्वरूप स्पष्ट है। अहिंसाके परिणामका मतलब कषायभाव न रहे, दूसरोंके प्रति दुर्भावना न रहे, उसे कहते हैं अहिंसा। कोई लोग दयाको कहते कि अहिंसा है, तो वह एक व्यावहारिक बात तो है भली, लेकिन दयाको अहिंसा नहीं कहते। दूसरोंके उपकारको अहिंसा नहीं कहते। दूसरोंका दुःख मिटा देनेको अहिंसा नहीं कहते। किन्तु कषाय परिणाम न रहे उसका नाम अहिंसा है। अब जब कषाय परिणाम नहीं रहता

तो दूसरेको सतायेगा कैसे? दूसरेका बुरा विचारेगा कैसे? तो जो वास्तविक अहिंसा है, वही परम ब्रह्म है, जो परमब्रह्म है सो अहिंसाके रूपसे ही जगत्में जाना गया है। वह अहिंसा वहाँ जरा भी नहीं रह सकती। उस आश्रम विधिमें जिसमें कि लवलेश भी आरम्भ रहता है। वहाँ अहिंसा नहीं झलक सकती। साधु मोक्षप्राप्ति करनेके लिए जो मार्ग बताया गया है साधुपनेका सो मुक्तिका मार्ग है ना, इसलिए ऐसा निर्दोष निर्विकल्प लगावरहित होना चाहिए कि जहाँ अहिंसा कायम रह सके। अब कोई सोचे कि एक लंगोटी भर रख लें, कौन सी बड़ी बात है। तो समझो कि उसका थोड़ा भी विकल्प रखना दुःखका कारण है, मोक्षमार्गका बाधक है, फिर तो और-और बातें भी सोची जा सकती हैं। एक कुञ्जी है जहाँ कोई विचार विकल्प चिन्ता उत्पन्न हों वहाँ अहिंसा नहीं कहलाती। फिर जो सन्यासी जन कुछ खेत भी रख लेते हैं, कुछ बगीचा भी रखते हैं सो भले ही एक ऊपरी प्रसन्नता वे दिखाते हैं, पर वहाँ अहिंसा नहीं है। कुछ तो विकल्प है, कुछ तो चिंता है। वहाँ तो आरम्भसे भी अहिंसा नहीं और भावसे भी अहिंसा नहीं। तो हे प्रभु जिस आश्रम विधिमें रंचमात्र भी आरम्भ हो वहाँ अहिंसा नहीं होती, इस कारण इस परम अहिंसाकी सिद्धिके लिए परम साधु अपने दोनों प्रकारके ग्रन्थों (परिग्रहों) का परित्याग किया। आप निर्ग्रन्थ हुए। आभ्यंतर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

परिग्रह तो मोह और कषाय है और बाह्य परिग्रहोंमें धन-धान्यादिक है। तो बाह्य १० प्रकारके परिग्रहोंको भी त्यागा और आन्तरिक १४ प्रकारके परिग्रहोंको भी त्यागा। वे १४ प्रकार क्या हैं? ६ नो कषाय, ४ कषाय और एक मोह याने मोहनीय कर्मकृत जो विकार है वह विकार दूर हो तो अहिंसा बनती है और मोहनीय कृत विकार है तो वहाँ अहिंसा नहीं कहलाती। सो हे प्रभु, आपने २४ प्रकारके परिग्रहोंको त्यागा, परम दयालु हुए, अहिंसाकी साधना सही बन रही है, इसकी पहिचान क्या है? सीधी पहिचान है कि हे प्रभु, आपके वेश और उपाधिमें रति नहीं रही। जैसा शरीर है सो है, न वहाँ जनेऊ पहिनना, न भस्म रमाना, न जटा रखना, न कोई गटरमाला पहिनना, किसी प्रकारका आपके वेश और उपाधि न रही। बस ऐसी जो आपकी मुद्रा है प्राकृतिक यही मुद्रा यह बतला रही है कि आप परम दयालु हैं और आपने दोनों प्रकारके परिग्रहोंका परित्याग किया उस अहिंसाकी सिद्धिके लिए।

वपुर्भूषावेषव्यवधिरहितं शान्तिकरणं।
यतस्ते संचष्टेस्मरशरविषा तंकविजयम्॥
बिना भीमैः शस्त्रैदयहृदयामर्षविलयं।
ततस्वं निर्मोहः शरणमसि नः शान्तिनिलयः॥१२०॥

शान्तिनिलय प्रभुकी शरण्यताके कारणोंका निर्देशन—

जिनेन्द्र भगवानके स्तवनमें कह रहे हैं कि हे प्रभो! आपका जो रूप है वह शान्तिका करने वाला है और यह बतला रहा है कि बिना शस्त्रके, बिना कोई भयानक वस्तुके आपने आद्र्द हृदय होकर क्रोधका विलय कर दिया, कषाय बैरियोंको नष्ट कर दिया। लोकमें ऐसी बात कही जाती है कि किसीको नष्ट करना हो तो हथियार तो चाहिए जिसके द्वारा उसका विनाश कर दें, पर आपने कषायोंका विलय किया, क्रोधका विलय किया, पर आपका रूप तो शस्त्ररहित है जो इस बातको प्रकट कर रहा है कि कामके बाणके विषके आतंकपर आपने विजय प्राप्त किया है और अपने परम शान्ति प्राप्त की है। जैसे बाण होता है तो उसके नोक पर कुछ विषैला तत्त्व लगाया करते हैं ताकि शत्रुको बाण छिदे तो छिदना तो है, मगर वह विष भी सारे शरीरमें व्याप जाय। जो उस विषका बहुत बड़ा आतंक फैलता है, तो ऐसे ही कामके बाणमें विष लगा है, उसका आतंक सारे जगतमें फैल रहा है, लेकिन आपके इस रूपने, आपकी इस मुद्राने कामके बाणके विषातंक पर विजय प्राप्त की। और बिना ही भयानक शस्त्रके किसी भी प्रकारके शस्त्रके बिना आपने समस्त कषायबैरियोंका विलय किया, इस कारण हे प्रभु आप निर्मोह हो, शान्तिके धाम हो, सो आप मेरे लिए शरण हो, हम सबके लिए शरण हो। जिस-जिस उपायसे आत्माको अपनी सुध हो, ज्ञानप्रकाश जगे, राग द्वेष

दूर हो, बस वही वास्तविक शरण चीज है ।

भगवानृषिः परमयोगदहनहुतकल्मषेन्धनः ।
ज्ञानविपुल किरणैः सकलं प्रतिबुध्य बुद्धकमलायतेक्षणः ।।१२१।।
हरिःवंशकेतुरनवद्यविनयदमतीर्थनायकः ।
शीलजलधिरभवो विभवस्त्वमरिष्टनेमिजिनकुञ्जरोऽजरः ।।१२२।।

नेमिप्रभुकी अतुलवैभवमयता—यह दो श्लोकोंका मिलकर अर्थ है । भगवान तो ज्ञानवान परम आत्मा हैं । भगवान ऋद्धि सिद्धि सम्पन्न हैं, ऋद्धियोंमें सर्वोत्कृष्ट ऋद्धि केवल ऋद्धि कही गई है । ६४ ऋद्धियोंमें सर्वप्रथम केवलज्ञानका नाम आता है । लोग ऋद्धि शब्दसे ऐसा समझते हैं कि कोई लोक में चमत्कार होवे । आकाशमें चल रहे, छोटा बड़ा शरीर बन रहा, ऐसी बातें हों तो वह ऋद्धि कहलाता है, लेकिन ऋद्धि कहते हैं अतिशय विशेषको, उत्कृष्टको । तो जिस ज्ञानके द्वारा तीन लोक, तीन कालके समस्त अर्थोंको एक साथ स्पष्ट जाना जा रहा हो उस ऋद्धिसे भी बढ़कर कोई ऋद्धि है क्या ? तो भगवान ऋषि हैं । नेमिनाथ प्रभुकी स्तुतिमें कहा जा रहा यह सब कि प्रभु कैसे हैं आप ? परम समाधि योगिरूपी अग्नि के द्वारा कल्मष पाप कर्मईंधनको जिन्होंने जला डाला । ये पाप कैसे मिटते हैं, ये कर्म कैसे कटते हैं, उसका उपाय है परम योग । यह ज्ञानोपयोग निज सहज ज्ञानस्वरूपको जानता रहे निरन्तर, ऐसा ज्ञाता रहा करे, यही कहलाता है परम

योग । इस परम योगरूपी अग्निके द्वारा जिन्होंने पापरूपी कर्म ईंधनको जला डाला है, सो हे प्रभु आप भयरहित हुए । इस सारे संसारको ज्ञानकी बड़ी किरणोंसे प्रतिबोध देकर नाथ आप वृद्धकमलायतेक्षण हुए याने कमलवत् नेत्र जिनके विकसित हैं, प्रभुके पलक नीचे नहीं झपकते, खुले हुए रहते हैं । अनन्त बली भगवान अनिमिश नेत्रके होते हैं । सो ऐसा एक ज्ञानका ही प्रसारका एक सही चित्रण करा देने वाले प्रभु आपने प्रथम तो समस्त जगतको ज्ञानकी महान् किरणोंके द्वारा प्रतिबोध किया और प्रतिबोध करनेके बाद आप अभव हुए, भवरहित हुए, मुक्त हुए । प्रभु आप हरिवंशकी पताका हो, नेमिनाथ भगवान हरिवंशमें उत्पन्न हुए और पताका केतु कहते हैं श्रेष्ठको, क्योंकि वह सबसे आगे और सबसे ऊपर चलता है, तद्वत् आप हैं इसलिए आप हरिवंश पताका हो, और निर्दोषता, पवित्रता, विनयदम तीर्थके नायक हो, जो आत्माका कल्याण कर सकने वाले उपाय हैं उन उपायोंके आप नायक हो । खुद करते हैं उपदेश भी आपसे होता है । सो हे शीलके समुद्र अर्थात् बाल ब्रह्मचारी आप भयरहित हैं, अजर है और हे अरिष्टनेमि आप जिन कुञ्जर अर्थात् जिन श्रेष्ठ है । इन दो छन्दोंमें यह बताया है भगवानके जीवनका चित्रण खींचते हुए कि आपने पहले तो सबको समझाया, प्रतिबोध किया और पश्चात् आप संसारसे पार हुए, मुक्त हुए, भवरहित हुए ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

त्रिदशेन्द्रमौलिमणिरत्नकिरणविसरोपचुम्बितम् ।
पादयुगलममलं भवतो विकसत्कुशेशयदलारुणोदरम् ॥१२३॥
नखचन्द्ररश्मिकवचातिरुचिरशिखराङ्गुलिस्थलम् ।
स्वार्थनियतमनसः सुधियः प्रणमन्ति मन्त्रमुखरा महर्षयः ॥१२४॥

प्रभुकी महर्षिप्रणम्यता—यहाँ भी दो छन्द मिलकर हैं। प्रभु आपके चरणकमल कैसे हैं जिनको कि गणधर मंत्र मुखर महर्षि जन अपने कल्याणकी भावनासे प्रणाम किया करते हैं। ये चरणकमल युगल देवेन्द्रोंके मुकुटमें लगे हुए मणियोंमें शोभित रत्नोंकी किरणोंके फैलावसे छुवे गए हैं। आपके चरण कमलोंको देवेन्द्र नमस्कार करते हैं। तो उनके सिरके झुकते ही उनके मुकुटमें जो बड़े कांतिमान रत्न लगा है उनकी आभा आपके चरणोंको छूती है। ऐसे आपके चरणकमल युगल हैं जो मलरहित हैं, निर्दोष हैं कमलदलकी तरह लालिमाको लिए हुए हैं। जिन नखोंके मध्यमें लालिमा छायी हुई है ऐसे आपके चरणकमल हैं जिनको कि विद्वान् जन, अपनी कल्पनासे रखने वाले जन प्रसन्नतासे, भक्तिसे जिन चरणकमलोंको प्रणाम करते हैं। कैसे हैं वे चरणकमल युगल कि नखरूपी चंद्रमाकी किरणों रूप कवचसे अत्यन्त सुन्दर जिनकी शिखाराङ्गुलि हुई है अर्थात् देदीप्यमान है ऐसे चरणकमलोंको निज कल्याण चाहने वाले बड़े-बड़े महर्षि जन प्रणाम करते हैं।

http://www.jainkosh.org

द्युतिमद्रथाङ्गरविबिम्बकिरणजटिलांशुमण्डलः ।
नीलजलदजलराशिवपुः सहबन्धुभिर्गरुडकेतुरीश्वरः ॥१२५॥
हलभृच्च ते स्वजनभक्तिमुदितहृदयौ जनेश्वरौः ।
धर्मविनयरसिकौ सुतरां चरणारविन्दयुगलं प्रणेमतुः ॥१२६॥

गरुड़केतु व हलधर द्वारा नेमिप्रभुकी प्रणम्यता—गरुड़केतु श्रीकृष्ण नारायण अपने बंधुवोंके साथ और उनके ही साथ हलधर (बड़े भाई बलदेव) ये जिनके चरणारविन्द युगल को प्रणाम करते भये, वे प्रभु ध्यानद्वारसे मेरेको पवित्रता प्रदान करें। इस छंदसें एक इतिहासकी झांकी है। अबसे लाखों वर्ष पूर्व श्री नेमिनाथ भगवान तीर्थंकर हुए उसी समयमें श्री कृष्ण और बलदेव भी हुए थे। श्रीकृष्ण और बलदेव एक पिताके पुत्र थे और श्री नेमिनाथ तीर्थंकर उनके चाचाके पुत्र थे। जब उनका एक साथ रहनेका समय था उस समय भी ये नारायण और वज्रभानु उनका आदर रखते थे और जब ये कारण पाकर विरक्त हुन और समाधिबलसे घातिया कर्मों का विनाश किया, प्रभु बने तब तो एक धर्मपिपासाके आशय से यह उनकी सेवामें पहुंचे। गरुड़केतु इसलिए नारायण कहा, श्रीकृष्ण कहा था कि कांतिमान सूर्यबिम्बकी किरणोंके जैसे मानो एक कठिन किरणमंडल हो जिनके, सुभग थे, सुन्दर थे, प्रतापी थे। तभी ९ नारायणोंमें सबसे अधिक प्रसिद्ध हुए तो श्रीकृष्ण नारायण। जिनका नीलमेघकी जलराशिकी तरह

Version 1

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

http://sahjanandvarnishastra.org/

पुरूषार्थसिद्धयुपाय प्रवचन

(प्रथम, द्वितीय, तृतीय भाग)

श्री दि. जैन ... मल्हारगंज इन्दौर

प्रवक्ता :—

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी

"श्रीमत्सहजानद" महाराज

प्रकाशक :—

मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला,

१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ

(उत्तर प्रदेश)

[...ीय संस्करण
१०००]

सन् १९८९

[लागत मात्र मूल्य
२० रुपये]

Report any errors at vikasnd@gmail.com

ऊपरके ऊपर ही बैठ गए। विहार करना, आराम करना, हृदय प्रसन्न करना, प्रभुके गुण गाना, यह सब शोभा जहाँ हो रही है और मेघकी बिजलीसे घिर गया है तट जिसका, ऐसा वह उर्ज्जयन्त पर्वत है। इतना विशाल है कि मेघ तो उसके नीचे रहते हैं अथवा चारों तरफ मेघ फिरते रहते हैं। जिसके शिखर तटोंकी मेघोंने परिक्रमा दी है ऐसा वह उर्ज्जयन्त गिरि मानो इन्द्रने आपके ही लक्षण लिख दिया हो, आपके ही चिह्न लिख गया हो। इस तरह वह शोभित अचल पर्वत तीर्थको बढ़ा रहा है अर्थात् धर्मका प्रसार कर रहा है। मानो इस रीतिसे ऋषि जनोंके द्वारा निरन्तर वहाँ गमन होता है, वहाँ रहते हैं, ध्यान करते हैं और मानो जैसे वहाँसे एक धर्मतीर्थ का भी प्रवाह चलता हो और नाम शब्दके अनुसार तो भाव यह है कि प्रीतिसे विस्तृत है हृदय जिनका, ऐसे पुरुषोंके द्वारा चारों ओरसे निरन्तर जो सेवित किया जाता है उसे कहते हैं उर्ज्जयन्त। रूप भी इसी प्रकार हैं—उर्ज्जयते, उर्ज्जयेते, उर्ज्जयन्ते। बुद्धिमान् पुरुषोंके द्वारा जो पूजित हो उसे कहते हैं उर्ज्जयन्त। पर्वत तो पाषाण होता, मगर हे प्रभो, आपका संसर्ग होनेसे आज भी वह पर्वत पूज्य है।

बहिरन्तरप्युभयथा च करणमविघाति नार्थकृत्।
नाथ युगपदखिलं च सदा त्वमिदं तलामलकवद्विवेदिथ ।।१२९।।

अतएव ते बुधनुतस्य चरितगुणमद्भुतोदयम्।
न्यायविहितमवधार्यं जिने त्वयि सुप्रसन्नमनसः स्थिता वयं।।१३०।।

प्रभुभक्तिभावनाकी अनुसरताका दिग्दर्शन—कहते हैं कि बहिरंग और अन्तरंग दोनों ही प्रकारके साधन हे प्रभु कोई अर्थकृत नहीं हैं, पर हे नाथ, तुम्हारा सारा ही वृत्त, सारा ही आत्मप्रदेश सारे विश्वको हाथपर हस्ततलपर रखे हुए आँवले की तरह आप जानते थे, इस ही कारण बुद्धिमान पुरुषोंके द्वारा नमस्कृत हुए आपका चरित्र अद्भुत उदय वाला है। सो जो न्यायविधिकी बात है उसको अवधारण करके हे जिनेन्द्र तुम्हारेमें अनुराग भक्ति रखते हुए हम सब प्रसन्नचित्त होकर अब स्थित हुए हैं अर्थात् हमको क्या करना है? प्रभुके गुणोंका स्मरण कर हम प्रसन्नचित्त होकर बैठे हुए हैं, बस यही हमारी भगवानके प्रति आकांक्षा या स्नेह है। बस उसमें ही चित्त देते हुए हम स्थित रहें।

तमालनीलैः सधनुस्तडिद्गुणैः प्रकीर्णभीमाशनिवायुवृष्टिभिः।
वलाहकैर्वैरिवशैरुपद्रुतो महामना यो न चचाल योगतः।।१३१।।

पार्श्वप्रभुकी घोर उपद्रवोंसे भी अविचलितताकी महिमा—श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्रकी स्तुतिमें कह रहे हैं कि यह महामना अर्थात् जिसका महान् विचार है, जिसकी बड़ी साधना है, ऐसे ये पार्श्वप्रभु एक बैरी कमठके द्वारा किए गए मेघवृष्टि आदिकके उपद्रवोंसे भी चलायमान नहीं हुए। कैसा था वह

Version 1

ऊपरके ऊपर ही बैठ गए। विहार करना, आराम करना, हृदय प्रसन्न करना, प्रभुके गुण गाना, यह सब शोभा जहाँ हो रही है और मेघकी बिजलीसे घिर गया है तट जिसका, ऐसा वह उज्जंयन्त पर्वत है। इतना विशाल है कि मेघ तो उसके नीचे रहते हैं अथवा चारों तरफ मेघ फिरते रहते हैं। जिसके शिखर तटोंकी मेघोंने परिक्रमा दी है ऐसा वह उज्जंयन्त गिरि मानो इन्द्रने आपके ही लक्षण लिख दिया हो, आपके ही चिह्न लिख गया हो। इस तरह वह शोभित अचल पर्वत तीर्थको बढ़ा रहा है अर्थात् धर्मका प्रसार कर रहा है। मानो इस रीतिसे ऋषि जनोंके द्वारा निरन्तर वहाँ गमन होता है, वहाँ रहते हैं, ध्यान करते हैं और मानो जैसे वहाँसे एक धर्मतीर्थ का भी प्रवाह चलता हो और नाम शब्दके अनुसार तो भाव यह है कि प्रीतिसे विस्तृत है हृदय जिनका, ऐसे पुरुषोंके द्वारा चारों ओरसे निरन्तर जो सेवित किया जाता है उसे कहते हैं उज्जंयन्त। रूप भी इसी प्रकार हैं—उज्जंयते, उज्जंयेते, उज्जंयन्ते। बुद्धिमान् पुरुषोंके द्वारा जो पूजित हो उसे कहते हैं उज्जंयन्त। पर्वत तो पाषाण होता, मगर हे प्रभो, आपका संसर्ग होनेसे आज भी वह पर्वत पूज्य है।

बहिरन्तरप्युभयथा च करणमविधाति नार्थकृत्।
नाथ युगपदखिलं च सदा त्वमिदं तलामलकवद्विवेदिथ ।१२९।

अतएव ते बुधनुतस्य चरितगुणमद्भुतोदयम्।
न्यायविहितमवधार्य जिने त्वयि सुप्रसन्नमनसः स्थिता वयं ।१३०।

प्रभुभक्तिभावनाकी अनुसरताका दिग्दर्शन—कहते हैं कि बहिरंग और अन्तरंग दोनों ही प्रकारके साधन हे प्रभु कोई अर्थकृत नहीं हैं, पर हे नाथ, तुम्हारा सारा ही वृत्त, सारा ही आत्मप्रदेश सारे विश्वको हाथपर हस्ततलपर रखे हुए आंवले की तरह आप जानते थे, इस ही कारण बुद्धिमान पुरुषोंके द्वारा नमस्कृत हुए आपका चरित्र अद्भुत उदय वाला है। सो जो न्यायविधिकी बात है उसको अवधारण करके हे जिनेन्द्र तुम्हारेमें अनुराग भक्ति रखते हुए हम सब प्रसन्नचित्त होकर अब स्थित हुए हैं अर्थात् हमको क्या करना है? प्रभुके गुणोंका स्मरण कर हम प्रसन्नचित्त होकर बैठे हुए हैं, बस यही हमारी भगवानके प्रति आकांक्षा या स्नेह है। बस उसमें ही चित्त देते हुए हम स्थित रहें।

तमालनीलैः सधनुस्तडिद्गुणैः प्रकीर्णभीमाशनिवायुवृष्टिभिः।
वलाहकैर्वैरिवशैरुपद्रुतो महामना यो न चचाल योगतः ।१३१।

पार्श्वप्रभुकी घोर उपद्रवोंसे भी अविचलितताकी महिमा—श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्रकी स्तुतिमें कह रहे हैं कि यह महामना अर्थात् जिसका महान् विचार है, जिसकी बड़ी साधना है, ऐसे ये पार्श्वप्रभु एक बैरी कमठके द्वारा किए गए मेघवृष्टि आदिकके उपद्रवोंसे भी चलायमान नहीं हुए। कैसा था वह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

उपद्रव, कितना कठिन था वह उपसर्ग कि जहाँ पार्श्वनाथ भगवान विराजे थे वहीं कमठचर आया। ज्योतिषी देव आया और उसने अपनी विक्रियासे सारे उत्पात किया, मेघ वर्षा की, घनघोर आँधी चली, ऐसे कठिन उपसर्गमें कोई बाहर निकलना नहीं पसंद करता, मगर वे अपने ध्यानसे चलित नहीं हुए। कैसे थे वे मेघ जो बरसे ? वे थे तमाल पत्रकी तरह नीले वर्णके। मेघोंकी यह बात प्रायः समझी जाती है कि जो मेघ धुंधले हों, एकदम कृष्ण वर्णके हों उनकी अपेक्षा वे मेघ अधिक वर्षाकारी होते हैं जिनमें कुछ नीली आभा रहती है। तो वे नीले थे और वहां धनुषाकार एक चित्रण था और बिजलियाँ भी चमक रही थीं। वहाँपर बड़ी तेज गाज गिर रही थी, बिजलियाँ गिर रही थीं, तेज वायु थी, तेज वृष्टि थी, ऐसे मेघोंके द्वारा उपद्रव हुआ, फिर भी वे महामना पार्श्वप्रभु अपने योगसे चलित नहीं हुए। यह जीव केवल उपयोग ध्यान वाला है। इसका अन्य कुछ धन नहीं है। अन्य तो सब विकल्पकी बात है। मेरा अमुक है. तमुक है, यह सब केवल कल्पनाजाल है, इसका तो केवल ज्ञानघन है। अपने ज्ञानस्वरूपको निरखें और उस ही ज्ञानस्वरूपमें स्थिर रहें, बस यही, मेरा एक वैभव है। प्रभुने वह वैभव पाया, अपनेमें विराजमान अपने चैतन्यस्वरूपको निरखा और उस ही में वे तृप्त रहे। वे योगसे चलित न हुए। इस गुणानुवादसे एक प्रेरणा मिलती

http://www.jainkosh.org

है कि ज्ञानदृष्टि पर दृढ़ हो, फिर बड़े बड़े उपद्रव भी इसको विचलित नहीं कर सकते। जो जरा जरासे कष्टोंमें घबड़ाता है वह ज्ञानदृष्टिमें दृढ़ नहीं। कदाचित् ज्ञानदृष्टि पायी हो, मगर दृढ़तम अभ्यास नहीं है तब कष्टसे वह चलित हो जाता है। प्रभु ज्ञानकी निधि थे, वे कैसे समाधिसे चलित हो सकते थे ?

वृहत्फणामण्डलमण्डपेन यं स्फुरत्तडित्पिङ्गरुचोपसर्गिणाम्।
जुगूह नागो धरणो धराधरं विरागसन्ध्यातडिदम्बुदो यथा ।।१३२।।

पार्श्वप्रभुकी धरणेन्द्रसेवितता—जिस समय पार्श्वप्रभुपर ऐसा कठिन उपसर्ग हो रहा था उस उपसर्गको जो भी मनुष्य देखता वह स्वयं बहुत दुःखी हो जाता, इतना कठिन दृश्य था। बालब्रह्मचारी, सदा सरल कोमल, सुकुमाल तनके, ऐसे सुन्दर नीलवर्ण वाले घनश्याम ये प्रभु पार्श्वनाथ घनश्याम ही तो थे, ऐसा प्रभुपर कठिन उपसर्ग आया तो उस समय कोई भी पुरुष देखता तो वह अधीर हो जाता। ऐसे उपसर्गके समय वहाँ क्या घटना घटी कि धरणेन्द्र और पद्मावती, देव और देवी, इन्होंने अवधिज्ञानसे जाना और वहाँ आकर उपसर्ग दूर किया। ये धरणेन्द्र पद्मावती कौन थे ? ये पहले नाग नागिन थे और पार्श्वनाथके नाना ही संन्यासी होकर उस काठको ताप रहे थे धूमी जलाकर, उस काठमें ये नाग नागिन थे। अवसरकी बात कि पार्श्वनाथ प्रभु कुमार अवस्थामें बिहार

Version 1

करते हुए वनमें पहुंचे। वहां संन्यासीको देखा तो यह समझाने लगे आत्मज्ञानकी बात, तो संन्यासी आग-बबूला हुआ और बोला—अरे नन्हासा छोकरा मुझे समझाने आया है। तो पार्श्वनाथने कहा कि इस अज्ञानतपसे कोई लाभ नहीं है। देखो जिस काठको जला रहे हो उसमें इस वक्त भी एक नाग नागिन पड़े हुए हैं, तो संन्यासीने गर्वसे उस लक्कड़को निकाला और उसे फाड़ने लगा तो वहां नाग नागिन निकले। घायल भी हो गए थे, पार्श्वप्रभुने उनको दयादृष्टिसे देखा और हृदय से आशीर्वाद दिया। वे नाग नागिन मरकर धरणेन्द्र पद्मावती हुए। उन्होंने आकर किस तरह उपसर्ग दूर किया? बहुत बड़े फनका एक मंडप सा छा दिया पार्श्वनाथ प्रभुके शरीरके और ऊपर छत्रकी तरह, बहुत बड़ा भारी फणावलि बना दिया। वैक्रियक शरीर तो था ही, उसके नीचे प्रभु सुरक्षित से थे। तो उस फणावलिके मंडपसे फनविस्तारके मंडप द्वारा उस उपसर्ग करने वाले कमठका गर्व दूर किया और उसके कठिन उपसर्गमें रहने वाले पार्श्व प्रभुकी उन्होंने सेवा की। वे नाग क्या थे? धरणेन्द्र थे। सो उस समय एक ऐसी शोभा बन रही थी कि जैसे लालिमारहित संध्याकालकी बिजली और वहां मेघ याने भगवानका रूप तो मेघकी तरह था श्याम और वहां जो बिजली चमकती थी वह बड़े सफेद वर्णमें थी, और यहां जो फणमण्डप बना रखा था वह भी एक इसी प्रकार चमकदार था। उस समयमें ऐसी शोभा होती थी, जैसे मानो

बिजलीके बीच मेघ रहता है। जैसे एक घना मेघ होता है और बिजली चमकती है, अंधेरी रात है उस समय मेघ छाया दिखती है। तो जैसे वहां शोभा है ऐसे ही यहां शोभा हो रही थी। सारांश यह है कि धरणेन्द्रने यक्षने अपनी भक्तिवश प्रभुकी रक्षा की, प्रभु अरक्षित न थे, उनका कुछ बिगड़ता न था, मगर जो भक्तिवश होते हैं वे अपनी शक्तिवश पूरी वैयावृत्ति किया करते हैं।

स्वयोगनिस्त्रिंशनिशातधारया निशात्य यो दुर्जयमोहविद्विषम्।
अवापदार्हन्त्यमचिंत्यमद्भुतं त्रिलोकपूजातिशयास्पदं पदम् ।१३३।

प्रभुकी त्रिलोकपूजातिशयास्पदता—प्रभुने इस दुर्जय मोहवैरीको सर्वप्रथम जीता, तिरस्कृत किया, इसका विध्वंस किया, काहेके द्वारा? अपना जो समाधि योग है वही कठिन धारा है, जिसके द्वारा मोह बैरी नष्ट हो जाता है। मोह एक विभाव परिणाम है। मोह स्वयं कोई जीवकी चीज नहीं है, किन्तु मोहनीयकर्मका विपाक होता, अनुभाग होता, उसकी यहां झलक होती, और वही झलक बस उपयोगमें प्रतिफलन हैं, उसे न सह सकनेके कारण वह उसमें लग जाता है, उसे अपना लेता है और दुःखी होता है। तो यह मोह, यह राग-द्वेष यह टालने योग्य ही है, क्योंकि इसके रखनेसे बरबादी है और न रखनेसे सुरक्षा है। तो ये मोह रागद्वेष इनका पहले प्रभुने अपने आत्मज्ञान योगसे विध्वंस किया और अचिन्त्य

Report any errors at vikasnd@gmail.com

अद्भुत अरहंत पदवी प्राप्त की। जगत्‌में समारोह अनेक मनाये जाते हैं। कोई पुत्रजन्मका उत्सव मनाता, कोई विवाह शादीका मनाता, कोई किसीका उत्सव मनाता, मगर सब समारोहोंमें सबसे ऊँचा समारोह है ज्ञानी वीतराग आत्माकी भक्तिका समारोह। तब ही तो अरहंत होनेपर जो समवशरण आदिक शोभा होती है वह शोभा तो कहीं हो ही नहीं सकती। वह शोभा इन्द्र बनाता है, कुबेर बनाता है, देव बनाता है, पर तीर्थंकर न हों तो वहाँ शोभा बनाकर दिखायें तो सही। जो भी शोभा बनाते हैं वे भी एक तीर्थंकरकी भक्तिसे प्रेरित होकर बना पाते हैं। स्वयं चाहें कि मैं ऐसी शोभा बनाऊँ तो नहीं बना पाते हैं। तो उसमें प्रभाव किसका है ? उस वीतराग सर्वज्ञ आत्माका। उसकी पवित्रतापर तीनों लोकके इन्द्र आकर्षित होते हैं। तो मोहको जीत लेना, मोहको मिटा लेना यह ही सबसे बड़ी कमाई है। जिससे आत्माका उद्धार है। भविष्यमें भी आत्मा सुखी होगा, शान्त होगा, मुक्त होगा। इसलिए प्रोग्राम एक ही होना चाहिए कि मोह व्यर्थकी चीज है। मोह बनावटकी चीज है। मोह न करें तो बिगड़ता कुछ नहीं बल्कि सारा सुधरता है। ऐसे व्यर्थके मोहादिक विभावों का प्रभुने ज्ञानयोगके द्वारा विध्वंस किया और अचिन्त्य अद्भुत अरहंत पदवी प्राप्त हुई। सो तीनों लोककी विशिष्ट पूजा के साधनभूत पदको हे प्रभु तुमने प्राप्त किया।

http://www.jainkosh.org

यमीश्वरं वीक्ष्य विधूतकल्मषं तपोधनास्तेऽपि तथा बुभूषवः।
वनौकसः स्वश्रमवन्ध्यबुद्धयः शमोपदेशं शरणं प्रपेदिरे ॥१३४॥

पार्श्वप्रभुकी तपोधनशरणता—जिन ईश्वर पार्श्व प्रभुको निरखकर जो वहाँ वनमें रहने वाले और तपस्वीजन थे वे भी यह चाहने लगे कि मैं भी ऐसा होऊँ। प्रभु कैसे थे ? पाप-रहित। जिन्होंने पापको नष्ट कर दिया ऐसे प्रभुको देखकर जो और भी तपोधन थे वे वैसा होनेकी इच्छा करते हुए बनवासी, संन्यासी तब समझ गए कि हमने जो इतना श्रम किया, धर्म के लिए जो-जो क्रियायें कीं वह सब श्रम व्यर्थ है। व्यर्थ रहा निष्फल रहा, तत्त्व तो यहाँ है। ऐसा जानने वाले तपस्वी जन प्रभुके शान्त उपदेशसे ही शरण प्राप्त करते आये। उन्होंने भी प्रभुके उपदेशका ही शरण गहा, अपनी कुटेब छोड़ी, अपने अज्ञानको त्यागा और इस पवित्र निर्मोह मार्गमें लगे। जैन शासनमें मुक्तिका ऐसा निष्पक्ष मार्ग बताया है कि जिसमें कोई अपेक्षा नहीं की यह कि किसीको भला लगे। किसीमें बुरा न लगे। जो सत्य है वह बताया। सच्चा ज्ञान करो और उस ज्ञानपर दृढ़ रहो। उस ज्ञानस्वरूप अन्तस्तत्त्वकी सुध लिए रहो। बस उसी सुधमें सबको छोड़ो। केवल शरीर तो नहीं त्यागा जा सकता। वह तो साथ ही बंधा हुआसा है। तो बस इतना भर रहने दो, पर वह भी छूट जाय, प्रभु बस आत्मस्वरूपकी शरण प्राप्त करते भये।

Version 1

स सत्यविद्यातपसां प्रणायकः
समग्रधीरुग्रकुलाम्बरांशुमान् ।
मया सदा पार्श्वजिनः प्रणम्यते
विलीनमिथ्यापथदृष्टिविभ्रमः ॥१३५॥

ये पार्श्वनाथ जिनेन्द्र सत्य ज्ञान और नयके प्रणायक थे, मुख्य नायक थे। स्नातक, गणधर, नायक ये सब एकार्थक हैं। जिसमें पूर्ण ज्ञान, केवलज्ञान उत्पन्न हुआ और जो उग्र वंशके कुलके सूर्य थे, ऐसे श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र उनको मैं प्रणाम करता हूं। मेरे द्वारा वे प्रणाम किये जाने योग्य हैं, वंदनीय हैं। कैसे हैं प्रभु कि जिन्होंने मिथ्या मार्ग, मिथ्यादर्शन और समस्त भ्रमोंको नष्ट कर दिया। विशुद्ध जहाँ जरा भी शंका नहीं, जरा भी भय नहीं। आत्माका सहज स्वभाव एकदम जिनके प्रकट हुआ, ऐसे पार्श्वनाथ जिनेन्द्रको मैं प्रणाम करता हूं।

कीर्त्या भुवि भासि तया वीर त्वं गुणसमुच्छ्रया भासितया।
भासोडुसभासितया सोम इव व्योम्नि कुन्दशोभासितया ।१३६।

महावीर प्रभुकी अनुत्तरकीर्तिभासितता—अब श्री महावीर भगवानकी स्तुति की जा रही है। इस स्तवनके छंदोंमें बहुत सुन्दर कर्णप्रिय अनुप्रास है याने छंदके चारों चरणोंमें अन्तके वही वही शब्द आये हुए हैं। जैसे—प्रथम छन्दमें कहा है—कीर्त्या भुवि भासि····। इस छंदमें भासि तथा इन चारों

अक्षरोंमें चारों चरणोंमें अनुप्रास किया गया है। इसी तरह चार-चार वर्णोंका सब छन्दोंमें अनुप्रास है। यह समंतभद्राचार्यकी कृति है, इनका बनाया हुआ एक जिन शतक है, जिसमें विद्वताका बहुत अतिशय समझमें आता है। दि० जैनाचार्य विद्वतामें और शब्दोंके कोशमें बहुत अधिक कुशल थे, जानकार थे, लेकिन कभी उन्होंने अपनी कठिन लेखनी नहीं चलायी। केवल जीवोंके उपकारके लिए बहुत सरल संस्कृतमें उनकी रचना है, पर जो ऊँचा विद्वान् होता है तो किसी न किसी समय अपनी छटामें आ जाया करता है। जैसे चाहे कितनी ही गम्भीर वातावरणकी सभा हो, पर जहाँ ही कोई भजन हुआ, संगीत हुआ तो नाचने वालेके पैर खुद ही उछल उठते हैं। यह तो कोई बहुत बड़ी कला नहीं है इन छंदोंपर, पर जिन शतकमें केवल दो ही अक्षरोंमें केवल दो ही अक्षरोंमें श्लोक लिखे, जैसे न म इन दो अक्षरों ही में छंद पाये जाते हैं कै के अनुप्राश कई छंदोंमें तो इस तरहकी शब्दरचना है कि जिसे फैलाया जाय कोई आकारमें तो सर्प बन जाय, हार बन जाय, उन्हीं शब्दोंकी रचनामें। केवल शब्दोंको रखनेसे ही अनेक चीजें बन जायें। धनुष बने, घड़ा बने आदिक अनेक विचित्र कलाओंपूर्ण वह जिन शतक है, उस ही समान एक छोटीसी कलामें समन्तभद्राचार्य कहते हैं कि हे परमेश्वर प्रभु तुम शोभायमान गुणोंमें उत्कृष्ट कीर्तिके द्वारा इस पृथ्वी पर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

बहुत शोभायमान होते हो। जैसे कि आकाशमें नक्षत्रोंकी सभा में एक देदीप्यमान उस कांतिसे, उस स्वच्छ शोभा वाली कांतिसे जैसे कि चन्द्रमा शोभायमान होता है, इसी प्रकार अपने आत्माके उन असीम अनन्त गुणोंके बीचमें शोभायमान हो रहे हो। भगवान कीर्ति निधान गुणोंके पुञ्ज हैं, उनका यह स्तवन चल रहा है।

तव जिन शासनविभवो जयति कलावपि गुणानुशासनविभवः।
दोषकशासनविभवः स्तुवति चैनं प्रभाकृशासनविभवः ॥१३७॥

प्रभुका अलौकिक शासनवैभव—हे प्रभु, तुम्हारा शासन रूप वैभव इस कलिकालमें भी जयवन्त हो रहा है। जहाँ लोग प्रकृत्या दुर्भावनाकी ओर ही रहते है। बड़ा नियंत्रण हो, बड़ा संयम हो, सत्संग हो तो इसके परिणाम कुछ दृढ़ होते हैं। दृढ़ करते करते भी कोई असत्संग मिले, कोई अनुचित अवसर मिले तो इसका पुराना संस्कार फिर उखड़ जाने के लिए तैयार होता है। ऐसे इस कलिकालमें भी हे प्रभो! आपका शासन जयवन्त हो रहा है। जिन जीवोंका भवितव्य अच्छा है, जो हितपंथ पाने वाले हैं उनको प्रभुके शासनका ऐसा सुयोग है कि जिसके द्वारा वे अपने आत्माके उस स्वरूप वैभवको निरखते रहते हैं और तृप्त रहते हैं, वह कौनसी बूटी है जिसके पानेसे नारकी जीव भी कुटते-पिटते हुए भी अन्तरमें प्रसन्न रहते हैं। उपयोग द्वारा उस अनादि अनन्त चैतन्यस्वरूपको निरखते हैं और उसमें यह ही मैं हूं, इस तरहकी अनुभूतिके कारण तृप्त रहते हैं। एक तो स्वरूपका देख लेना और एक स्वरूपको यह मैं हूं इस प्रकार रूपमें अनुभवना इन दोनों में ऐसा अन्तर है कि जैसे खुदका बुखार भी ज्ञानमें रहता है। जैसे उन दोनों ज्ञानोंमें अंतर है ऐसे ही अन्यत्र आत्मस्वरूपकी साधनामें और अपने आपमें यह ही मैं हूं, इस अहंके अनुभव में। तभी बताया है कि प्रथम तो यह भक्त दासोहं याने हे हे प्रभु मैं आपका दास हूं, इस तरहकी अनुभूति बना लेता है, फिर यह भी छूटता है और सोहंकी भावना बना लेता है याने हे प्रभु जो आप हैं सो ही मैं हूं। फिर यह सोहंका भी विकल्प छूट जाता है और इस चैतन्यस्वरूपका ही बस एक प्रकाश प्रतिभास याने चेतन क्रियाका विषय निज सहज स्वरूप ही रहता है। ऐसे जिन्हें ज्ञान हो, आजके युगमें भी, इस कलिकालमें भी वे पुरुष धन्य हैं। और उनका यह इतना ऊँचा पुरुषार्थ है जैसे पहले कालमें बड़े-बड़े मुनियोंका पुरुषार्थ, उनका ऊँचा काम था, शक्ति ऊँची थी, यहाँ शक्ति कुछ न होकर भी निज सहज स्वरूपको ज्ञानमें ले तो इस पुरुषार्थका माप तो कीजिए, कितने महान् पुरुषार्थकी बात है। तो ऐसा आपका शासन, वैभव, जिसकी उपलब्धिसे आत्मा पवित्र हो जाता है, इस कलिकालमें भी जयवन्त हो रहा है। जो समस्त देशोंके शासनको दूर करते, ऐसे लोग भी जो अपने क्षीण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शासनके स्वामी बन रहे हैं वे तक भी और बड़े-बड़े संतजन इन महावीर भगवानका स्तवन करते हैं। क्यों करते कि बस उनकी देन थी एक अपूर्व शासनकी, सम्यग्ज्ञानकी।

अनवद्यः स्याद्वादस्तव दृष्टेष्टाविरोधतः स्याद्वादः।
इतरो न स्याद्वादो सद्वितयविरोधोन्मुनीश्वराऽस्याद्वादः।।१३८।

प्रभुका स्याद्वाद सुदर्शनचक्र—हे प्रभो! आपका स्याद्वाद अवद्यरहित है अर्थात् निर्दोष है, क्योंकि उसमें न प्रत्यक्षसे विरोध होता है और न आगमसे विरोध होता है। इस कारण से यह स्याद्वाद अनवद्य स्याद्वाद है। आपके स्याद्वादको छोड़ कर, अन्य जो शासन हैं, मत हैं वे स्याद्वाद नहीं हैं, क्योंकि वे तो दोनोंका ही विरोध करनेसे अर्थात् दोनों धर्मोंका घात करने से आत्मदृष्टियोंका घात करनेसे और अपना और पराया घात करनेसे वह स्याद्वाद है क्यों? क्योंकि जब वस्तुमें कोई एकांत मान लिया, नित्य ही है, तो कोई दृष्टि नहीं इसकी बन सकती, और कोई दृष्टि लगायें, क्योंकि अन्यका विरोध है। दूसरी बात—जो एकान्तपक्षमें जाता है वह अपना ही घात करता है और दूसरेका भी घात करता है, क्योंकि एकान्तमें वस्तुका सही स्वरूप नहीं मिलता और जब तक सही स्वरूपका बोध न हो जाय तब तक आत्माको यह प्रकाश नहीं मिलता है और न रागद्वेष मोह दूर होते। जब यह चित्तमें आये कि प्रत्येक वस्तु स्वतंत्र है, एकका दूसरा स्वामी नहीं, अधिकारी

नहीं, करने वाला नहीं, भोगने वाला नहीं, तो इस जीवका मोह दूर होता है। यह बड़ा अज्ञान है, अंधकार है जो किसी जीवमें किसी पदार्थमें यह मेरा है ऐसी बात चित्तमें बसे और उसके प्रति ही गृद्धताका भाव रहे तो यह बहुत बड़ी विपदा है जीवकी। व्यर्थकी विपत्ति। मिलता कुछ नहीं और विकल्प करके कर्मबन्ध और चल रहा है। सो वह शुद्ध ज्ञानप्रकाश तब ही मिल सकता है जिसके बलसे मोहादिक दूर होते हैं। कब मिल सकता और फिर उन सबको ही त्याग दें और निर्विकल्प सत्य आराममें आयें। छोड़ना दो तरहसे होता है। जैसे व्रत संयमका छोड़ना, सारा संसार व्रत संयम छोड़े हुए है एक तो ऐसा छोड़ना और एक व्रत संयम पाल कर, कुशल होकर, गुणसम्पन्न होकर उन सब क्रिया और विकल्पोंको त्यागकर केवल समाधिस्थ हुए। एक यहाँ व्रत संयम छूटता है तो दोनोंमें कितना अन्तर है? ऐसे ही जिसने विकल्पोंका परिचय पाकर छोड़ा है एक तो वह छोड़ने वाला और एक विकल्पका स्वरूप जानता ही नहीं है और स्वच्छन्द होकर विकल्प करता है। कहें कि जब शास्त्रोंको छोड़ना ही पड़ेगा, जितना शास्त्रों द्वारा ज्ञान किया जाता है वह छोड़ना पड़ता है और निर्विकल्प भावमें आना होता है तो जब सब शास्त्रज्ञान विकल्प छोडेगा ही यह जीव तो फिर हम उस शास्त्रज्ञानको करें ही क्यों, जानें ही क्यों? सो बात ऐसी है कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

सर्व प्रकारसे ज्ञान पाये बिना उनको छोड़ भी न सकेंगे सही ढंगसे, इसलिए जरूरी है कि उस निर्विकल्प अनेकान्तमें पहुंचनेके लिए अनेकान्तात्मक वस्तुका ज्ञान करना होता है। अनेकान्तमें ३ शब्द हैं—न, एक, अंत। अन्त कहते हैं धर्म को। जहाँ एक धर्म नहीं, बल्कि अनेक धर्म हैं उसको कहते हैं अनेकान्त। धर्म मायने वस्तुका स्वरूप। और एक अर्थ है— न एक अन्तः याने एक भी धर्म जहाँ न रहे उसे कहते हैं अनेकान्त। इस तरह दो तरहके अनेकान्त हुए, पर यह अनेकांत तो अनेकान्तसे ज्ञान करके बड़ी साधनाके बाद मिलता है कि जहाँ एक भी धर्म विकल्प दृष्टिमें न हो। ऐसी ऊंची तैयारी इस स्याद्वादके द्वारा वस्तुपरिचय पाकर होती है, वह आपके शासनमें मिलेगा।

त्वमसि सुरासुरमहितो ग्रन्थिकसत्त्वाशयप्रणामामहितः।
लोकत्रयपरमहितोऽनावरणज्योतिरुज्ज्वलधामहितः ॥१३९॥

महावीर प्रभुकी सुरासुरमहितता व लोकत्रयपरमहितरूपता—हे प्रभु! तुम देव असुर आदिकके द्वारा पूजे गए हो। परिग्रही जीवोंके प्रणामोंसे आप महान् नहीं है, आप तो अपने ही गुणोंके कारण महान् हैं। तीन लोकका परमहित करने वाले हैं। निरावरण ज्योति स्वरूप हैं और निर्मल धाममें ही जिनका हितस्वरूप चल रहा है ऐसे हे प्रभु तुम उत्कृष्ट कीर्ति से शोभायमान हो। विषापहार स्तोत्रमें कहा है कि भगवान

http://www.jainkosh.org

दूसरेके दोष बताये जाते हैं याने कुदेवके दोष कहे जाते हैं इस कारण आप महान् नहीं हैं याने तुलनाकी दृष्टिसे आपको हम महान् नहीं कहते कि चूंकि आप अनेक दोषवान देव, गुरु आदिकसे उत्कृष्ट हैं, इसलिए आप महान् हो, हम ऐसी तुलना से महान् नहीं कहते, परनिन्दाके कारण आप महान् नहीं हैं। किन्तु आप तो स्वयं उत्कृष्ट गुणविकासके कारण बड़े हो। जैसे समुद्र अपने आप बड़ा है, कहीं नदियोंका छोटा वर्णन करनेसे बड़ा नहीं है कि नदियाँ तो कुछ भी नहीं हैं, तालाब तो कुछ भी नहीं है, यों महान नहीं, किन्तु समुद्र तो अपने आपके स्वरूपसे महान है, गम्भीर है। ऐसे ही हे प्रभु आप परिग्रही जीवोंके प्रणामके कारण महान नहीं, किन्तु स्वयं महान हैं।

सभ्यानामभिरुचितं दधासि
गुणभूषणं श्रिया चारुचितम्।
मग्नं स्वस्यां रुचिरं जयसि
च मृगलाञ्छनं स्वकान्त्या रुचितम् ॥१४०॥

महावीर स्वामीकी सातिशय अभिरुचितता—हे प्रभु! आप सभ्य पुरुषोंके द्वारा अभिरुचित हो अर्थात् सज्जन सभ्य पुरुषोंकी रुचिके विषयभूत हो। बड़े-बड़े पुरुषोंकी आपमें रुचि होती है, पर आप बड़ी उत्कृष्ट लक्ष्मीसे अत्यन्त सुन्दर गुणोंके गुणरूपी भूषणको धारण कर रहे हो और अपने आपमें अपने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आपकी श्रीमें आप मग्न हो और आप अपनी कान्तिसे लोकप्रिय इस चंद्रमाको भी जीतते हैं। लोकमें चन्द्र एक सुखकारी मालूम होता है, पर वास्तविक सुखकारी तो प्रभु आप हैं। आपके गुणोंके स्मरणसे, आपके उस शुद्ध चैतन्यस्वरूपके ध्यानसे आत्माके भव-भवके बांधे हुए बंधन भी टूट जाते हैं, सो ऐसे आप बंधनरहित उत्कृष्ट आत्मा हो।

त्वं जिनगतमदमायस्तव भावानां मुमुक्षुकामदमायः।
श्रेयान् श्रीमदमायस्त्वया समादेशि सप्रयामदमायः ॥१४१॥

प्रभुकी निर्दोषता व कामदरूपता—महावीर भगवानके स्तवनमें समन्तभद्राचार्य गुणोंका शब्दछटाओंके साथ वर्णन कर रहे हैं। हे प्रभो तुम गतमदमाय हो याने घमंड, माया और उपलक्षणसे शेष सभी कषायें नष्ट हो चुकी हैं। आप कषायसे रहित हो। जो तुम्हारे भक्त जन हैं, मुमुक्षु जन हैं उनको अभीष्ट प्रदान करने वाले, जो प्रभुका गुणस्मरण करते हैं उनको स्वयं पवित्रता जगती है, क्योंकि उपयोगमें जैसी बात रखी उसके अनुसार उपयोग बनता है। उपयोगमें किसीके दोष निरखेंगे तो उससे मिलता तो कुछ है नहीं और उपयोग में दोष आनेके कारण दोषका चेहरा तो इस पर हावी हो गया, और कुछ न कुछ इसमें अवनति होती है। और जहां गुणकी दृष्टि होती है वहां उपयोगमें गुण तो आया इसलिए उपयोगकी बढ़वारी होती है। विकास होता है, और फिर जो

शुद्ध अंतस्तत्त्व है ज्ञानमूर्ति वीतराग ज्ञानमात्र ऐसी निर्दोष ज्ञानज्योतिको कोई ज्ञानमें ले तो उसका इतना प्रभाव होता है कि चूंकि ज्ञानज्योति ही ज्ञानमें रहे तो परविषय छूटकर इसे अपने आपका भी अनुभव प्रतिभास बनता है। इसी कारण प्रभु परोपकारसे यह बात कही गई है कि तुम मुमुक्षु जनोंके लिए अभीष्ट प्रदान करने वाले हो अर्थात् श्रेय कल्याण रूप है। उत्कृष्ट लक्ष्मीवान हैं और अमाय हैं मायने मायारहित हैं। विशुद्ध जो सहजस्वरूप है वही जहां प्रकट होता है वह मायारहित स्वरूप होता है, और जो उपाधिमें जो कुछ भी स्वरूप होता है वह मायास्वरूप होता है। प्रभु मायासे अतीत हैं, सो हे प्रभु तुमने जगतके जीवोंको दोषोंसे दूर होनेका गुणों में आगे बढ़नेका उपदेश किया है।

गिरिभित्त्यवदानवतः श्रीमत इव दन्तिनः स्रवद्दानवतः।
तव शमवादानवतो गतःमूर्जितमपगतप्रमादानवतः ॥१४२॥

प्रभुवाणीकी महिमा—प्रभो आपकी वाणी खिरी, दिव्यध्वनि हुई और इस स्वरूपसे अपने जगतको बहुत कुछ उपलब्धियां भी हैं। यदि भगवानकी ध्वनि न होती तो यह सब शास्त्र परम्परा भी न होती और फिर जीव किस तरहसे ज्ञान प्रकाश पाते। और न पाते तो जैसे और भव खोया वैसे ही यह भी भव खो दिया जाते। सो झर रहा है मद जिसके ऐसा हाथी जैसे दानवान कहलाता है। दान मायने मद।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

अनुप्रास दिया है और आपकी झर रही है वह दिव्यध्वनि वाणी, आप इस तरहसे जगत्को उपलब्धि देने वाले हैं कि तुम शान्ति और शान्तिका ही दान प्रदान करने वाले हो, ऐसे हे प्रभु महावीर भगवान जो आपके गुणोंका स्तवन करते हैं वे आपसे इतना महान लाभ पाते हैं कि जिससे सदाके लिए उनके सर्व संकट दूर हो जाते हैं संकट कहाँ? जहाँ भ्रम है, अज्ञान है, बाह्यपदार्थोंमें लगाव है वहाँ संकट है। जहाँ अपने स्वरूपकी सम्हाल है, सबसे निराला ज्ञानमात्र हूं ऐसी सुध है वहाँ संकटोंका अभाव है। हो ही जाता है। सो यह कला आपके स्वरूपके स्मरणमें भक्तोंको स्वयमेव प्राप्त होती है।

बहुगुणसंपदसकलं परमतमपि मधुरवचनविन्यासकलम्।
नयभक्त्यवतंसकलं तव देव मत समन्तभद्रं सकलम् ॥१४३॥

प्रभुदर्शनकी समन्तभद्रता—कहते हैं कि नाथ जो तुम्हारे से विमुख लोग हैं, जो आपसे बाह्य मंतव्य हैं, मत हैं ऐसे अन्यके मत चाहे बहुत गुणोंमे सम्पन्न है, तपश्चरण भी है, यम नियम अनेक प्रकारके बहुतसे गुणोंकी भी बातें करते हैं तिस पर भी और वे मत बहुत मधुर वचनोंका न्याय करनेमें, बहाने में, वितरण करनेमें एक उत्तम कला भी उन मतोंने प्राप्त की है तिसपर भी वे सब आजकल हैं, परिपूर्ण नहीं हैं, सब अधूरे हैं, पर आपका मत जो कि समंतभद्र है, समंत मायने चारों ओरसे भद्र मायने कल्याणरूप है, ऐसा यह स्याद्वाद मत जो

नयकी सेवाके शृङ्गारसे शोभायमान है ऐसा यह सब आपका मत सकल अर्थात् परिपूर्ण है। जो आपके बताये हुए मार्गके अनुसार चलता है, आपकी बतायी हुई विधिसे वस्तुके स्वरूप की जानकारी बनाता है, उसको फिर कहीं विफलता नहीं है। झट जरा दृष्टि की और सारे संकटोंको दूर कर लिया। ऐसे हे प्रभु आपकी दिव्यवाणीका ही यह सब चमत्कार है, जो आज भी जगत्के बुद्धिमान जन धर्मकार्यमें धर्मसेवामें लगे हुए हैं।

यो निःशेषजिनोक्तधर्मविषयः श्रीगौतमाद्यैः कृतः।
सूक्तार्थैरमलैः स्तवोयमसमः स्वल्पैः प्रसन्नैः पदैः ॥
तद्व्याख्यानमदो यथा ह्यवगतः किञ्चित्कृतं लेशतः।
स्थेयाच्चन्द्रदिवाकरावधि बुधप्रह्लादचेतस्यलम् ॥१४४॥

यावच्चन्द्रदिवाकर प्रभुस्तुतिप्रवाहकी भावना—कहते हैं कि स्तवनका प्रवाह यह गौतम आदिकके द्वारा कहे हुए तत्त्व का विषय करने वाला है, ऐसा स्तवन गौतम आदिकने किया है बहुत उत्तम, जिसकी बराबरी कोई कर ही नहीं सकता याने गणधर देव भगवानका स्तवन करें, उनकी तुलनाका कोई स्तवन कर सकता है क्या? चार ज्ञानोंके धारी भगवानके मुख्य सेवक अतुल भक्तिवान गौतम आदिक गणधरोंके द्वारा बहुत ही सुन्दर वचन, निर्दोष वचन, निर्दोष अर्थसे सहित अनुपम स्तवन किया गया है, सो वह भी स्वल्प अक्षरोंमें था,

Version 1

मगर प्रसन्न पदोंसे था । आज भी जो प्राकृत भाषाके ग्रन्थ हैं अथवा और प्राचीन हों उनमें वे १८ मौजूद हैं जिन पदोंको गणधर देव मुखसे उच्चारण किया करते थे । अब यह कुछ समझ नहीं बनती कि इन शब्दोंका उच्चारण गणधर देव भी करते थे । यह व्याख्यान इस ही शब्दसे गौतम आदिक प्रभुने भी किया । यह विशेष छंटनी नहीं हो पाती, फिर भी पुराने आचार्योंने संकेत दिया अनेक जगह कि ऐसा व्याख्यान गौतम स्वयं अपने मुखसे करते थे । वह पद स्वल्प था और प्रसन्न निर्दोष था, लेकिन जितना हम जानते हैं, समझे हैं उसके द्वारा जाना गया है उसका यह व्याख्यान किया गया है मेरे द्वारा । सो बस यही बहुत कि बुद्धिमान् जनोंके हर्षित हृदयमें ये चन्द्र दिवाकर पर्यन्त उनके हृदयमें ठहरे अर्थात् चन्द्र दिवाकर कब नष्ट होते हैं ? कहते हैं कि जब तक सूर्य चन्द्र रहें, तो क्या उसकी कोई अवधि है ? अर्थात् सदा यह भाव यह शब्द बुद्धिमानोंके उत्तम चित्तमें स्थित रहे । इस तरह यह बृहत्स्वयम्भूस्तोत्र समाप्त हुआ ।

॥ समाप्त ॥

परमात्म-आरती

(पू० श्री मनोहर जी वर्णी द्वारा रचित)

ॐ जय जय अविकारी ।

जय जय अविकारी, स्वामी जय जय अविकारी ।
हितकारी भयहारी, शाश्वत स्वविहारी ॥ टेक ॥ ॐ ···
काम क्रोध मद लोभ न माया, समरस सुखधारी ।
ध्यान तुम्हारा पावन, सकल क्लेशहारी ॥ १ ॥ ॐ····
हे स्वभावमय जिन तुमि चीना, भव सन्तति टारी ।
तुव भूलत भव भटकत, सहत विपति भारी ॥ २ ॥ ॐ ····
परसम्बंध बंध दुख कारण, करत अहित भारी ।
परमब्रह्म का दर्शन, चहुं गति दुखहारी ॥ ३ ॥ ॐ···
ज्ञानमूर्ति हे सत्य सनातन, मुनिमन संचारी ।
निर्विकल्प शिवनायक, शुचिगुण भण्डारी ॥ ४ ॥ ॐ ····
बसो बसो हे सहज ज्ञानघन, सहज शांतिचारी ।
टलें टलें सब पातक, परबल बलधारी ॥ ५ ॥ ॐ ···

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आत्मरमण

मैं दर्शनज्ञानस्वरूपी हूं, मैं सहजानन्दस्वरूपी हूं ॥टेक॥
हूं ज्ञानमात्र परभावशून्य, हूं सहज ज्ञानघन स्वयं पूर्ण ।
हूं सत्य सहज आनन्दधाम, मैं सहजानन्द० ॥ मैं दर्शन० ॥१॥
हूं खुदका ही कर्ता भोक्ता, परमें मेरा कुछ काम नहीं ।
परका न प्रवेश न कार्य यहां, मैं सहजानन्द० । मैं दर्शन० ॥२॥
आऊं उतरू रम लूं निजमें, निजकी निजमें दुविधा ही क्या ।
निज अनुभवरससे सहज तृप्त, मैं सहजानन्द० । मैं दर्शन० ॥३॥

मंगलतंत्र

ॐ नमः शुद्धाय, ॐ शुद्धं चिदस्मि
मैं ज्ञानमात्र हूं, मेरे स्वरूपमें अन्यका प्रवेश नहीं, अतः निर्भार हूं ।
मैं ज्ञानघन हूं, मेरे स्वरूपमें अपूर्णता नहीं, अतः कृतार्थ हूं ।
मैं सहज आनंदमय हूं, मेरे स्वरूपमें कष्ट नहीं, अतः स्वयंतृप्त हूं ।
ॐ नमः शुद्धाय, ॐ शुद्धं चिदस्मि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आत्म-कीर्तन

शांतमूर्ति न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज
द्वारा रचित

हूं स्वतंत्र निश्चल निष्काम । ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ।।टेक।।

मैं वह हूँ जो हैं भगवान, जो मैं हूं वह हैं भगवान।
अंतर यही ऊपरी जान, वे विराग यहँ राग वितान।। १ ।।

मम स्वरूप है सिद्ध समान,अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान
किंतु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान।। २ ।।

सुख दुख दाता कोई न आन, मोह राग रुष दुख की खान ।
निजको निज परको पर जान, फिर दुखका नहिं लेश निदान ।। ३ ।।

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुँचूं निजधाम, आकुलताका फिर क्या काम ।। ४ ।।

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूँ अभिराम ।। ५ ।।

Report any errors at vikasnd@gmail.com